महाकवि विश्वनाथ प्रणीत
"शत्रुशल्यचरितम्" महाकाव्य का समीक्षात्मक अध्ययन

कोटा विश्वविद्यालय, कोटा

पीएच.डी उपाधि हेतु

शोध– प्रबन्ध

(कला संकाय)

शोध निर्देशक

डॉ. अनीता गुप्ता

विभागाध्यक्ष,

संस्कृत–विभाग,

राजकीय महाविद्यालय, कोटा

शोधकर्त्री

कृष्णा गुप्ता

कोटा विश्वविद्यालय, कोटा

वर्ष 2016 – 2017

महाकवि विश्वनाथ प्रणीत
"शत्रुशल्यचरितम्" महाकाव्य का समीक्षात्मक अध्ययन

कोटा विश्वविद्यालय, कोटा

पीएच.डी उपाधि हेतु

शोध– प्रबन्ध

(कला संकाय)

शोध निर्देशक

डॉ. अनीता गुप्ता

विभागाध्यक्ष,

संस्कृत–विभाग,

राजकीय महाविद्यालय, कोटा

शोधकर्त्री

कृष्णा गुप्ता

कोटा विश्वविद्यालय, कोटा

वर्ष 2016 – 2017

प्रमाण–पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि कृष्णा गुप्ता ने संस्कृत विभाग, राजकीय महाविद्यालय, कोटा में दो वर्ष से अधिक समय तक उपस्थित रहकर **महाकवि विश्वनाथ प्रणीत ''शत्रुशल्यचरितम्'' महाकाव्य का समीक्षात्मक अध्ययन** विषय पर शोध कार्य किया हैं।

इनका यह कार्य पूर्णतया मौलिक है। मैं इनके उज्ज्वल भविष्य की कामना करती हूँ।

शोध निर्देशक

डॉ. अनीता गुप्ता

विभागाध्यक्ष, संस्कृत विभाग

राजकीय महाविद्यालय, कोटा

अनुक्रमणिका

खण्ड/अध्याय	विषय–वस्तु	पृष्ठ सं.
	प्राक्कथन	
प्रथम खण्ड	**महाकवि विश्वनाथ : परिचय**	1-69
प्रथम अध्याय	व्यक्तित्व एवं कृतित्व	
	(अ) अध्ययन की प्रकृति	
	(ब) अध्ययन के उद्देश्य	
	(स) साहित्य की समीक्षा	
	(द) शोध प्रविधि	
द्वितीय अध्याय	'शत्रुशल्यचरित' महाकाव्य की सर्गानुसार कथावस्तु का सामान्य परिचय	
द्वितीय खण्ड	**काव्यशास्त्रीय परम्परा में ऐतिहासिक महाकाव्यों का स्वरूप**	70-152
प्रथम अध्याय	काव्यशास्त्रीय परम्परा में महाकाव्य	
द्वितीय अध्याय	ऐतिहासिक महाकाव्यों का स्वरूप	
तृतीय अध्याय	ऐतिहासिक काव्यशास्त्रीय लक्षणों के आधार पर 'शत्रुशल्यचरित' का महाकाव्यत्व	
तृतीय खण्ड	**'शत्रुशल्यचरित' की काव्यशास्त्रीय समीक्षा**	153-274
प्रथम अध्याय	'शत्रुशल्यचरित' कथावस्तु की समीक्षा	
द्वितीय अध्याय	भाषा शैली	
तृतीय अध्याय	छन्द एवं अलंकार	

चतुर्थ अध्याय	रस योजना	
पंचम अध्याय	रीति, गुण	
षष्ठ अध्याय	प्रकृति चित्रण	
चतुर्थ खण्ड	**विषय में सम्बद्ध अन्य रचनाओं के साथ तुलनात्मक अध्ययन**	275-299
प्रथम अध्याय	महाकवि विश्वनाथ प्रणीत 'शत्रुशल्यचरित' महाकाव्य एवं हाड़ौती के ऐतिहासिक महाकाव्यों का तुलनात्मक अध्ययन	
द्वितीय अध्याय	ऐतिहासिक प्रधान महाकाव्यों में 'शत्रुशल्यचरित' महाकाव्य का स्थान	
पंचम खण्ड	**संस्कृत साहित्य को 'शत्रुशल्यचरित' महाकाव्य की देन**	300-306
	उपसंहार	307-311
	परिशिष्ट	312-329
	सन्दर्भ ग्रन्थ सूची	330-339

प्राक्कथन

ऋषिणामारिषं प्राप्य काव्यकर्तुतथैव च।

सर्वानपि गुरून् नत्वा प्रबन्ध एष अर्प्यते।।

''राष्ट्र की प्राचीन सांस्कृतिक धरोहर संस्कृत भाषा का समग्र साहित्य भारत के स्वर्णिम इतिहास का गौरवमय दर्पण हैं।''

समृद्ध संस्कृत साहित्य अपनी विविध विद्याओं कालजयी कृतियों में भारत राष्ट्र की भास्कर संस्कृति सभ्यता के साथ ही युगयुगीन अमर महापुरूषों की उज्ज्वल गौरवगाथा एवं चारूचरित्र को चमत्कारी रूप में चित्रित करता है। इस दृष्टि से रामायण, महाभारत एवं पुराणों के लोकविश्रुत दिव्यादिव्य पात्रों की प्रभावशालिनी प्रस्तुति अनेक पुरातन महाकाव्यों, नाटकों, आख्यायिकाओं चम्पू काव्यों में परिलक्षित होती हैं।

साहित्य के इस अगाध सागर में हाड़ौती क्षेत्र के प्रसिद्ध महाकवि विश्वनाथ विरचित ऐतिहासिक एकमात्र कृति का अपना विशिष्ट महत्व हैं, जो कि शोध का विषय मेरे द्वारा चुना गया है। इस महाकाव्य की व्यापकता, उपादेयता एवं महत्व से सम्प्रेरित होकर इसके विशिष्ट अध्ययन के साथ ही मेरा उद्देश्य आधुनिक संस्कृत साहित्य में इतिहास प्रसिद्ध चौहान वंशी राजाओं के जीवन–चरित्र तथा हाड़ौती के प्रसिद्ध ऐतिहासिक महाकाव्यों सुर्जनचरित, हम्मीर, पृथ्वीराज, रामविलास में शत्रुशल्य महाकाव्य का स्थान निर्धारित करना हैं। इस महाकाव्य में नायक–नायिका का नख–शिख वर्णन करना परम ध्येय है। वीर रस युक्त इस महाकाव्य में युद्धों का वर्णन अतिकुशलता पूर्वक किया गया हैं।

मैंने अपने शोध प्रबन्ध में ऐतिहासिक जीवन के विविध पक्षों से समलंकृत प्राकृतिक वैभव से परिपूर्ण, कवि के इस महाकाव्य का समीक्षात्मक अध्ययन प्रस्तुत करने का प्रयास किया है।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध को मैंने पाँच खण्डों में विभाजित किया है। प्रथम खण्ड परिचय में दो अध्याय हैं। प्रथम अध्याय में महाकवि विश्वनाथ के व्यक्तित्व एवं कृतित्व तथा (अ) अध्ययन की प्रकृति (ब) अध्ययन के उद्देश्य (स) साहित्य की समीक्षा (द) शोध प्रविधि, द्वितीय अध्याय में शत्रुशल्यचरित की सर्गानुसारी कथावस्तु का सामान्य परिचय प्रस्तुत किया हैं।

द्वितीय खण्ड में काव्यशास्त्रीय परम्परा में ऐतिहासिक महाकाव्यों के स्वरूप पर विहंगम दृष्टि डाली गई हैं। द्वितीय खण्ड तीन अध्यायों में विभाजित हैं। प्रथम अध्याय में काव्यशास्त्रीय परम्परा में महाकाव्य, द्वितीय अध्याय में ऐतिहासिक महाकाव्यों का स्वरूप, तृतीय अध्याय में ऐतिहासिक काव्यशास्त्रीय लक्षणों के आधार पर शत्रुशल्य चरितम् का महाकाव्यत्व प्रस्तुत किया गया हैं।

शोध प्रबन्ध के तृतीय खण्ड में 'शत्रुशल्यचरित' की काव्यशास्त्रीय समीक्षा की गई हैं। इस खण्ड को छः अध्यायों में विभाजित किया गया हैं। प्रथम अध्याय में शत्रुशल्यचरित कथावस्तु की समीक्षा, द्वितीय अध्याय में भाषा शैली, तृतीय अध्याय में छन्द एवं अलंकार, चतुर्थ अध्याय में रस–योजना, पंचम अध्याय में रीति एवं गुण, षष्ठ अध्याय में प्रकृति चित्रण को प्रस्तुत किया गया हैं।

चतुर्थ खण्ड में विषय में सम्बद्ध अन्य रचनाओं के साथ तुलनात्मक अध्ययन किया गया हैं। इस खण्ड में दो अध्याय हैं। प्रथम अध्याय में महाकवि विश्वनाथ प्रणीत 'शत्रुशल्यचरित' महाकाव्य का हाड़ौती के प्रसिद्ध ऐतिहासिक महाकाव्यों का तुलनात्मक अध्ययन, द्वितीय अध्याय में ऐतिहासिक प्रधान महाकाव्यों में शत्रुशल्यचरित महाकाव्य का स्थान प्रस्तुत किया गया हैं।

उपसंहारात्मक पंचम खण्ड में संस्कृत साहित्य को शत्रुशल्यचरित महाकाव्य की देन प्रस्तुत किया गया हैं।

मैं इस शोध कार्य की प्रेरणास्त्रोत एवं निर्देशिका परमादरणीया गुरूवर्या **डॉ. अनीता गुप्ता** (विभागाध्यक्ष, संस्कृत विभाग) के प्रति हृदय से कृतज्ञता ज्ञापित करती हूँ, जिनके सफल निर्देशन में यह शोध प्रबन्ध पूर्ण हो सका।

इस शोध विषय के चयन प्रक्रिया में **श्रीमान ख्याली राम मीणा**, वरिष्ठ शोध अधिकारी, राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान कोटा, का अतुलनीय योगदान रहा हैं। इस शोध कार्य में **डॉ. उमा त्रिपाठी जी** का भी मुझे सहयोग प्राप्त हुआ हैं।

डॉ. विजयलक्ष्मी दाधीच से दूरभाष पर सम्पर्क कर परामर्श प्राप्त किया हैं। इस समस्त विद्वानों की मैं आजीवन आभारी रहूँगी, जिन्होंने अपनी अतिव्यस्त दिनचर्या में से समय निकाल कर मुझे पर्याप्त सहयोग एवं मार्गदर्शन प्रदान किया।

परम श्रद्धेया पूजनीया जन्मदात्री **श्रीमती इन्द्रा गुप्ता** एवं पिताजी **श्री रामस्वरूप गुप्ता** के प्रति मैं आत्मिक श्रद्धा और सम्मान ज्ञापित करती हूँ, जिनकी प्रेरणा और निरन्तर गतिशील बने रहने के आदेश के कारण ही मैं यह कार्य सुगमता से कर पायी हूँ, उनके आशीर्वाद के बिना यह कार्य मेरे लिए दुरूह था।

स्व. श्री लक्ष्मीचन्द गुप्ता, ससुर जी के प्रति श्रद्धावनत हूँ, पूज्या सास **सावित्री देवी जी** ने इस कार्य में मेरा स्नेहपूर्वक उत्साहवर्धन किया। जेठ जी **श्री राजेश गुप्ता** एवं जेठानी **श्रीमती कविता गुप्ता** ने भी प्रेमपूर्वक सहयोग किया।

मेरे जीवनपथ के सहचर **श्री मुकेश गुप्ता**, (सहायक आचार्य, राजकीय अभियांत्रिकी महाविद्यालय, अजमेर) ने मुझे गृहस्थ कार्य से निवृत्त कर आद्यन्त सहयोग प्रदान किया, जो अविस्मरणीय है।

मैं अपनी सहयोगी **सर्वेश अग्रवाल** एवं परिवार के सभी सदस्यों बहनों एवं भाई–भाभी के प्रति आभार व्यक्त करती हूँ, जिनका सहयोग एवं प्रोत्साहन सर्वाधिक प्रशंसनीय है। मैं उन सभी विद्धज्जनों के प्रति कृतज्ञ हूँ, जिनका शोधकार्य में प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप में सहयोग प्राप्त हुआ हैं। मैं प्राचार्य, राजकीय महाविद्यालय कोटा को भी धन्यवाद ज्ञापित करती हूँ जिन्होंने मुझे पुस्तकालय का उपयोग करने में सहायता प्रदान की। इन सबसे बढ़कर मैं अपनी पुत्री **मीनल गुप्ता** के प्रति असीम स्नेह प्रदर्शित करती हूँ जिसने शोध कार्य के दौरान अपनी बाल सुलभ चेष्टाओं के साथ मुझे कार्य समाप्ति के लिए निरन्तर प्रेरित किया।

मुद्रक **दीपक कुमार** की भी आभारी हूँ जिन्होंने मेरी हस्तलिखित सामग्री

को यथासंभव शुद्ध टंकित करके इस शोध प्रबन्ध को वर्तमान रूप प्रदान किया।

निःसंदेह यह शोध अध्ययन गम्भीर विश्लेषण की अपेक्षा रखता हैं, तथापि विश्व में कोई भी पूर्ण ज्ञानी नहीं है जो प्रत्येक कार्य को सम्पूर्ण करने में समर्थ हो। किन्तु इस शोध कार्य को लक्ष्य तक पहुँचाने का श्रेय भगवत कृपा एवं कर्म के प्रति आस्था को ही है। मैं समझती हूँ कि इस शोध प्रबन्ध में त्रुटियाँ रह जाना स्वाभाविक हैं, अतः मेरा अनुरोध है कि विद्वज्जन उन त्रुटियों को क्षमा करें। मुझे पूर्ण विश्वास है कि सुधीपाठक मेरे इस शोध–प्रबन्ध का रूचिकर अध्ययन कर मुझे अनुग्रहित करेंगे। अन्त में मेरी प्रार्थना है कि –

मानुष्यमरूदबलितवृति न लभ्यते च –

ल्लभ्यतें करूतसिंह जीवनपरात्मभेदः।

तन्मे भवेदिह यदि स्खलितं कदाचिद्

भब्यैरूभव्यमति तद्दयाविशोध्यम्।।

(कृष्णा गुप्ता)

संस्कृत विभाग,

राजकीय महाविद्यालय, कोटा

प्रथम खण्ड

महाकवि विश्वनाथ : परिचय

1 **प्रथम अध्याय** – व्यक्तित्व एवं कृतित्व

(अ) अध्ययन की प्रकृति

(ब) अध्ययन के उद्देश्य

(स) साहित्य की समीक्षा

(द) शोध प्रविधि

2 **द्वितीय अध्याय** – 'शत्रुशल्यचरित' महाकाव्य की सर्गानुसार कथावस्तु का सामान्य परिचय

द्वितीय खण्ड

काव्यशास्त्रीय परम्परा में ऐतिहासिक महाकाव्यों का स्वरूप

1 **प्रथम अध्याय** – काव्यशास्त्रीय परम्परा में महाकाव्य

2 **द्वितीय अध्याय** – ऐतिहासिक महाकाव्यों का स्वरूप

3 **तृतीय अध्याय** – ऐतिहासिक काव्यशास्त्रीय लक्षणों के आधार पर 'शत्रुशल्यचरित' का महाकाव्यत्व

तृतीय खण्ड

'शत्रुशल्यचरित' की काव्यशास्त्रीय समीक्षा

1 **प्रथम अध्याय** – 'शत्रुशल्यचरित' कथावस्तु की समीक्षा

2 **द्वितीय अध्याय** – भाषा शैली

3 **तृतीय अध्याय** – छन्द एवं अलंकार

4 **चतुर्थ अध्याय** – रस योजना

5 **पंचम अध्याय** – रीति, गुण

6 **षष्ठ अध्याय** – प्रकृति चित्रण

चतुर्थ खण्ड

विषय में सम्बद्ध अन्य रचनाओं के साथ तुलनात्मक अध्ययन

1 **प्रथम अध्याय** – महाकवि विश्वनाथ प्रणीत 'शत्रुशल्यचरित' महाकाव्य एवं हाड़ौती के ऐतिहासिक महाकाव्यों का तुलनात्मक अध्ययन

2 **द्वितीय अध्याय** – ऐतिहासिक प्रधान महाकाव्यों में 'शत्रुशल्यचरित' महाकाव्य का स्थान

पंचम खण्ड

संस्कृत साहित्य को "शत्रुशल्यचरित" महाकाव्य की देन

परिशिष्ट

उपसंहार

प्रथम अध्याय

व्यक्तित्व एवं कृतित्व

महाकवि परिचय –

संस्कृत साहित्य में देदीप्यमान नक्षत्र की भाँति, महाकवि विश्वनाथ का अद्वितीय योगदान है। संस्कृत साहित्य के श्रेष्ठ कवियों में इनकी गणना की जाती है। महाकवि विश्वनाथ रचित 'शत्रुशल्यचरित' महाकाव्य ऐतिहासिक संस्कृत महाकाव्यों में विशिष्ट स्थान रखता है। संस्कृत साहित्य में ऐतिहासिक काव्य के प्रणयन की परम्परा बाण के हर्षचरित से मानी जाती है। राजस्थान के पूर्व रियासतों के शासकों को तथा मारवाड़, मेवाड़, ढूँढाड़, हाड़ौती के राजाओं पर ऐसे अनेक ऐतिहासिक काव्य लिखे गए जिनमें 'शत्रुशल्यचरित' महाकाव्य महाकवि विश्वनाथ की एक अनुपम कृति हैं।

महाकवि विश्वनाथ ने अपनी एकमात्र कृति 'शत्रुशल्यचरित' में अपना जीवन परिचय अत्यन्त संक्षिप्त रूप में प्रदान किया है, जो महाकाव्य के 22 सर्गो के अन्तिम श्लोक में है –

योन्तर्वाणिशिरोमणेर्वरभिषग्वंशैकमुक्तमणेः।

साहित्याम्बुरूहाकरैकतरणेः श्री वैद्यनारायणात्।

रूक्मिण्यामुदभूदमुष्यसुकवेः श्री विश्वनाथस्य सत् –

काव्ये श्री नृपशत्रुशल्यचरिते श्री चाहुवानोदभ्वः।। शत्रु. 1/60

अर्थात् भगवती सरस्वती के शिरोमणि, वैद्य वंश के, वेणुवृक्ष के मुक्तामणि से उत्पन्न मुक्ताफल के समान महाकवि विश्वनाथ, साहित्य सरोवर में साहित्य रूपी कमल समूह को विकसित करने वाले एकमात्र सूर्य हैं। इनके पिता का नाम वैद्य नारायण एवं माता का नाम रूक्मिणी था।

महाकवि विश्वनाथ एक प्रसिद्ध राजवैद्य थे, यह व्याकरण, साहित्य के साथ–साथ रसायन शास्त्र के भी अच्छे ज्ञाता थे।

'शत्रुशल्यचरित' के प्रथम सर्ग के प्रारम्भ मंगलाचरण में महाकवि ने अपने पिता को नमस्कार करते हुए उनके नाम का संकेत किया है –

यन्नाममन्त्राक्षरवैनतेया

दुदग्रपापत्रयकाद्रवेया।

प्रयान्ति दूरे किल कान्दिशीका

नारायणं तं पितरं नमामः ।। शत्रु. 1/5

महाकवि विश्वनाथ ने अपनी विद्वता का परिचय देते हुए कहा है कि – जिस नाम के मन्त्राक्षर रूपी वैनतेय (गरूड़) से डरे हुए उग्र, जो आधिभौतिक, मानसिक और आत्मिक पापरूपी सर्प 'किस दिशा में जाऊँ' इस तरह भयभीत होते हुए दूर भाग जाते हैं। ऐसे कवि एवं जनक श्री नारायण पण्डित को नमस्कार करता हूँ। इससे कवि अपने पिता के 'कवि शिरोमणि' होने का संकेत देते है। महाकवि के अनुसार नारायण दास एक बड़े वैद्य और अच्छे साहित्यकार थे एवं व्याकरण, भाषा काव्य के प्रशिक्षु थे। ऐसा, प्रतीत होता है, कि ये दोनों राव–रतन बून्दी शासक, जो कि जहांगीर दरबार के प्रसिद्ध मनसबदार एवं बुरहानपुर के सुबेदार थे, के राजवैद्य थे। महाकवि रावरतनसिंह और उनके पौत्र राव छत्रशाल के शासन काल की प्राथमिक जानकारी रखता था इस कारण महाकाव्य में इनका विस्तृत वर्णन प्राप्त होता है। रावरतन एवं शत्रुशल्य द्वारा जो विभिन्न युद्ध बुरहानपुर, बलोचपुर और दौलतबाद आदि स्थानों पर लड़े गयें उनमें हाड़ाओं के राजवैद्य होने के नाते कवि विश्वनाथ स्वयं उपस्थित थे।

महाकवि ने भारत के भाग्याकाश में नूतन जीवन के सुप्रभात में प्राणोत्कर्षक अभिनव प्रकाश प्रस्तारित करने वाले शत्रुशल्यचरित को प्रकाशित किया। यह कवि 1650 ई. के मुगलों के युद्ध क्रम के दौरान औरंगजेब के विरूद्ध दाराशिकोह की ओर से मारा गया था।

कृतित्व –

महाकवि विश्वनाथ विरचित एकमात्र कृति 'शत्रुशल्यचरित' ऐतिहासिक संस्कृ –त महाकाव्यों में अग्रणीय एवं अद्वितीय स्थान रखती है। यह अलंकृत महाकाव्य श्री हर्ष के नैषधीय चरितम् की काव्य–कुशलता के पदचिन्हों का अनुसरण करता है। कल्पना की ऊँची उड़ानें, असीम विद्वता और सुरीले शब्दों के चयन युक्त छन्दमयी रचना काव्य वास्तव में विद्वानों, जो कि संस्कृत काव्यों की असीम अलंकृत शैली से परिचत है, के ह्रदय को प्रसन्न करती है।

यह महाकाव्य बून्दी नरेश के राजकीय पुस्कालय में स्थापित था और इसकी एक हस्तलिपि बून्दी की पब्लिक लाइब्रेरी में स्थानान्तरित कर दी गई थी। परन्तु यह महाकाव्य समयान्तराल के कारण बूंदी पुस्तकालय में वर्तमान में उपलब्ध नहीं है। इस महाकाव्य पर पण्डित गंगासहाय जी ने टीका लिखी है। डॉ. भोलाशंकर व्यास द्वारा इस टीका की प्राप्ति नहीं होने पर स्वयं इन्होंने इस महाकाव्य का सम्पादन किया। पं. गंगासहाय जी की प्रकाशित लेखमय टीका में केवल 10 सर्ग, 13 से 22 तक विद्यमान थे। डॉ. भोलाशंकर व्यास ने प्रथम भाग की टीका ''विद्योतिनी'' का सम्पादन किया जो अँग्रेजी रूपान्तरण युक्त है।

इस महाकाव्य में 22 सर्ग है इसका सर्वप्रथम संकेत पिटर्सन खोज रिपोर्ट में खण्ड 3 पृ. सं. 342 पर मिलता है।

Mss.A –

यह हस्तलिपि जो बून्दी पुस्तकालय में 234 पन्नों का लेख था। वास्तविकता में इसका सम्बन्ध बून्दी राज्य की (1821 A. D.) महाराव राजा रामसिंह की पैलेस लाइब्रेरी से था। प्रत्येक पृष्ठ पर लगभग 7 पंक्तियाँ और प्रत्येक पंक्ति में 33 से 35 अक्षर थे। इस हस्तलिपि की नकल बगसुराम द्वारा 1918 वि. स. में की गई। सामान्यतः यह हस्तलिपि सही है, किन्तु कुछ स्थानों पर धब्बे लगे हुए है और पढ़ना सम्भव नहीं है। 9 वें सर्ग के 16 श्लोक, 2 से 17 तक बगसुराम द्वारा छोड़ दिए गए।

Mss. B–

यह हस्तलिपि संस्कृत विश्वविद्यालय वाराणसी जिसमें सिर्फ 10 सर्ग (13 से 22) मय पण्डित गंगा सहाय जी की टीका (प्रकाशिका) है, प्राप्त किया गया।

इसके दो पृथक भाग है –

1. 87 पन्नों का लेख और मय टीका सर्ग–13 के श्लोक 39 से सर्ग–17 के श्लोक 101 तक, प्रत्येक में 21 पंक्तियां, और प्रत्येक पंक्ति में 27 अक्षर है। (लगभग/अनुमानित)
2. 350 से 498 + 1 पन्ने (अनुमानित) 10 पंक्तियां प्रति पृष्ठ एवं 43 अक्षर प्रति पंक्ति है।

यह स्पष्ट है कि द्वितीय भाग जो वर्तमान में उपलब्ध है वास्तविक हस्तलिपि का भाग है जिसमें 498 पन्ने हैं। और प्रथम भाग (सर्ग–13, 39 से सर्ग–17, 107) वास्तविक हस्तलिपि की नकल है किन्तु कहीं खो गया है। दोनों अलग–अलग हाथों से और भिन्न–भिन्न आकार के कागज पर, भिन्न–भिन्न चिन्हों के साथ लिखे गए है। जबकि काव्य के उत्तरार्ध भाग के सम्पादन (10 सर्ग – 13 से 22) में Mss. B का उपयोग किया।

डॉ. भोलाशंकर द्वारा Mss. A व Mss. B के पढ़ने में जो भिन्नता प्रकट हुई की व्याख्या निम्न है –

इन दोनों महाकाव्यों में व एवं ब में विभेद नहीं किया गया, और व को ब ही लिखा गया। भोलाशंकर व्यास द्वारा स्व संस्करण में ब को भिन्न प्रकार से प्रदर्शित किया गया है। दोनों महाकाव्य साधारणतः अवग्रह (ऽ) को नहीं दर्शाते हैं जबकि इस सम्पादित महाकाव्य में अवग्रह दर्शाया गया है ; ताकि स्पष्टतः पढ़ा जा सके। इस काव्य में अनुस्वार के पूर्व पञ्चमाक्षर का प्रयोग नहीं हुआ हैं। मुद्रण की सुविधानुसार अनुस्वार को अनुस्वार ही रहने दिया है। इसी तरह अनुनासिक को भी अनुस्वार से ही दर्शाया गया है।

'शत्रुशल्यचरित' महाकाव्यान्तर्गत ऐतिहासिक घटनाओं के तथ्यों के अतिरिक्त अकबर से शाहजहाँ तक के मुगल इतिहास की जानकारियों के सन्दर्भ में सुर्जनचरितम् से अधिक प्रामाणिक है। इस काव्य में बादशाह अकबर, जहाँगीर एवं शाहजहाँ कालीन रणथम्भौर, गौड़वाना गुजरात एवं दक्षिण भारत में लड़े गए युद्धों का यथार्थ निरूपण है। इस काव्य के ग्यारहवें सर्ग में सन् 1623 में खुर्रम द्वारा अपने पिता के विरूद्ध किए गए विद्रोह का भी यथार्थ वर्णन प्राप्त होता हैं। कवि द्वारा सुरम्य प्रकृति चित्रण किया गया है। यह काव्य वास्तविक कुशल काव्यों के सन्दर्भ में अधिक अंलकृत और शब्द–कल्पनाओं में समृद्ध माघ एवं श्री हर्ष (जो कि संस्कृत महाकाव्य के दो शीर्ष कवि) से अत्यधिक प्रभावित है। अभी तक प्रकाशित चौहान महाकाव्यों में समृद्ध महाकाव्य हैं।

इस काव्य में लगभग 2500 श्लोक हैं जिनका अन्त अचानक हाड़ा छत्रशाल के द्वारा दौलताबाद युद्ध सन् 1633 के बाद हुआ। काव्य मुगलों की काबुल एवं कन्धार की सन् 1641 यात्रा एवं उसके बाद दारा, औरंगजेब के मध्य प्रतिस्पर्धा के बारे में नहीं बताता जिससे प्रतीत होता है कि काव्य की रचना कहीं सन् 1635 में हुई थी, और शायद कवि की मृत्यु के कारण, (जो कि उस समय 60 या 70 वर्ष के होगें) अचानक इसका अन्त हो गया।

इस प्रकार 22 सर्गो से युक्त 'शत्रुशल्यचरित' महाकाव्य ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर अपना महत्वपूर्ण स्थान रखता हैं।

(अ) अध्ययन की प्रकृति

अनुसंधान एक उद्देश्यपूर्ण सुव्यवस्थित बौद्धिक प्रक्रिया है। इसके द्वारा किसी सैद्वान्तिक अथवा व्यवहारिक समस्या के समाधान का प्रयास किया जाता हैं। शोध अध्ययन के द्वारा या तो किसी नये तथ्य, सिद्वान्त विधि या वस्तु की खोज की जाती हैं। अथवा प्राचीन तथ्य सिद्वांत विधि या वस्तु में परिवर्तन किया जाता हैं। अनुसंधान एक तर्कपूर्ण तथा वस्तुनिष्ठ प्रक्रिया है। इसके द्वारा प्राप्त निष्कर्ष वास्तविक आंकड़ो पर आधारित एवं तर्कपूर्ण होते हैं। तथा व्यक्तिगत पक्षपात से मुक्त होते हैं। अनुसंधान चिन्तन की एक सुव्यवस्थित एवं परिष्कृत विधि हैं।

जिसके अन्तर्गत किसी समस्या के समाधान के लिए विशिष्ट उपकरणों तथा प्रक्रियाओं का प्रयोग होता हैं। अनुसंधान की प्रक्रिया में प्राथमिक एवं माध्यमिक स्त्रोत से प्राप्त आंकड़ो से नये ज्ञान को प्राप्त किया जाता हैं। इसके अन्तर्गत जटिल घटनाक्रम को समझने के लिए विश्लेषण विधि का प्रयोग किया जाता है। इस विश्लेषण से परिकल्पनाओं का निर्माण एवं परीक्षण किया जाता है।

अध्ययन की प्रकृति ऐतिहासिक है। 'कर्नल टाउ' ने भारतीय इतिहास की उपर्युक्त विशेषता का आकलन करने हुए लिखा है –

Those who expect from a people like the Hindus a species of composition of precisely the same. Character as the historical works of Greece and Rome, commit the very egregious error of overlooking the peculiarities, which distinguish the natives of India from all other races and which strongly discriminate their intellectual productions of every kind from those of the west. Their philosophy, their poetry, their architecture are marked with traits of originality and the same may be expected to pervadetheir history, which like the arts enumerated, took a character from its intimate association with the religion of the people.[1]

अध्ययन की प्रकृति –

1. ऐतिहासिक / प्राचीन
2. विविधता
3. गम्भीरता
4. उत्कृष्टता
5. वैज्ञानिकता
6. पथनिरपेक्षता
7. सत्यता / प्रामाणिकता

1. ऐतिहासिक / प्राचीन –

इस शोध की विषय वस्तु ''शत्रुशल्यचरित'' महाकाव्य की समीक्षा है। चूंकि महाकाव्य का विषय चौहान वंश के राजाओं के काल विशेष का वर्णन हैं। अतः इस

प्रकार के शोध अध्ययन को ऐतिहासिक श्रेणी में रखा जा सकता है। इस प्रकार के अध्ययन से ऐतिहासिक कालक्रम (घटनाक्रम) परम्परा, परिवेश और कला एवं संस्कृ –ति के स्वरूप पर प्रकाश डाला जा सकता हैं।

2. विविधता –

शत्रुशल्य महाकाव्य में विविध राजाओं के जीवन–चरित्र का वर्णन, युद्ध कौशल का वर्णन, प्रकृति–चित्रण एवं समसामयिक घटनाक्रम का वर्णन शोध विषय को विविधता से पूर्ण बनाता है।

3. गम्भीरता –

महाकवि ने इस महाकाव्य में विविध वर्णनों को गम्भीर रूप से प्रस्तुत किया हैं। युद्ध वर्णन, प्रकृति चित्रण नारी सौन्दर्य, नायक शत्रुशल्य का नख–शिख वर्णन अत्यन्त गम्भीर रूप से प्रकट किया हैं।

4. उत्कृष्टता –

महाकाव्य परम्परा में शत्रुशल्यचरित महाकाव्य एक उत्कृष्ट काव्य हैं। इसकी भाषाशैली, छन्द एवं अलंकारों का विस्तृत प्रयोग, व्याकरण व्याख्या, समकक्ष महाकाव्यों से विशेष स्थान को प्राप्त करती हैं। प्रस्तुत शोध इस क्षेत्र में उत्कृष्टता के अद्‌भुत उदाहरण हैं। इसकी विषय–वस्तु अन्य महाकाव्यों से अधिक समृद्ध हैं।

5. वैज्ञानिकता –

इस महाकाव्य में विज्ञान की भी झलक दिखाई पड़ती हैं। यह महाकाव्य तकनीकी रूप से उच्च हैं। जहाँ–जहाँ धुआँ होता है वहाँ–वहाँ आग होती है, इस परिप्रेक्ष्य को महाकवि ने सिद्ध किया है। इसके अन्तर्गत तथ्यों का अवलोकन, एकत्रीकरण तथा निष्कर्ष ज्ञात किया जाता हैं।

6. पथनिरपेक्षता –

महाकवि विश्वनाथ चौहान वंश के राजवैध थे। किन्तु उनके द्वारा महाकाव्य में विविध राजाओं के जीवन–चरित्र, युद्ध कौशल, प्रकृति–चित्रण एवं समसामयिक घटनाक्रम के वर्णन मे किसी भी पथ विशेष को महत्व नही दिया गया। अतः शत्रुशल्यचरित महाकाव्य इस दृष्टि से पथनिरपेक्ष काव्य की श्रेणी में आता है।

7. सत्यता / प्रमाणिकता –

ऐतिहासिक महाकाव्यों में शत्रुशल्यचरित महाकाव्य पूर्णरूप से ऐतिहासिक प्रामाणिक महाकाव्य हैं। महाकवि विश्वनाथ चौहान वंश के राजवैध थे और राजवैध होने के कारण घटनाक्रम का वर्णन अत्यन्त सत्य एवं प्रमाणिक हैं।

अतः इस शोध अध्ययन की प्रकृति पूर्णरूप से ऐतिहासिक हैं।

.....********.....

1. संस्कृत साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास – राम जी उपाध्याय पृ.स.–425, 1993 ।

(ब) अध्ययन के उद्देश्य

काव्यं यशसेऽर्थकृते व्यवहारविदे शिवेतरक्षतये ।

सद्यः परिनिर्वृतये कान्तासम्मिततयोपदेशयुजे।। 2।। का.प्र./प्रथम उल्लास

आचार्य मम्मटानुसार काव्य (रचना) यश (प्राप्ति) के लिए, धन–अर्जन के लिए, व्यवहार ज्ञान के लिए, अमंगल के विनाश या निवारण के लिये, तुरन्त ही परमानन्द (की प्राप्ति) के लिए तथा प्रियतमा के समान उपदेश देने के लिये होता है।

प्राचीन काल से ही भारत के मनीषियों ने काव्य या साहित्य के प्रयोजन पर विचार किया है। यहाँ ''कला–कला के लिये'' (Art for Art's sake) की बात को नहीं माना गया और न आधुनिक उपयोगितावाद को ही काव्यभूमि में प्रतिष्ठित किया है, अपितु काव्य के दृष्ट तथा अदृष्ट दोनों प्रकार के प्रयोजन माने गए हैं। नाट्य या काव्य के प्रयोजन पर सर्वप्रथम भरत मुनि ने (तृतीय शताब्दी) में विचार किया था। उनका कथन हैं –

वेदविद्येतिहासानामाख्यानपरिकल्पनम्। विनोदजननं लोके नाट्यमेतद्भविष्यति।।

दुःखार्तानां श्रमार्तानां शोकार्तानां तपस्विनाम्। विश्रामजननं लोके नाट्यमेतद् भविष्यति।।

अर्थात् नाट्य कला का प्रयोजन है– लोक का मनोरंजन एवं शोकपीडित तथा परिश्रान्त जनों को विश्रान्ति प्रदान करना। भरतमुनि के पश्चात् ज्यों–ज्यों साहित्यिक विवेचना का विकास होने लगा त्यों–त्यों काव्य के प्रयोजन का भी विशद विवेचन किया गया। आलंकारिक आचार्य भामह के अनुसार –

धर्मार्थकाममोक्षेषु वैचक्षण्यं कलासु च। करोति कीर्तिं प्रीर्तिं च साधुकाव्यनिषेवणम्।।

अर्थात् सत्काव्य का अनुशीलन (1) धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष नामक पुरूषार्थ–चतुष्टय एवं कलाओं में निपुणता (2) यशः प्राप्ति तथा (3) प्रीति का कारण हैं। [1]

आचार्य भामह के पश्चात् रीतिवादी आचार्य वामन ने काव्य के प्रयोजन पर विचार करते हुए लिखा – **काव्यं सत् दृष्टादृष्टार्थ प्रीतिकीर्तिहेतुत्वात्।** (2)

अर्थात् सत्काव्य के दो प्रयोजन हैं – (1) दृष्ट (2) अदृष्ट। दृष्ट प्रयोजन है– प्रीति और अदृष्ट प्रयोजन है– कीर्ति । टीकाकारों के अनुसार यहाँ पर दो प्रकार की प्रीति विवक्षित है एक तो काव्य–श्रवण के अनन्तर सहृदयों के हृदय में होने वाला आनन्द और दूसरी इष्ट प्राप्ति तथा अनिष्टपरिहार से उत्पन्न होने वाला सुख। यहाँ कीर्ति को स्वर्ग का साधन माना गया है– **कीर्ति स्वर्गफलामाहुशसंसारं विपश्चितः।** इसी से कीर्ति को अदृष्ट प्रयोजन कहा गया है।

तदन्तर ध्वनिवादी आचार्य आनन्दवर्धन ने भी प्रीति को ही काव्य का प्रयोजन बतलाया– **''तेन ब्रूमः सहृदयमनः प्रीतये तत्स्वरूपम्''।** (3) किन्तु ध्वनिवादी आचार्य आनन्दवर्धन तथा आचार्य अभिनवगुप्त की 'प्रीति' की व्याख्या रीतिवादी आचार्यो की व्याख्या से भिन्न है। यह तो उस विलक्षण आनन्द का नाम है, जो सहृदयों के हृदय की अनुभूति का विषय है, अथवा रसवादी आचार्य जिसे रसास्वादन या रसानुभूति कहते है। तभी तो आचार्य भोजराज की ''कीर्ति प्रीति च विन्दति'' (4) इस उक्ति की व्याख्या करते हुए व्याख्याकार रत्नेश्वर ने 'प्रीति' का इस प्रकार विवेचन किया है– **''प्रीतिः सम्पूर्णकाव्यार्थसमुत्थः''** ने काव्य का यही प्रयोजन बताया हैं –

धर्मादिसाधनोपायःसुकुमारक्रमोदितः।

काव्यबन्धोऽभिजातानांहद्रयाह्लादकारकः।। (5)

''प्रयोजनमनुद्विश्य मन्दोऽपिन प्रवर्तते।'' अर्थात् प्रयोजन के बिना मूर्ख व्यक्ति भी किसी कार्य में प्रवर्त नहीं होते हैं। प्रत्येक कार्य का प्रयोजन होना अत्यावश्क हैं। महाकवि विश्वनाथ विरचित ऐतिहासिक महाकाव्य शत्रुशल्यचरित का मुख्य उद्देश्य चारित्र्य प्रकट कर, मुख्य रूप से राजा रावरत्न के पौत्र राजा शत्रुशल्य के जीवन–वृत को विस्तारित रूप में प्रकट करना है संस्कृत साहित्य में काव्यशास्त्रीय परम्परा में महाकाव्य के स्वरूप को प्रकट करना, तथा हाड़ौती के प्रसिद्ध ऐतिहासिक महाकाव्य सुर्जन चरित, हम्मीर महाकाव्य, पृथ्वीराज महाकाव्य,

रामविलास महाकाव्य का शत्रुशल्य चरितम् से तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करना महाकाव्य का उद्देश्य है। महाकाव्य में उपलब्ध प्राकृतिक सौन्दर्य से प्राप्त सुख को प्रदान करना भी इसका उद्देश्य हैं। इसमें इतिहास प्रसिद्ध युद्धों का चित्रण किया गया हैं। नायक–नायिका (शत्रुशल्य–श्यामा) का नख–शिख वर्णन, प्रेम–प्रसंग का वर्णन करना महाकाव्य के अध्ययन का प्रयोजन हैं।

महाकवि विश्वनाथ के व्यक्तित्व का मूल्यांकन कर, सारस्वत जगत में अग्रणीय स्थान निर्धारित करना शोध प्रबन्ध का मूल उद्देश्य है। महाकाव्य में कीर्ति एवं प्रीति विवक्षित है, महाकाव्य सहृदयों के हृदय में आनन्दानुभूति कराने वाला है तथा अनिष्ट परिहार से उत्पन्न होने वाला सुख प्रदान करने वाला हैं।

महाकाव्य का मुख्य उद्देश्य सम्पूर्ण ज्ञान का प्रसार करना है, तथा अमंगल का निवारण करना हैं। यह महाकाव्य अपूर्व आनन्द को उत्पन्न करने वाला हैं जो (आनन्द) महाकाव्य के (यश आदि) समस्त प्रयोजनों में मुख्य (मौलिभूत) हैं, और महाकाव्य–श्रवण के अनन्तर (सद्यः) ही रसास्वादन से आविर्भूत होता है।

महाकवि विश्वनाथ विरचित शत्रुशल्यचरित में प्रतिपादित काव्य के प्रयोजन अत्यन्त व्यापक है। इनमें उत्तम, मध्यम तथा अधम सभी प्रकार के काव्य के प्रयोजनों का समावेश हो जाता है। महाकवि ने महाकाव्य में मुख्य (पारमार्थिक) प्रयोजन आनन्दानुभूति (परनिर्वृति) को महत्व दिया है। किन्तु साहित्य तो जीवन की व्याख्या है तथा उसे जीवन से पृथक नहीं किया जा सकता, अतएव सरसोपदेश भी काव्य का एक आवश्यक प्रयोजन माना जाता है।

म. गंगानाथझा द्वारा उदधृत प्रयोजन–

To teach, to please there are the poets aim, or at once to profit and to amuse. Horace -Ars Poetica.

अनुसन्धित्सु के गम्भीर शोध कार्य द्वारा इतिहास प्रसिद्ध राजाओं की प्रशस्ति, युद्ध–चित्रण तथा अन्य हाड़ौती के ऐतिहासिक महाकाव्यों का तुलनात्मक

अध्ययन कर शत्रुशल्यचरित महाकाव्य का आधुनिक संस्कृत साहित्य में स्थान निर्धारित करना तथा महाकाव्यों में स्थित ज्ञान का प्रसार करना मुख्य प्रयोजन हैं।

.....********.....

1. काव्यप्रकाश – आचार्य मम्मट – पृ.स. – 6–7 , प्रथम संस्करण – 1960।
2. काव्यालंकारसूत्रवृत्ति – आचार्य भामह – पृ.स. – 1.1.5, 1989।
3. ध्वन्यालोक – आचार्य आनन्दवर्धन – पृ.स. – १.१, 1978।
4. सरस्वती कण्ड्ठाभरण – भोजराज – पृ.स. – १.४।
5. वक्रोक्तिजीवित – आचार्य कुन्तक – पृ.स. – १.४ / प्रथम संस्करण – 2007।

(स) सहित्य की समीक्षा

मानव संस्कृति के अरूणोदय में वाणी जब आनन्दसर्जन में समर्थ हुई, उसी समय काव्य–साहित्य का जन्म हुआ। [1] जाने अनजाने सहस्त्रों वर्षों तक वाणी के माध्यम से काव्य–धाराएँ प्रवाहित होती रहीं। उन्हीं का एक संगमित रूप वह साहित्य सागर हैं। [2]

साहित्य ऐसी कलात्मक साहित्यिक कृतियों का समुच्चय है, जो मुक्त प्रेरणा तथा मनुष्यों के किए गए प्रयासों की देन होता हैं।

साहित्य का स्वरूप एवं प्रकृति –

'साहित्य' शब्द इतना व्यापक है, कि इसका भिन्न–भिन्न अर्थों में प्रयोग होता हैं। अँग्रेजी में साहित्य का समानार्थी शब्द 'लिटरेचर' होता है। लिटरेचर 'लेटर' या 'अक्षर' से सम्बन्धित होता हैं। और इसी कारण अक्षरों में लिखी गई प्रत्येक वस्तु लिटरेचर कहलाने लगी।

''एडविन ग्रीन ला'' ने कहा है, कि ''सभ्यता के इतिहास से सम्बन्धित कोई भी क्रिया हमारे प्रदेश से बाहर नहीं है।'' पंडित महावीर प्रसाद द्विवेदी ने ज्ञानराशि से संचितकोश का नाम 'साहित्य' माना हैं। रूद्रधर ने श्राद्ध–विवेक में कहा था; **परस्पर सापेक्षाणां तुल्य रूपाणां युगपदे क्रियान्वयित्वं साहित्यम्** तात्पर्य यह है कि परस्पर सापेक्षिक तुल्य कोटि की वस्तुओं के संग्रह को साहित्य कहते हैं। महाकवि बिल्हण ने 'विक्रमांकदेव चरित' में भाषा–विशेष के ग्रन्थ को साहित्य कहा हैं।

'सहितस्य भावं साहित्यम्' भामह के साहित्य से तात्पर्य शब्द और अर्थ का सहभाव या सहितत्व होता हैं। आचार्य कुन्तक ने साहित्य का स्वरूप निम्न बताया है –

साहित्यमनयो शोभाशालितां प्रतिकाप्यसौ।

अन्यूनानतिरिक्तत्वम् मनोहरि व्यवस्थितिः।। व. जी. /1/17

अर्थात जिसमें शब्द और अर्थ दोनों की न्यूनता और आधिक्य से रहित (परस्पर स्पर्द्धा–पूर्वक) मनोहारिणी श्लाघनीय स्थिति हो, वहसाहित्य हैं।

साहित्यिक भाषा का स्वरूप अत्यधिक लाक्षणिक होता हैं। फिर साहित्य की भाषा मात्र वाच्यतत्व व्यंजक ही नहीं होती है, विज्ञान की भाँति, इसका अपना अभिव्यंजनात्मक पहलु होता हैं। प्रयोजन की दृष्टि से, साहित्य का सबसे प्रधान लक्षण उसकी आनन्ददायकता हैं।

संस्कृत साहित्य का महत्व–

विश्वभर की समस्त प्राचीन भाषाओं में संस्कृत का सर्वप्रथम और उच्च स्थान हैं। विश्व साहित्य की प्रथम पुस्तक ऋग्वेद इसी भाषा का देदीप्यमान रत्न हैं। भारतीय संस्कृति का रहस्य इसी भाषा में निहित हैं।

अनेक प्राचीन एवं अर्वाचीन भाषाओं की यह जननी हैं। वर्तमान युग में भी भारत की समस्त भाषाएँ इसी वात्सल्यमयी जननी के स्तन्यामृत से पुष्टि पा रही हैं। पाश्चात्य विद्वान इसके अतिशय समृद्ध और विपुल साहित्य को देखकर आश्चर्य–चकित रह गए हैं। उन लोगों ने वैज्ञानिक ढंग से इसका अध्ययन किया और गम्भीर गवेषणाएँ की है एवं साथ में विश्व की दूसरी प्राचीन भाषाओं का मंथन करके वे यदि 'भाषा–विज्ञान' ऐसे अपूर्व शास्त्र का आविष्कार कर सके तो इसका श्रेय संस्कृत साहित्य के गम्भीर–अध्ययन को हैं।

साहित्य के समीक्षा का अर्थ –

साहित्य के समीक्षा में दो शब्द हैं– 'साहित्य' और 'समीक्षा'। साहित्य शब्द परम्परागत अर्थ से विभिन्न अर्थ प्रदान करता हैं। यह भाषा के संदर्भ में प्रयोग किया जाता है, जैसे हिन्दी साहित्य, आंग्ल साहित्य, संस्कृत साहित्य। इसकी विषय वस्तु के अन्तर्गत गद्य, काव्य, महाकाव्य, नाटक, उपन्यास, कहानी आदि आते हैं, अनुसंधान विधि में साहित्य शब्द किसी विषय के अनुसंधान के विशेष क्षेत्र के ज्ञान की ओर संकेत करता है जिसके अन्तर्गत सैद्वान्तिक, व्यवहारिक और शोध अध्ययन आते हैं।

'समीक्षा' शब्द का अर्थ शोध के विशेष क्षेत्र .के ज्ञान की व्यवस्था करना एवं ज्ञान को विस्तृत करके यह दिखाना हैं, कि किसके द्वारा किया गया अध्ययन इस क्षेत्र मे एक योगदान होगा। साहित्य की समीक्षा का कार्य अत्यन्त सृजनात्मक एवं थकाने वाला है, क्योंकि शोधकर्ता को अपने अध्ययन को युक्तिपूर्वक कथन प्रदान करने के लिए प्राप्त ज्ञान को विलक्षण ढंग से एकत्र करना होता हैं।

'समीक्षा' और 'साहित्य' दोनों शब्दों को ऐतिहासिक विधि में बिल्कुल भिन्न अर्थ हैं। ऐतिहासिक शोध में शोधकर्ता को प्रकाशित तथ्यों के पुनर्निरीक्षण की अपेक्षा बहुत कुछ स्वयं करना होता है, वह ऐसी नई जानकारी को खोजने और एकत्र करने का प्रयास करता है, जो पहले कभी प्रकाशित नहीं हुई। और न ही जिस पर कभी विचार हुआ। सर्वेक्षण और प्रयोगात्मक शोध की तुलना में ऐतिहासिक शोध में साहित्य की समीक्षा में उपलक्षित विचार और प्रक्रिया के भिन्न अर्थ हैं।

'साहित्य की समीक्षा' शब्दों को निम्नलिखित ढंग से परिभाषित किया गया है।

गुड, बार, और स्कट्स के अनुसार– ''योग्य चिकित्सक को औषधि के क्षेत्र में हुए नवीनतम अन्वेषणों के साथ चलना चाहिए स्पष्टतया शिक्षाशास्त्र के विद्यार्थी और शोधकर्ता को शैक्षिक सूचनाओं के साधनों और उपयोगों तथा उनके स्थापन से परिचित होना चाहिए।'' [4]

डब्ल्यू. आर. वर्ग के अनुसार– ''किसी भी क्षेत्र का साहित्य उसकी नींव को बनाता है, जिसे ऊपर भविष्य का कार्य किया जाता हैं। यदि हम 'साहित्य की समीक्षा' द्वारा प्रदान किये गये ज्ञान की नींव बनाने में असमर्थ होते हैं तो हमारा कार्य सम्भवतया तुच्छ और प्रायः उस कार्य की नकल मात्र ही होता है। जो कि पहले ही किसी के द्वारा किया जा चुका है।'' [4]

जॉन डब्ल्यू बेस्ट के अनुसार– ''व्यवहारिक रूप में सम्पूर्ण मानवज्ञान पुस्तकों और पुस्तकालयों में मिल सकता है। अन्य प्राणियों से भिन्न मानव को अतीत से प्राप्त ज्ञान को प्रत्येक पीढ़ी के साथ अपने नये ज्ञान के रूप में प्रारम्भ

करना चाहिए। ज्ञान के विस्तृत भंडार में उसका निरंतर योगदान प्रत्येक क्षेत्र में मानव द्वारा किये गये प्रयासों की सफलता को सम्भव बनाता हैं।'' [4]

समीक्षा ने साहित्य संस्कृति और कला की उपलब्धियों से जनता के अलगाव की युगीन पहचान को अस्तित्ववादी बनाया है, और उनसे सीधे रिश्ते को जोड़कर आध्यात्मिक रूपाहरण की धारणा को सांस्कृतिक प्रगति की समाजवादी धारणा बना दिया हैं।

साहित्य समीक्षा के लाभ –

1. अध्ययनकर्ता को शोध समस्या के सन्दर्भ में सामान्य ज्ञान विकसित हो जाता हैं।
2. अनुसन्धान कार्य हेतु अनुसन्धान प्रारूप एवं उपयोगी पद्धतियाँ तथा प्रवधियाँ अनुसंधित्सु को स्पष्ट हो जाती है कि अध्ययन कैसे सम्पादित करना है।
3. साहित्य की समीक्षा :– अध्ययनार्थ निर्मित परिकल्पनाओं/शोध प्रश्नों के निर्माण में सहायक होती है।

अतः सामाजिक अनुसन्धान के परिपेक्ष्य में सामाजिक शोध के प्रमुख सोपानों के अन्तर्गत 'साहित्य की समीक्षा' करना अनुसंधान का एक महत्वपूर्ण सोपान हैं। शत्रुशल्यचरित महाकाव्य में चौहान वंश का विस्तार पूर्वक वर्णन किया गया हैं, जो शोध विषय को ऐतिहासिक बनाता हैं। महाकाव्य की समीक्षा ऐतिहासिक साहित्य के क्षेत्र में नए आयाम स्थापित करती हैं।

.....********.....

1. 'शब्दार्थमयमानन्दसर्जनं हि काव्यम्' लेखक के द्वारा काव्य की परिभाषा। काव्य की सैद्वान्तिक परिभाषा का मूल ऋग्वेद 5.1.1.5 में मिलता हैं, जिसके अनुसार काव्य मधुमत्तम वाणी है, यह मनीषा है, हृदय के लिए शान्ति प्रदायक है, श्रोता के हृदय को आपूर्ण कर देता है और उसे बल प्रदान करता है।

2. संस्कृत साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास – रामजी उपाध्याय – चौखम्बा विद्याभवन – 1993

3. साहित्य विधाओं की प्रकृति (हिन्दी) – देवीशंकर अवस्थी – राजकमल प्रकाशन

4. शिक्षा अनुसंधान :– आर. ए. शर्मा, सूर्या पब्लिकेशन मेरठ पृ.स. 7, 2012

(द) शोध प्रविधि

वर्तमान युग में जीवन के सभी क्षेत्रों में गतानुगतिकता की उपेक्षा करके शोध के महत्व को स्वीकार करते हुए नवीन मूल्यों की स्थापना पर बल दिया जा रहा हैं। जिस प्रकार वैज्ञानिकों के शोधकार्य से समाज के विविध क्षेत्रों में प्रगति सम्भव हुई है। उसी प्रकार साहित्यिक अनुसन्धान से साहित्य की विविध विधाओं को समृद्धि प्राप्त होती हैं, और उसमें स्वरूप बोध में सुगमता रहती हैं। वस्तुतः अनुसन्धान के प्रति निष्ठा साहित्य क्षेत्र में अत्यन्त आवश्यक है, क्योंकि इसके अभाव में न तो सर्जनात्मक साहित्य में विषय की प्रामाणिकता आ पाती है, और न समीक्षात्मक कृतियों में तुलनात्मक विश्लेषण की पद्धति को अपनाया जा सकता हैं। साहित्य की सार्थकता का निर्णय केवल भावुकता वश नहीं किया जा सकता हैं। इसके लिए शोध दृष्टि अथवा तटस्थ विश्लेषण की पद्धति को अपनाया जाना चाहिए।

अन्वेषण अज्ञात वस्तु का ज्ञापन होता हैं, और किसी भी रचना के अभिप्राय को समझने का प्रयास किया जाता हैं। अनुसन्धान में परीक्षण निहित हैं, जिसमें सामग्री का बाह्य एवं आन्तरिक परीक्षण किया जाता हैं। अनुसन्धान में सन्धान निहित है, जिसके अनुसार प्राप्त सामग्री को सृजनात्मक अभिप्रायों को प्रमाणित किया जाता हैं। परीक्षण के अन्तर्गत वैज्ञानिक परिकल्पना के आधार पर समीक्षण कर कार्य की उपयोगिता सिद्ध की जाती हैं। अनुसन्धान में तथ्यों का अन्वेषण किया जाता हैं, और पर्याप्त तथ्यों के आधार पर ही वस्तुपरक दृष्टिगत रचना का विवेचन किया जा सकता है। अन्वेषण में प्रमाणिकता पर विशेष आग्रह रहता हैं।

अनुसन्धान एक वैज्ञानिक प्रक्रिया है, और इसका सम्बन्ध व्यापक रूप से सभी प्रकार के उपलब्ध साहित्य से हैं। अनुसन्धान में हम अर्जित ज्ञान के आधार पर किसी विषय के सम्बन्ध में उसके आगे अभी तक अप्रकाशित अप्राप्त तथ्यों का अन्वेषण किया जाता हैं। इसके साथ ही किसी विषय से सम्बद्ध उपलब्ध के आधार विषय के सम्बन्ध में गलत तथ्यों के निवारण के लिए उनका नवीन ढंग से निर्वाचन और स्थापन आवश्यक हैं। अनुसन्धान में प्रस्तावित विषय से सम्बद्ध

मौलिकता की सद्भावना आवश्यक हैं। अनुसन्धान में संरचना का व्यापक महत्व है। वह तथ्यपरक हों क्योंकि विषय और अनुसंधान का घनिष्ठ सम्बन्ध हैं। अनुसन्धान में ज्ञात से अज्ञात की ओर जाते है। अनुसन्धान में ज्ञात अनुपलब्ध सामग्री का अन्वेषण आवश्यक है। नवीन तथ्यों के अन्वेषण के द्वारा प्रचलित तथ्यों का संशोधन अनुसन्धान का कार्य है। अनुसन्धान में किसी भी विचारधारा के विकासक्रम को निर्धारित करना आवश्यक है। उसमें अपनी परिकल्पना के आधार पर मूल्यों का निर्धारण किया जाता है।

लुण्डबर्ग के शब्दों में अनुसन्धान वह है, जो अवलोकित तथ्यों के सम्भावित वर्गीकरण, सामान्यीकरण और सत्यापन करते हुए पर्याप्त रूप में वस्तु विषयक अनुसन्धान का क्षेत्र व्यापक हैं, और साहित्यिक व वैज्ञानिक अनुसन्धान में अन्तः सम्बन्ध अनुसन्धान में निष्पक्षता भी अत्यावश्यक हैं। अनुसंधान की प्रक्रिया चार प्रकार की हो सकती है, प्रथमतः बिना किसी उद्देश्य के निरीक्षण करना आवश्यक है। इसका व्यवस्थित अनुसन्धान भी आवश्यक है। निरीक्षण के बाद उस वस्तु को जानने के लिए व्यवस्थित रूप से प्रयत्न आवश्यक हैं। विषय को निश्चित कर अनुमान से परिकल्पना निर्धारित की जाती हैं। परिकल्पना के निर्धारण के उपरान्त नये–नये प्रयोग करना भी आवश्यक हैं। अनुसन्धान के माध्यम से सिद्धान्त का निर्माण एवं सिद्धान्त के आधार पर अनुसन्धान होता हैं। सिद्धान्त अनुसन्धान को व्यापक सामग्री प्रदान करता हैं। वह अनुसन्धान को परिभाषित करने में सहायक होता है, लेकिन सिद्धान्त की अपेक्षा वैज्ञानिक दृष्टिकोण ही अपनाना चाहिए।

अनुसन्धान : स्वरूप–

मानव मन में स्वभावतः नई–नई जिज्ञासाओं का उदय होता रहता है। तर्कशील और विवेकशील प्राणी होने से मनुष्य अपनी जिज्ञासाओं से सम्बन्द्ध क्षेत्रों में नये–नयें प्रयोगों के द्वारा नए–नए अन्वेषणों में प्रवृत्त रहता है। ऐसे नये अन्वेषणों की प्रवृत्ति के पीछे मनुष्य का मूल उद्देश्य जीवन को अधिक सुखमय तथा उदात्त, विराट और सांस्कृतिक बनाना होता है।

ज्ञान विज्ञान के विविध क्षेत्रीय अन्वेषण को आधुनिक शब्दावली में शोध संज्ञा से अभिहित किया जाता है। किसी भी संस्कृति में जन्में और जी रहे समाज के लिए अपनी संस्कृति के समुचित विकास के लिए ज्ञान–विज्ञान के विज्ञान, दर्शन और साहित्य क्षेत्रों में शोध मूलभूत अनिवार्यता है।

परिभाषा –

1. शोध विश्वसनीय समाधानों और निष्कर्षो तक पहुँचने की वह प्रक्रिया है, जिसमें योजनाबद्ध कार्य और तत्सम्बन्धों प्राप्त सामग्री का विधिवत् संकलन, विश्लेषण और व्याख्यान समाविष्ट होते हैं।
2. बाबू गुलाबराय ने अनुसन्धान को वैज्ञानिक व साहित्यिक स्वरूप का माना हैं।
3. परशुराम चतुर्वेदी ने अनुसन्धान की प्रक्रिया के अन्तर्गत वस्तुविषयक एंव तात्विक गवेषणा, सूक्ष्म निरीक्षण एवं परीक्षण भी आवश्यक माना है।
4. डॉ. नगेन्द्र के अनुसार– अनुसन्धान की कोई निश्चित परिभाषा नहीं हो सकती। नन्ददुलारे वाजपेयी ने अज्ञात तथ्यों का उद्‌घाटन, बिखरे तथ्यों का संकलन, विषय सम्बन्धी सामग्री का संकलन, प्राप्त सामग्री का सुव्यवस्थित सुनियोजन, सम्यक विश्लेषण एवं निष्कर्ष अनुसन्धान के आवश्यक तत्व माने हैं।

शोध के विविध पर्याय–

शोध के लिए प्रयुक्त अनुसन्धान, गवेषणा, अन्वेषण, अनुशीलन व खोज आदि शब्दों से शोध का सम्पूर्ण अर्थ प्रकट नहीं होता। इसकी व्युत्पत्ति अनुसार इसे अँग्रेजी में (Research) रिसर्च कहते हैं। 'Re' यानि पुनः Search यानि खोज। इसका सामान्य अर्थ है, अवधानपूर्वक अथवा श्रमपूर्वक की गई खोज।

शोध के अर्थ एवं स्वरूप को समझने के लिए शोध के पर्याय रूप में प्रयुक्त होने वाले शब्दों की समीक्षा निम्न है –

1. अन्वेषणा –

अन्वेषणा में इष् धातु है, जिसका तात्पर्य इच्छा करना या इष्ट को प्राप्त करने का प्रयत्न करना है। अनु उपसर्ग पूर्वक, इष् धातु का अर्थ होगा अभीष्ट को

खोजना। इस प्रकार अन्वेषण का अर्थ होगा खोज, जाँच पड़ताल, गवेषणा, अनुसन्धान आदि।

2. गवेषणा –

व्युत्पति की दृष्टि से गवेषणा 'गो' शब्द के साथ 'इष्' धातु से ल्यूट् (अन) प्रत्यय के द्वारा निष्पन्न होता है। समय के साथ गवेषणा के 'ढूंढना' और 'खोजना' जैसे अर्थो में विस्तार हुआ और इस शब्द के भिन्न अर्थ लक्षित होने लगे, जैसे – उत्कट इच्छा, अभीष्ट की प्राप्ति के लिए श्रमसाध्य अथवा खोजपूर्ण प्रयास इत्यादि।

3. अनुशीलन : परिशीलन : –

अनुशीलन और परिशीलन शब्दों का प्रयोग प्रायः 'समीक्षा या आलोचना' के समानार्थक शब्दों के रूप में किया जाता है। 'शील' शब्द का तात्पर्य–ध्यान, अभ्यास, चिन्तन, मनन अथवा अध्ययन। इस प्रकार अनुशीलन का अर्थ–किसी विषय के सम्बन्ध में सतत् किन्तु सम्यक् विचार करना।

4. समीक्षा –

समीक्षा का मूल अर्थ है सम्यक् रूप से इक्षण अर्थात देखना। कालान्तर में इस शब्द का प्रयोग 'विचार करना' अथवा 'परीक्षण करना' आदि अर्थो में होने लगा। समीक्षा शब्द बौद्धिक विवेचन को इंगित करता है।

5. आलोचना –

आलोचना का सामान्य अर्थ 'बुद्धि' की आंखो से देखना 'मनन' अथवा विचार करना है। आलोचना तथा शोध में अन्योन्याश्रितता के रहते हुए भी व्यापक और गम्भीर भेद है। शोध पद्धति अनिवार्यतः वैज्ञानिक होती है, जबकि आलोचना में शोध की सी वैज्ञानिकता अनिवार्य नहीं होती।

इस प्रकार खोज, शोध, डाक्टर, थीसिस 'शोध प्रबन्ध, रिसर्च, अनुसन्धान आदि शब्द शोध के पर्याय हैं।

शोध शब्द प्रक्रिया बोधक और उपलब्धि का अभिधान सूचना शब्द है। शोध प्रक्रिया में एक निश्चित वैज्ञानिक कार्यविधि का पालन करते हुए तथ्यों के आकलन

पर शोधार्थी की दृष्टि रहती है और उपलब्धि रूप में आकलित तथ्यों के विश्लेषण और तर्कपूर्ण परीक्षण द्वारा उपलब्ध निष्कर्षों को प्रस्तुत करता है।

अनुसन्धान के प्रकार/विधियाँ

अनुसन्धान के मुख्यतः सात प्रकार हैं –

1. ऐतिहासिक अनुसन्धान ।
2. सर्वेक्षण अनुसन्धान।
3. पद्धति परक अनुसन्धान।
4. घटनोत्तर अनुसन्धान।
5. प्रायोगिक अनुसन्धान।
6. क्रियात्मक अनुसन्धान।
7. दार्शनिक अनुसन्धान।

1. ऐतिहासिक अनुसन्धान –

इतिहास के किसी भी ज्ञान के क्षेत्र में अतीत की घटनाओं का एकीकृत वर्णन होता है। जो सम्पूर्ण सत्य के लिए विषय के अध्ययन का ऐतिहासिक उपागमन उस विषय के अतीत का वर्णन करने के प्रयास की ओर संकेत करता है। जिसके प्रकाश में वर्तमान समस्याओं के निराकरण के लिए समाधान प्रस्तुत किए जाते हैं। कौल [4] ने इसे शोध की वह विधि बतलाया है, जिसमें भूतकालीन तथ्यों का अन्वेषण एवं वर्णन किया जाता है।

''यह शोध की वह विधि है जिसमें ऐतिहासिक महत्व के तथ्यों तथा प्रदत्तोंको खोजकर एकत्र किया जाता है। और वर्गीकरण करके उनकी व्याख्या तथा आलोचना की जाती है अन्ततः उनके आधार पर कुछ मान्य निष्कर्ष निकाले जाते हैं। इस प्रकार इसमें अतीत की घटनाओं का किसी विशिष्ट दृष्टिकोण से अध्ययन किया जाता है। और संग्रहित सामग्री की विश्लेषणात्मक व्याख्या की जाती है।''

शिक्षा परिभाषा कोश [5] में ऐतिहासिक अनुसन्धान की अग्रांकित परिभाषा प्रस्तुत की गयी है –

''ऐतिहासिक दृष्टि से महत्वपूर्ण तथ्यों का अन्वेषण करने, उनका अभिलेख रखने तथा उनकी व्याख्या करने की वह प्रक्रिया, जिसमें सम्बन्धित आधार सामग्री को एकत्रित करने, उसे समग्ररूप से रखने और आलोचनात्मक विन्यास करने के उपरान्त उसकी व्याख्या की जाती है, ऐतिहासिक शोध विधि कहलाती है।''

करलिंगर के अनुसार –

''ऐतिहासिक अनुसन्धान अतीत की घटनाओं, विकासक्रमों तथा अनुभवों का वह सूक्ष्मात्मक अन्वेषण होता है। जिसमें अतीत से सम्बन्धित सूचनाओं के साधनों तथा प्राप्त संतुलित विवेचना की वैद्यता कर सावधानी पूर्व परीक्षण सम्मिलित रहता है।''

एफ. एल. विहटनी के अनुसार –

''ऐतिहासिक अनुसन्धान का सम्बन्ध अतीत के अनुभव से रहता है इसका उद्देश्य एक घटना, तथ्य तथा अभिवृत्ति से सम्बन्धित अतीत की प्रवृतियों के अन्वेषण द्वारा अभी तक अबोध्य सामाजिक समस्याओं के अनुचिन्तात्मक विधि की अनुप्रयुक्ति होता है। इसके द्वारा मानव विचार तथा व्यवहार के उन विकास क्रमों की खोज करना होता है। जिससे किसी एक सामाजिक गतिविधि के आधार पर पता लगता है।''

ऐतिहासिक अनुसन्धान के अन्तर्गत ही शैक्षिक अनुसंधान आता है।

2. सर्वेक्षण अनुसन्धान –

करलिंगर के अनुसार [6] ''सर्वेक्षण अनुसन्धान सामाजिक, वैज्ञानिक अन्वेषण की वह शाखा है, जिसके अन्तर्गत व्यापक तथा कम आकार वाली जनसंख्याओं का अध्ययन उनमें से चयन किये गये प्रतिदर्शी के आधार पर इस आशय से किया जाता है कि उनमें व्याप्त सामाजिक तथा मनौवैज्ञानिक चरों के घटनाक्रमों, वितरणों तथा पारस्परिक अर्न्तसम्बन्धों का ज्ञान उपलब्ध हो सके।''

3. पद्धति परक अनुसन्धान –

एफ. एल. करलिंग के अनुसार ''पद्यतिपरक अनुसन्धान प्रदत्तों को प्राप्त एवं विश्लेषण करने [6] तथा सांख्यिकी, गणित व मापन के सैद्धान्तिक एवं व्यवहारिक पक्षों की नियन्त्रित खोज है। बिना पद्यतिपरक अनुसन्धान के आधुनिक, सामाजिक वैज्ञानिक एवं शैक्षिक अनुसन्धान, अनुसन्धान के अंधेरे युग में ही रहेगा।''

4. घटनोत्तर अनुसन्धान –

करलिंगर के अनुसार [7] ''यह एक ऐसे प्रकार का अनुसन्धान है जिसमें स्वतन्त्रचर व चरों का कार्य हो चुका है तथा अनुसन्धान कर्ता किसी आश्रित चर अथवा चरों के निरीक्षण से कार्य प्रारम्भ करता है। वह स्वतन्त्र चर का पश्चावलोकन करता है। ताकि आश्रित चरों पर पड़ने वाले प्रभावों तथा उनके सम्बन्धों को यह ज्ञात कर सकें।''

5. प्रायोगिक अनुसंधान –

मुनरो के अनुसार [7] ''शिक्षा में प्रयोग उस प्रकार के शैक्षिक अनुसन्धान को कहते हैं, जिसमें अनुसन्धानकर्ता उस बालक अथवा समूह की शिक्षा से सम्बन्धित तत्वों का नियन्त्रण कर उसकी उपलब्धि पर प्रभाव देखता है।''

6. क्रियात्मक अनुसंधान –

कोरी के अनुसार [8] ''यह एक प्रक्रिया है जिसके द्वारा चिकित्सक या व्यवहारिक कार्यकर्ता अपनी समस्याओं का वैज्ञानिक ढंग से अध्ययन करता है। जिससे कि अपने निर्णयों एवं कार्यों का पथ प्रदर्शन कर सकें, उनमे सुधार कर सकें, या त्रुटियों को दूर कर सकें।''

7. दार्शनिक अनुसंधान –

इस अनुसन्धान के अन्तर्गत किसी व्यक्ति या समुदाय के शैक्षिक विचारों के आधारभूत दर्शन का अन्वेषण आता है। बहुत से शैक्षिक विचारकों ने अपने विचारों के दर्शन को स्पष्ट रूप से व्यक्त नहीं किया है। तथा विचार इधर–उधर विभिन्न लेखों तथा ग्रन्थों में बिखरे रहते हैं और कभी–कभी अपरोक्ष रूप में व्यक्त नहीं होते है। इसलिए उनकी खोज और संकलन परिश्रम साध्य होता है। भूतकाल से

सम्बद्ध दार्शनिक अनुसन्धान में दत्त संग्रहण और समालोचन मे अनुसन्धान के समान कार्य करना होता है। दार्शनिक अनुसन्धान में भी ऐतिहासिक अनुसंधान की भाँति प्राथमिक स्त्रोतों के न मिलने पर या उनकी कमी होने पर गौण स्त्रोतों का सहारा लेना पड़ता है।

प्रस्तुत शोध में प्रयुक्त शोध विधि –

प्रस्तुत शोध में चौहान इतिहास सम्बन्धित शत्रुशल्यचरित महाकाव्य का परम्परा में चतुर्थ स्थान निर्धारित करते हुए, 22 सर्गो में विभक्त इस काव्य में बादशाह अकबर, जहांगीर एवं शाहजहाँ कालीन रणथम्भौर, गौंडवाना गुजरात एवं दक्षिण भारत में लड़े गये युद्धों का यथार्थ निरूपण है। अतः प्रस्तुत शोध अध्ययन में ऐतिहासिक शोध विधि का उपयोग किया गया है। चूंकि चौहान वंश में उत्पन्न राजा वासुदेव से शत्रुशल्य तक सभी इतिहास का अंग है। अतः शोधकर्त्री द्वारा ऐतिहासिक शोध विधि का प्रयोग इस अध्ययन में उपयुक्त समझा गया है। जो अध्ययन की प्रमाणिकता को स्पष्ट करता है।

.....********.....

1. अनुसंधान प्रक्रिया एवं पाठालोचन – पृ.स. – 3 – 8
2. रिसर्च मेथडोलॉजी – वीरेन्द्र प्रकाश शर्मा संस्करण – छठा – 2010
3. सामाजिक अन्वेषण में सर्वेक्षण पद्धतियों – वीरेन्द्र प्रकाश शर्मा – 2011
4. लोकेश कौन – मेथोडोलॉजी ऑफ एलूकेशन रिसर्च – पृ.स. – 178 – नई दिल्ली, वानी एजुकेशन बुक्स 1987
5. शिक्षा परिभाषा कोष – पृ.स. – 59, नयी दिल्ली, केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय भारत सरकार, 1977
6. डॉ. एच. के कपिल – अनुसन्धान विहियों – पृ.स. – 179, आगरा – हर प्रसाद भार्गव – 1981
7. पारसनाथ राय – अनुसंधान परिचय – पृ.स. – 208, 150 – आगरा –लक्ष्मी नारायण अग्रवाल – 1985

8. डॉ. गोविन्द तिवारी – शैक्षिक एवं मनोवैज्ञानिक अनुसंधानों के मूलाधार – पृ. स. – 140, आगरा विनोद पुस्तक मन्दिर – 1985

द्वितीय अध्याय

''शत्रुशल्यचरित'' महाकाव्य की सर्गानुसार कथावस्तु का सामान्य परिचय

प्रथम सर्ग – चाहुवाणोद्भवः

ऐतिहासिक काव्य परम्परा में महाकवि विश्वनाथ विरचित 'शत्रुशल्यचरित' एक अद्वितीय महाकाव्य है। प्रथम सर्ग में नारायण के पुत्र महाकवि विश्वनाथ ने महाकाव्य की निर्विध्न समाप्ति की कामना करते हुए तीनों प्रकार का मंगलाचरण किया हैं– ''आशीर्नमस्क्रियावस्तुनिर्देशोवापि''। जिस प्रकार किसी भी मांगलिक कार्य की निर्विध्नता के लिए प्रत्येक व्यक्ति अपने ईष्ट देव की प्रार्थना करता है, उसी प्रकार महाकवि ने 'शत्रुशल्यचरित' के समाप्त्यर्थ अपने ईष्टदेव राधा–माधव स्वरूप की वन्दना की है।

राधा और कृष्ण की प्रणय शोभा का वर्णन करते हुए महाकवि कहते है कि अत्यन्त गौरवर्णीय कुचकलशोंवाली वृषभान की तनया राधा जी का आलिंगन करते हुए मेघवर्ण वाले और ललित अंगराग की माला धारण करने वाले, उज्ज्वल कान्ति युक्त देह वाले श्री कृष्ण की शोभा सर्वोत्कृष्ट हैं। यहाँ कृष्ण को मेघ के समान और राधा जी को विधुत सादृश्य बताया हैं। द्वितीय श्लोकान्तर्गत पुराण पुरूष कृष्ण स्वरूप भगवान विष्णु की वन्दना की गई हैं। स्तुति करने वाले देवगणों की, मुकुट मणियों की कान्ति से रंजित पाद–पीठ वाले, रूक्मिणी के केलिकलाविधान की विलास लीला से युक्त पुराण पुरूष श्री कृष्ण की सर्वदा जय हो।

यहाँ मंगलाचरण के दोनों पदों में काव्य के नायक–नायिका श्री शत्रुशल्य–श्यामाकुमारिकयों के श्रृंगार रूप का वर्णन किया है।

वह भगवान विष्णु अपने चरण कमलों से प्रयाग तीर्थ को पवित्र करते हैं। जिस पादप्रयाग से यह देवताओं की नदी गंगा प्रवाहित होती हैं। स्वर्गवासी देवता

नमन करते हुए, उनके मुकुटों की अग्र भाग से खचित रत्न और मणियों से युक्त किरणों से उपलक्षित त्रिवेणी (गंगा, यमुना, सरस्वती) शोभायमान हो रही हैं। इस प्रकार भगवान विष्णु के प्रयाग तीर्थ रूपी युगलचरण की स्तुति तृतीय श्लोक में की गई है। चतुर्थश्लोकान्तर्गत दैत्यों के सहांरक, भगवान विष्णु ने नेत्र सूर्य व चन्द्रमा की भाँति प्रकाशवान हैं, यहाँ भगवान विष्णु के दक्षिण नेत्र को सूर्य व वामन नेत्र को चन्द्रमा बताया है, और वह नयन पद्यालया लक्ष्मी के मनोहर मुख को प्रफुल्लित करते हैं। जिस प्रकार कमल सूर्य से प्रफुल्ल होता है, उसी प्रकार लक्ष्मी का मुखारविन्द सूर्य और चन्द्रमा दोनों से प्रफुल्लित होता हैं। महाकवि भगवान विष्णु और लक्ष्मी को नमस्कार करते हैं।

प्रफुल्लित नेत्रों वाले भगवान विष्णु की भाँति श्रीकृष्ण के मुखारविन्द की अत्यन्त सुन्दर कान्ति की वन्दना के साथ साथ महाकवि ने पाँचवे श्लोक में नारायण के समान अपने पिता 'नारायण पण्डित' को नमस्कार करते है, जो पिता भगवान विष्णु के मंत्रोच्चारण रूपी (गरूड़) वैनतेय के भय से मुक्त होने के लिए भौतिक, मानसिक व आध्यात्मिक तीनों पापों रूपी सर्प को दूर भगाने वाले नारायण के समान हैं। छठे श्लोकोन्तर्गत भगवान भास्कर की स्तुति की गई है कि जिसके किरण रूपी पैरों के पर्वत शिखरों पर गिरते ही वेदों की ध्वनियाँ सुनाई पड़ती हैं, ऐसे भगवान सूर्य कमलों के विषाद को दूर करने के समान लोकों का कल्याण करें। यहाँ भगवान सूर्य की भाँति ही नृप शत्रुशल्य के पराक्रम का उल्लेख किया है, जिसके चक्रवर्ती होने के चारों और वेदों श्रुतियों का मन्त्रोच्चारण समुल्लास से होता रहता हैं।

'शत्रुशल्यचरित' महाकाव्य में महाकवि ने नायक शत्रुशल्य का चरितार्थ उत्कृ –ष्ट रूप से प्रदर्शित किया हैं। वह प्रसिद्ध प्रकाशमान व देवताओं की आत्मा भगवान भास्कर की भाँति राजा शत्रुशल्य को सुर्योकुलोत्पन्न बताया गया है।

कमलवाटिकाओं में राजहंस समुल्लासित रहते हैं। एवं हसों से श्रेष्ट राजा आनन्दित रहते हैं। इसके बाद संसार में गहन अन्धकार सूर्य के उदय होते ही नष्ट हो जाता है वैसे ही प्रजा समूह के अन्तर्गत समस्त लुण्टाक, यवन आदि

नृशंस व निष्कृप, राजा शत्रुशल्य के आते ही समाप्त हो जाते हैं। महाकवि विश्वनाथ ने आलौकिक शक्ति, बुद्धि और दृष्टि को शीघ्र निर्मल करने का प्रयास किया हैं, यहाँ काव्य के मंगलाचरण में राजा और सूर्य दोनों का ही प्रकरण बताया गया हैं। इसके बाद महाकवि अपनी वाणी को पवित्र करने को कहा है कि उदण्ड, अविनित बोलने वाले मनुष्य पण्डित माने जाते है। जैसे–तैसे दुर्वचनों के दोषों का भण्डार अथवा उससे अंकित लक्षण युक्त मैरी काव्य रूप वाणी को, कमल की भाँति सुर्यरूपी नायक उद्भासित करें। कवि का अभिप्राय है कि भगवान भास्कर के समान राजा शत्रुशल्य ने नृपसमूह को आनन्दित किया, यवनादि के लिए अत्यन्त क्रूर वह राजा मेरी अन्तर्दृष्टि को पवित्र करें, जो पण्डित मानिनों के लिए दारूण थे, महाराज शत्रुशल्य, दोषों से चिंहित जड़मतियों के समूह में डूबी वाणी को कमलिनी की भाँति क्यों नहीं उद्भासित करेंगे ? मैं अपने हाथों से चन्द्रमा को पकड़ने या दोनों भुजाओं से समुद्र तैरने अथवा पंगु पैरो से मेरू पर्वत को लाँघने की भाँति अपनी वाणी से सूर्यवंश की स्तुति करने का प्रयास कर रहा हुँ।

दशवें श्लोक में महाकवि कहते है कि वाल्मीकि कालिदास जैसे महाकवियों द्वारा वन्दित, महाकवि सूर्यकुलोत्पन्न शत्रुशल्य के वंश का वर्णन कर स्वयं को गौरवान्वित मानता हैं। स्वर्गलोक से भू–लोक पर आने की इच्छुक भगवती (सरस्वती) मार्गजनित श्रम के लिए, शीतल वृक्ष की छाया के समान आदिकाव्य रामायण के रचयिता महामुनि वाल्मिकी भी जिस सूर्यवंश का गुणगानकरने वाले हो गए, तो अन्य व्यक्तियों का कहना क्या ? जिस सूर्यवंश में उत्पन्न मनुष्यों में श्रेष्ठ भागीरथी को स्वर्ग से लाने वाले राजा सगर, भ्रूभंगो से विनाश कर देने वाले राक्षसों के धूमकेतु, दशरथ पुत्र राम आदि जिस वंश में अवतरित हुए हों, जिनके चरण कमलों की रज से ही मुनि गौत्तम की पत्नी अहिल्या ने अपना शिला स्वरूप त्याग दिया था तथा इन्द्र के अभिसार के कारण अहिल्या को शाप मुक्त किया था।

महाकवि कहते है कि अत्यन्त अल्प बुद्धि वाला मैं सज्जन सूर्यवंशी राजाओं की प्रशस्ति में वाचलता की हो तो भँली–भाँति रूपेण मौनव्रत का पालन करूँगा।

महाकवि वाल्मीकि–कालिदास–भट्टि–भवभूति–मुरारी, राजशेखर, जयानक, नयचन्द्रसूरि, चन्द्रशेखर आदि अनेक कवियों ने सूर्यवंश का वर्णन किया हैं, समुद्र से अन्य तेरह रत्नों को निकालने की भाँति मेरे काव्य में तो सुधा का उद्धरण अवश्य ही होगा, कवि कहते है कि मेरी रसना द्वारा राजा शत्रुशल्य के यश का प्रसार सुधा की भाँति अमर हैं। जगत के रचयिता ब्रह्या ने अपने मन से जिन दश ऋषियों को निर्मित किया है उनमें से एक तपस्वी वशिष्ट है जो सूर्योकुलोत्पन्न राजाओं के पुरोहित हुए।

सोलहवें श्लोकान्तर्गत महाकवि कहते है कि वह सुप्रसिद्ध ब्रह्यर्षि वशिष्ठ जी, अरून्धती के पातिव्रत्य तेज से दैत्यों के शत्रु भगवान विष्णु की सर्वदा जयकार हो इस प्रकार मुनि वशिष्ट के तेज और उनकी तपस्विता का वर्णन करते हुए कवि कहते हैं कि मुनि वशिष्ठ पृथ्वी को दुष्ट राजाओं के भय से दबी जानकर वीर राजाओं की उत्पति के लिए यज्ञाहुति करते थे इसके बाद महामुनि वशिष्ठ ने मन्त्रों से हवन वेदिका के चारों और बाणों से, और सरसों नामक प्रसिद्ध द्रव्य मधु, तिल आदि सामग्री से हवन किया, देवता भी आश्चर्य करने लगे। इसके बाद उस अग्निकुण्ड से सूर्य भयंकर जाज्वल्यमान किरणों के समूह से युक्त होकर मुखाकृति अम के समान प्रकट हुआ। महाकवि यहाँ संशय प्रकट करते हुए कहते है कि क्या यह पूर्वोक्त अवभासित द्वादशात्मा सूर्य, किन्तु वह भुविहारी नहीं है। क्या यह अग्नि है, किन्तु दिशाओं में प्रसारित नहीं है। क्या यह प्रलयकाल का समय है, जब युग का अन्त मृत्यु है, वह भीषण यमराज है किन्तु वह दीप्ति युक्त देह वाला कृष्ण वर्ण युक्त यम के समान हैं।

जो प्रभा मण्डल से विभूषित अंगो वाला, देदीप्यमान धनुष बाणों से युक्त, कवचयुक्त शरीर वाला, एक छत्र से सुसज्जित वह चाहुवान संसार में चक्रपाणि विष्णु के समान निश्चित कहा गया हैं। क्रोधयुक्त रक्त नेत्रों वाला, देदीप्यमान शरीर की शोभा से युक्त, शीघ्र ही शत्रुओं के समूह को जीतने वाला, घुटने तक लम्बा प्रचण्ड भुजदण्ड धारण करने वाला, ऐसा अति भीषण कोई पुरूष मूर्ति प्रार्दुभूत हुई। तीव्र अश्रुधारा से युक्त, शीघ्र ही हवन कुण्ड से पुरूष की प्रादुर्भाव से, वह मुनि वशिष्ठ अत्यधिक रोमांचित हुए। वह मुनिप्रवरों वशिष्ठ की तपाविन ही

उस पुरूष के रूप में साकार होकर उपस्थित हुई। उसका नाम 'अनल' प्रसिद्ध हुआ। यह पृथ्वी के दुष्ट राजाओं के भार को हटाने के लिए चारभुजा धारण कर अवतरित हुआ अतएव यह अग्नि पुरूष 'चाहुवान' के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

अनेक ऐतिहासिक महाकाव्यों में चाहुवान की उत्पत्ति सूर्यमण्डल से मानी गई हैं।

इसके बाद मुनि वशिष्ठ मंगलमय शुभमुहर्त में प्रयाग–पुष्कर आदि पवित्र जलाशयों, तीर्थों के जल एवं सुसंस्कृत युक्त वेद मन्त्रों से उस अनल नामक चाहुवान का राज्याभिषेक कर सिंहासन पर विराजित किया। मुनि वशिष्ठ का पुत्र वरूण उसका मित्र था जो दिननाथ वशं में एक श्रेष्ठ शूरवीर चाहुवान था। प्रसन्नचित अमृत युक्त नेत्रों से जैसे–तैसे उत्सुकता पूर्वक देखकर उसे ''शत्रुओं पर शीघ्र ही विजय प्राप्त करो'' आशीर्वाद से अभिनन्दित करते है। सम्पूर्ण मन्त्रों से युक्त वेदों, उनके तत्व ज्ञान के पूर्ण होने पर पुरोहित वशिष्ठ ने सम्पूर्ण राज्य के चक्रवर्ती अभिषिक्त करके उस चाहुवान के भयंकर क्षात्र तेज और उसके रत्न की तेज की तरह अत्यधिक उच्च जाज्वल्य मान हुआ। वह राजा चाहुवान निश्चय ही धर्मात्मा और कठोर दण्ड नहीं देने वाला था। यह राजा शत्रुओं में भयंकर भीमसेन, किन्तु मगध राजाओं का शत्रु नहीं था। भीमसेन ने तो जरासन्ध की हत्या की थी, यह वीर राजचिन्ह युक्त महाभारत के तृतीय पाण्डव अर्जुन है। जो दयावान है। अर्जुन ने भी महाभारत युद्ध में दुर्योधन पक्ष पर कृपा की थी। यह चाहुवान नाम से अभिहित 'अ' लोप इति पक्ष में श्री हर्ष विरचित नैषधीय चरित में राजा नल और दमयन्ती का पुत्र हैं। किन्तु यह चाहुवान राजा अनल कलियुग के वश में नहीं है। अनल अग्नि का भी पर्याय है इसीलिए वह राजा दाहकत्व से युक्त है। दुराचार के प्रति सदाचारी, वन में दावानल के समान ज्वलित, जजिया कर से तृप्त, संज्ञाहीन इस भारतभूमि को बार–बार पुण्य विर्तीण किया। यानि प्राणियों और उसके समूह को सिंचित किया। जिस प्रकार अनल नाम से अभिषिक्त होने पर भी पृथ्वी को जल से सिंचित किया। वह राजा तरस्वी, वेगवान और बलवान हैं। अधर्म के निवारण हेतु ''धूमकेत'' नामक दैत्य की बाहुबल से हत्या करके तीनों लोको की

रक्षा की, मिथ्या अभिमान से युक्त जम्भकेतु–नामक द्वितीय दनुज की हत्या करते हैं।

इसके बाद वह राजा चाहुवान म्लेच्छों को मारकर अर्बुद पर्वत निवास करने लगता है। पुराणों के अनुसार छः पद्यों में अर्बुद पर्वत का शोभातिशय वर्णन किया गया हैं तथा उसके बाद पाँच श्लोकों में अर्बुद पर्वत का सौंदर्य का अत्यधिक वर्णन किया गया हैं। महाभारत के आदिपर्व में वर्णीत गुरू दक्षिणा के रूप में उत्तंकनामक शिष्य ने गुरूपत्नी के लिए इन्द्र के श्रेष्ठ कुण्डल प्राप्त करके मुड़ा, वैसे ही पाताल के सर्पराज ने मार्ग में विध्न करके कुण्डलों को अपहृत कर लिया तब उसने इन्द्र का ध्यान किया। उसके पश्चात् जो स्तुति से उत्पन्न प्रसाद रूप इन्द्र ने अपना व्रज उठाकर, उत्तंक के भय को दूर करके पाताल में प्रहार किया। उस व्रजपात से कच्छप की पीठ पीडित होकर, पृथ्वी से अलग होकर, सम्पूर्ण शेषनागों के फणों में कम्पन से वह सर्प (तक्षक) भयभीत हो गया।

भयभीत वह सर्प व्रज के प्रहार से कम्पायमान हुआ, इसीलिए उसका महान अंहकार नष्ट हो गया और हाथ जोड़कर वन्दना की और उस श्रेष्ठ ब्राह्मण उत्तंकको अमूल्य इन्द्र सम्बन्धि कुण्डल प्रदान किए। उस पूर्व वर्णित व्रज प्रभाव से उद्भित उस पृथ्वी रन्ध्र में तृण आदि भक्षण करती हुए कामधेनु को मित्र वरूण (वशिष्ठ के पुत्र) ने बाहर निकाला। उस ऋषि के मन्त्र प्रभाव से ही वह धेनु बाहर निकली। विश्व के कल्याण के लिए अत्यधिक दयालु वह मुनि वशिष्ठ शीघ्र ही गौरी (पार्वती) के गुरू पिता हिमालय जाकर, उस हिमालय से अर्बुद पर्वत को ' आबु ' इति प्रसिद्ध नाम से अभिहित किया।

विन्ध्य नामक पर्वत सीमा का उल्लंघन करके आकाश का स्पर्श कर अत्यन्त ऊँचा होकर भी निरर्थक हो गया, लेकिन यह अर्बुद पर्वत सत्य ही उच्चताको प्राप्त है। अर्बुद नामक इस पर्वत का वर्णन करने में किसी भी विद्वान की वाणी मन्द नहीं होती है। यह पर्वत बहुत ही प्रस्थवान है, इस पर्वत पर अत्यधिक मात्रा में बॉस के पेड़ है जो सदृश लक्ष्मी है। अर्बुद पर्वत पर स्थित बॉस के वृक्ष अत्यन्त उच्च होने के कारण पृथ्वी को स्पर्श नहीं करते है, जिससे वे कुलीनता को प्रकट नहीं कर

रहे हैं। इस पर्वत पर बड़ी झाडियाँ है जो प्रवृद्ध गुल्म है लेकिन साथ ही वे खनिज युक्त हैं ये सात प्रकार की धातुएँ–द्रव्य, रक्त, माँस, वसा, हड्डी, मज्जा, शुक्र है जो कि भय को वर्धित करती है लेकिन वातावरण बिल्कुल अभययुक्त है। इस पर्वत के उच्च शिखर पर गर्दन झुकाकर घास चरते हुए हिरण, चन्द्रमा के नीले प्रकाश से नीलमणि के समान आभास प्रकट कर रहा था जो कि क्षत्रिय पुत्रों के आखेट का केन्द्र बन रहा था। जिस पर्वत के मध्य भाग में लम्बित, स्वाद और मधुर जल उन कदम्ब समूह में मेघ पंक्ति से ऊँचा मुख किए हुए चातक पक्षी अपनी चोंच से संकल्प लिए हुए स्वाति जल का दीर्घ काल से पान कर रहे थे।

इस पर्वत के अतिगहन कन्दराओं के मध्य वासभवन है वहाँ दृढानुराग वाले प्रेयांसी है, जहाँ सुर्य भी दिखाई नहीं देता है, दिन में भी अन्धकार ही रहता है। वह चाहुवान राजा धर्मशत्रु (धूमकेत व जम्भकेतु) दैत्यों को मारकर, अपनी चमकती तलवार से युक्त उच्च शिखर युक्त अर्बुद पर्वत के मध्य निवास करता है।

तीनों लोको के अभयदान के लिए यह वीर चाहुवान ने प्रजा के धर्म के मार्ग के लिए योजनापूर्ण सामन्त नामक पुत्र को उत्पन्न किया, जो क्षात्र सम्बन्धि उत्कृष्ट तेज की तरह शौर्ययुक्त वीर है।

इसके बाद लक्ष्मीवान महाराज सामन्त के पृथ्वीपालक महादेव नामक पुत्र हुआ। जो सज्जनों की अभिलाषा को पूर्ण करके आनन्दित नयनों वाला था अर्थात् याचकों की इच्छापूर्ण कर प्रफुल्लित होता था। और सज्जन वर्ग के साथ आमोदित, सुगन्धित होकर राज्य पालन करता था।

महाराजा महादेव के कार्तिकेय के समान पुत्र ''कुमार'' ने जन्म लिया। इन्होंने स्वतेज से शिव–पार्वती के समान महाराज महादेव एवं महारानी को आनन्दित किया। यह राजकुमार दैदीप्यान शस्त्र एवं महान सेना युक्त उदार शक्ति सामर्थ्य (प्रभाव, उत्साह, मन्त्र) से युक्त था।

इसके बाद बिन्दुसार नामक राजा हुआ, जिसने अपने बाहुबल से तीनों लोको का अत्यन्त वेगपूर्वक प्रसार किया जो संग्राम से असंख्य शत्रु वीरों को मार गिराने में समर्थ था। धार्मिक कार्यो की अभिलाषा करने वाला था। जिन्होनें अपने

शौर्य के बल पर सागर रूपी शत्रुओं को बिन्दु के समान नगण्य बना दिया था। अबिन्दु, निन्दित व लेशमात्र होता है लेकिन इसका आकार कीर्तियुक्त है। इसलिए पृथ्वी की उन्नति के लिए यह राजा बिन्दुसार नाम से अभिहित हुआ।

इसके बाद बिन्दुसार के ''उदारहार'' नामक पुत्र उत्पन्न हुआ और यह उदारहार राजा चन्द्रमा के समान औदार्यादि गुणों से सम्पन्न था, इस प्रकार चिरत्न पुरातन कुल परम्परा प्राप्त कीर्ति कण्ठाभूषण है।

राजलक्ष्मी प्राप्त इस उदारद्वार राजा के ''अशोक'' नामक पुत्र उत्पन्न हुआ, जिसकी कीर्ति आश्चर्यजनक कार्यो से युक्त थी, जो शत्रुओं का विनाश कर सम्पूर्ण प्रजा का शोक दूर करने वाला, कामदेव के समान सुन्दर आकृत्ति वाला था।

महाराजा अशोक से म्लेच्छों का विदारण करने वाले ''शकाविदार'' नामक पुत्र उत्पन्न होता है, उसके पुनः श्री वीरसिंह नामक पुत्र हुआ, जो शत्रु कुल में अत्यधिक भय उत्पन्न करने वाला तथा विजय लक्ष्मी को प्राप्त करने वाला था।

हाथियों के समूह में सिंह के समान ही, शत्रुओं में वह वीरसिंह का वरसिंहदेव नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। इन्द्र के समान इनका उपनाम शक्र था। जिस प्रकार इन्द्र ने सौ करोड व्रज प्रहार से बलनामा दैत्य को मारकर, उसके बल को प्रकर्ष किया था उसी प्रकार वरसिंहदेव नामक राजा ने सौ करोड़ स्वर्ण मुद्राएँ दरिद्र होकर याचकों को दान में दे दी थी। यह प्रतापी वरसिंह शत्रुओं के लिए दण्ड के समान था, उसके वीरदण्ड नामक पुत्र हुआ। यह नाम की भाँति ही शत्रुओं के सहांरक थे इस प्रकार अरिमन्त्र नामक अन्वर्थ पुत्र हुआ।

इस प्रकार अरिमन्त्र नामक राजा से युद्ध में धैर्यशाली माणिक्यराज नाम से अभिधान राजा हुआ, इन्होंने भी अद्भूत चरित्र वाले, पृथ्वी का भार वहन करने वाले दश पुत्रों को जन्म दिया। उस राजा माणिक्य राज के सम्मुख, राजाओं का समुह नतमस्तक होने से जो मुकुट रत्नों की कान्ति से चरण कमल शोभायमान हो रहे थे और शरद ऋतु के चाँद से सम्बन्धित किरणों के प्रकाश से श्वेत आतपत्र देदीप्यमान हो रहा था। इसके बाद प्रशस्त कीर्ति युक्त, अत्यन्त पराक्रमी माणिक्यराज ने पुरूषार्थ चतुष्ट्य को देने वाले पवित्र प्रयाग के भू–भाग में निवास

किया। माणिक्यराज के वंश में कर्णाभूषण की तरह, प्रकृष्ट लौहराज नामक राजा हुए। इस प्रकार इन लौहराज राजा ने पृथ्वी पर निरन्तर पुण्य कर्म करके, कोई चर्मशर्मासुर नामक म्लेच्छ को मारकर, उसकी बलि से भगवती काली को प्रसन्न किया।

इस प्रकार महाकवि विश्वनाथ भगवती सरस्वती के शिरोमणि, श्रेष्ठ वैद्य वंश के वेणुवृक्ष से उत्पन्न मुक्तामणि के समान, साहित्य रूपी सरोवर के एकमात्र कमल के समान, श्री वैद्यनारायण व रूकमणी के सुपुत्र महाकवि विश्वनाथ ने प्रथम सर्ग में प्रस्तावना रूप में सूर्य वंश में उत्पन्न राजाओं एवं उनके पुरूषार्थो का विवरण प्रस्तुत किया गया हैं।

द्वितीय सर्ग – 'वासुदेवदीक्षितवर्णनम्'

महाकवि विश्वनाथ द्वितीय सर्ग के प्रारम्भ से अन्त तक राजा वासुदेव के शौर्य एवं पराक्रम का वर्णन करते हुए कहते है कि– उदारता, दानवीरता शौर्यादि गुणों से युक्त एकमात्र पात्र चाहुवान वंश में उत्पन्न, चन्द्रमा के समान पृथ्वी का प्रधान राजा जाति से ब्राह्मण, विष्णु के समान पूज्य श्री वासुदेव नामक राजा हुआ। यह वासुदेव इतिहास के अनुसार (जयानक, नयचन्द्रसूरि चन्द्रशेखर) चाहुवानवंशियो का आदिपुरूष था और वह नवीन इतिहास के अनुसार डॉ. दशरथ शर्मा के मतानुसार वत्सगौत्रीय ब्राह्मण था। इस राजा के नाम अंकित मुद्रा पश्चिमोत्तर सीमान्त प्रदेश में उपलब्ध थे, इस प्रकार इस राजा ने लक्ष प्रदेश आकर अपने राज्य की स्थापना की, इतिहास विदो के मतानुसार यह चाहुवान वंश के राजपुत्र थे।

यह राजा वासुदेव नीलकमल, श्यामवर्ण, देह की कान्ति युक्त था। स्वाभिमान से युक्त, विश्व का सम्मोहित करने वाला, उन्नत स्कन्ध, विस्तृत एवं हष्ट–पुष्ट वक्ष वाला, यह शौर्ययुक्त भी साक्षात् श्रृंगार रस के समान था। उस राजा की शोभा आकृति के समान उत्कृष्ट थी एवं वाणी अत्यन्त कोमल थी वाणी की मधुरता एवं बुद्धि की गम्भीरता से उनकी बुद्धि सफलता को प्राप्त करने वाली थी। इसीलिए वह राजा अपने आत्मीयों और वीरों के साथ मित्र के समान, व्यवहार

करने वाला था। बन्धूओं को भी आत्मा के समान आचरण करता था। आत्मा रूपी सम्पदा का इन्द्र के समान आचरण करता था।

इस राजा के हाथ कल्पवृक्ष के समान थे और दयायुक्त नेत्रों से ही चिन्तामणि को प्रदान करने वाला था। जिसकी मधुर वाणी कामधेनु के समान अभिलाषाओं को पूर्ण करने वाली है। इसलिए वह सज्जनों की अभिलाषा को कैसे नहीं पूरा करेगा ?

यह आश्चर्यजनक है कि मनुष्यों में सिंह के समान श्रेष्ठ यह वासुदेव शक्तिशाली हाथियों से प्रेम करता है लेकिन सिंह तो हाथियों का शत्रु होता है। यह इन्द्र के समान बलवान तथा सैनिकों का संहार करने वाला था, शिव के समान कामनाओं को पूर्ण करने वाला, कामदेव के समान सत्वरित्र युक्त और विष्णु के समान लक्ष्मी से शोभायमान और सुन्दर नेत्रों वाला था। पुरूषोत्तम राजा वासुदेव भगवान विष्णु के समान शत्रुओं का संहार करने वाला था। यह राजा कामदेव के समान अत्यधिक सौन्दर्यशाली किन्तु सर्वशत्रु नहीं या शिव का शत्रु नहीं था। कुबेर राजा के समान धन प्रदान करता था। विषम क्षणों में कुटिल लोगों का मित्र नहीं किन्तु कुबेर के समान शिव का मित्र था, यह पुराणों के अनुसार बताया गया है।

महाराज वासुदेव के शौर्यवान होने के कारण शाकम्भरी भूमि अर्थात् साँभर प्रदेश ने उत्कृष्टता प्राप्त की है। महाराजा वासुदेव मानव कुल का पालन करने वाले पृथ्वी के स्वामी थे जिस प्रकार देवभूमि के स्वामी गोत्रभिद् इन्द्र है। शाकम्भरी प्रदेश में चाहुवान कुल की कुलदेवी भगवती शाकम्भरी विराजमान है इसीलिए इसका नाम शाकम्भरी प्रदेश कहा जाता है और वह भाषा से साँभर इस प्रकार प्रसिद्ध है।

राजा वासुदेव के राज्य में शिल्पादि कलाओं की उत्कृष्टता रही है। प्रजाओं में सज्जन संगति है, बुद्धिमतापूर्ण बातें ही हैं मूर्खतापूर्ण नहीं। महाराज वासुदेव के राज्य में दृष्टि की चंचलता केवल कामिनियों में ही थी, प्रजाओं में नहीं। श्रुति का उल्लंघन केवल आँखों का ही था, प्रजा द्वारा वेदमार्ग का नहीं। वक्रता भी नेत्रों में ही थी, प्रजा में नहीं। गौत्रस्खलन भी नायक–नायिकाओं की क्रीड़ाओं में ही देखा

जा सकता था, प्रजाओं में नहीं। इनके राज्य में प्रजा में स्फोटक पीड़ा आदि रही है, अपितु पाणिनि व्याकरणानुयायिकों के मत में ही स्फोट सिद्धान्त है। प्रजाओं में छल की भाषा नहीं तार्किकों के मत में ही था। ईश्वर अथवा राजा के निषेध की चर्चा मीमांसको में ही थी, प्रजाओं में नहीं।

प्रजा राजा वासुदेव की परम भक्त थी। उनमें ईश चर्चा संसार के निमित कारण भूत विवाद विषय पर चर्चा थी मीमांसको के सिद्धान्त में कर्म प्रधान ही स्वर्ग प्राप्ति का कारण है। मीमांसक एवं वेदानुयायी ईश्वरवादी है वेदान्ति तो **"ब्रह्मसत्यं जगन्मिथ्या जीवो बह्यैव नापरः"** मानते है। (12)

उस राजा वासुदेव के सैनिक क्षात्रधर्म का पालन करते थे इस प्रकार उस राजा वासुदेव मुनि वशिष्ठ के मन्त्र समूह के द्वारा गर्व से युक्त राज्यलक्ष्मी को प्राप्त किया। किसी समय राजा वासुदेव ने अपने मन्त्रियों के साथ तीनों शक्तियों और चारों उपायों (साम, दाम, दण्ड, भेद) की मंत्रणा करके यज्ञ कर पृथ्वी को जीतने की इच्छा की तथा अत्यन्त उत्साह से शुभ मुहुर्त में एकत्रित हुए सचिवों और आमात्यों को विजय प्रयाण के लिए आज्ञा दी। इसके बाद वह राजा भी हाथी, घोड़ें और चतुरंग सेना से सज्जित हुआ। चारों और दुन्दुभीयाँ बजने लगी।

इसके बाद सुसज्जित रथों में वह राजा सामन्त एवं मन्त्रियों के साथ आरूढ़ हुए तथा श्वेत पत्र वाला राजचिन्ह छत्र फहराया गया। उस समय इस राजा के सबसे आगे उच्च पताका सूर्य के समान कान्ति प्रदर्शित कर रही थी, और शत्रुओं के अन्धकार की भाँति। साक्षात् विजय लक्ष्मी की भाँति प्रकाशमान और पीताम्बर धारी विष्णु के समान यह राजा वासुदेव साक्षात् नासीर वीर थे एवं सेनामुख के नासीर थे। इनके पास सहस्त्र आग्नेय अस्त्र थे, उस राजा के पीछे मदयुक्त हाथियों का समूह तथा उनके रक्षक योद्धा थे। उस सेना के समूह के मध्य शत्रु कुलों का नाश करने के लिए वह वीर वासुदेव अपने रथ को प्लुत गति से ले जाता हुआ आक्रमण करने लगा तथा पीछे से प्रहार करने वाले सैनिकों को समाप्त करने लगा। वह राजा शत्रुओं का अतिशय नाश करके उत्तर दिशा को जीतने के लिए प्रयाण किया। वासुदेव के पराक्रम के चलते हुए उत्तर के सभी राजा इनके

शरण होते गए, इस प्रकार उस राजा के सेना समूह के रजकणों से शत्रुओं के नेत्रों में अन्धकार छा गया और बादलों से वर्षा होने लगी। विदेहों, नौड्रों, मगधों व कामरूपों को जीतकर राजा वासुदेव ने विजय स्तम्भ रूप सुमेरू पर विजय प्राप्त की। इसके बाद शत्रुओं के नाश में कुशल वह राजा शीघ्र ही दक्षिण दिशा की ओर आ गया। इनके पराक्रम के भय से ही विदर्भ के राजा इसके आधिपत्य को स्वीकार कर हजारों हाथी घोड़े महाराज वासुदेव को भेंट किए। वासुदेव ने अत्यन्त धैर्यशाली आन्ध्रों एवं गोलकुण्डों को जीतकर देवगिरी राजा को जीतने के लिए प्रस्थान किया और वहाँ के द्राविड़ और कर्णाटें को जीतकर अपने अधीन कर लिया। सभी दाक्षिणात्यों ने वासुदेव की आज्ञा शिरोधार्य कर ली। वहाँ विजित होने के पश्चात् वासुदेव ने गुर्जर देशों पर आक्रमण किया तथा उसे भी जीतकर सौराष्ट्र प्रदेश को जीतने के लिए प्रस्थान किया।

साहित्यिक दृष्टि से महाकवि विश्वनाथ ने महाराजा वासुदेव का सम्पूर्ण द्वितीय सर्ग में उत्कृष्ट वर्णन करते हुए कहते हैं कि महाराजा वासुदेव ने प्राणों की परवाह न करते हुए युद्ध में मरकर स्वर्ग में जाने के इच्छुक देखकर स्वर्ग की अप्सराओं में भी विवाद था कि ''यह मेरा प्रियतम हैं, तेरा नहीं''। इस प्रकार वह वासुदेव एक–एक राज्य को जीतता हुआ मालव नरेश पर आक्रमण करने लगा, किन्तु राजनीति में कुशल मालव नरेश ने आक्रमण होने से पहले ही सन्धि कर ली। शत्रुओं के माण्डूपति को साथ लेकर मरू–प्रदेश को जीतने आ गया। यहाँ इनका मरू प्रदेश के राजाओं से भयंकर युद्ध हुआ, अन्त में मरू–प्रदेश के राजा को मारकर उसके पुत्र का राज्याभिषेक करवाया। वासुदेव का पराक्रम इतना था, कि उसको देखकर ही राजा छुप जाते थे। जिसने अपने तेज से इन्द्र को भी जीत लिया था, ऐसे वासुदेव ने मानों चारों दिशाओं में विजय स्तम्भ रूपी चार समुद्र बनवाए। उस सम्राट वासुदेव ने शीघ्र ही यज्ञ किया जिससे उसकी समृद्धि चहुँ–दिशा में व्याप्त हो गई।

महाराजा वासुदेव के पराक्रम और उसकी विजय यात्रा का वर्णन महाकवि ने अत्यन्त कौशलपूर्ण साहित्यिक विविधाओं के साथ चित्रित किया हैं, जो अत्यन्त हृदयग्राही हैं।

महाकवि ने द्वितीय सर्ग में एक सौ एक श्लोकान्तर्गत महाराजा वासुदेव की यशोगाथा का विस्तार करने से इस सर्ग का नाम 'वासुदेवक्रतु'' हैं।

तृतीय सर्ग – अस्थिपालोद्भवः

महाकवि तृतीय सर्ग का आरम्भ करते हुए कहते हैं, कि इसके बाद सूर्यकुल में, सम्पूर्ण लोकों के कर्णाभूषण के रूप में, श्री गोपाल नाम का राजा हुआ। जो दुष्टों का सर्वनाश कर, पुण्य कार्यो में वृद्धि करने के लिए इस पृथ्वी की गाय के समान भलीभाँति रक्षा किया करते थे। दोषयुक्त मनुष्यों को क्षमा करने वाले थे, तथा सभी राजाओं में श्रेष्ठ थे। शौर्यादि गुणों से युक्त यह चक्रवर्ती सम्राट था। यह गोपाल, राजाओं को अपने असंख्य योग्य सैनिकों और धनादि देकर इन्द्र से मानों स्पर्धा करता हों। यह राजा गोपाल कामधेनु के समान पूज्य हैं। शत्रुओं के लिए वज्र के समान हैं। पंचम श्लोक श्री गोपाल को प्रथुसादृश्य बताया है, तथा पृथुराज सम्बन्धित पुराण कथा का संकेत किया हैं।

इसके बाद अपनी प्रजाओं के सुधर्म शासन नियमों का पालन करते हुए राजा गोपाल के स्वप्न में श्री सोमनाथ नाम का सरोवर अर्थात् उसके देवता प्रकट हुए। उस राजा के स्वप्न में मनोहर वचन कहे, देव सोमनाथ ने सभी को आनन्दित करते हुए उस राजा के स्वप्न में कोमल वाणी में गम्भीरतायुक्त होकर राजा से कहा– हे राजन् इस वसुधा पर पृथ्वी, गाय को मारने वाले, धर्म का उच्छेद करने वाले, प्रजा को दण्डित करने वाले, यवन जाति के दुष्ट राजा उत्पन्न होंगे। अतः उन यवनों का नाश करने में आप ही समर्थ हों। इसलिए मैं शातकुम्भीय वारूणास्त्र मंत्र तुम्हें देता हुँ, जिसके द्वारा तुम इन दुष्ट यवन राजाओं को मारने में समर्थ हो जाओगे। इस प्रकार कहकर उस राजा को वारूणास्त्रमन्त्र देकर श्री सोमनाथ अन्तर्ध्यान हो गए। वह राजा श्री गोपाल अपने स्वप्न के सम्बन्ध में विचारकरता हुआ प्रातः काल जागा।

राजा गोपाल ने विद्वानों के समक्ष अपने स्वप्न वृतान्त कहने पर सभी विद्वानों ने राजा से कहा– कि यह आपके लिए मंगलमय हैं, यह स्वप्न आपके द्वारा शीघ्र ही म्लेच्छों का विनाश कर आपकी राज्यलक्ष्मी की वृद्धि के लिए है। ब्राह्मणों

के मुखारविन्द से सुनकर राजा अत्यन्त हषौल्लासित हुआ, और तदनुरूप सभी कार्य शीघ्र करने लगा। चारों उपायों (साम, दाम, दण्ड, भेद) एवं तीनों रूपों (प्रभु, मन्त्र, उत्साह) के साथ, सभी वीर योद्धाओं, विद्वानों ज्योतिषियों के द्वारा निर्दिष्ट शुभ समय में विजय यात्रा के लिए प्रस्थान किया। आश्चर्य युक्त चारों और दुन्दुभियाँ बजने लगी। शत्रुओं की भार्या अश्रुयुक्त हो गई। युद्ध में एक ग्रामाधिपत्ति आता हैं, इनके क्रोध से वरूणास्त्र प्रकट होता है, इसे देखकर म्लेच्छ शीघ्र ही मूर्छित हो जाते हैं। विधर्मी, जो राजा थे उनको नष्ट करता हुआ कल्कि अवतार स्वरूप वाला, वह गोपाल देवगिरि को अपने अधीन कर और उस दुर्ग में प्रवेश कर आाशापुरा नाम की देवी की स्तुति करता है। (आशापुरा नामक यह देवी चौहान वंश की (हाड़ौती शाखा वाले वीरों की) कुलदेवी है)।

इस प्रकार यह गोपाल अपने कामनाओं की पूर्ति के लिए आशापुरा देवी से वरदान माँगते है। यह कुलदेवी शत्रुओं की कालस्वरूपा है, इन्हीं की भक्ति से राजा गोपाल के चन्द्रसेन नामक पुत्र उत्पन्न होता है। यह वीर चन्द्रसेन षोडश कला युक्त चन्द्रमा के समान अत्यधिक सुन्दर और तेजस्वी था। इसने शीघ्र ही स्वपराक्रम से शत्रुओं का नाश किया तथा जगत में ख्याति को प्राप्त किया। आसेरी दुर्ग पर ही उसने एक पुत्र और एक कन्या को जन्म दिया। यह अद्‌भुत एवं विचित्र चन्द्रसेन का पुत्र आसेरी दुर्ग की कन्दराओं में निडरता पूर्वक क्रीडा करता था सूर्य की किरणों के समान ओजपूर्ण था।

इसके बाद किसी अस्थिपाल नामक राजा का प्रंसग वर्णित है। इस अस्थिपाल को ब्रह्मा से राजा वरदान प्राप्त था, यह मत्त प्रगल्भ भंयकर तनुधारी दैत्य उस आसेरी पर्वत पर प्रतिदिन नये मनुष्य को मारकर माँस का भक्षण करता था, वह अत्यन्त चंचल नेत्र वाला था। पर्वत प्रान्त में क्रीड़ा करते हुए उस राजकुमार को वह नृशंस दैत्य अपना ग्रास बनाता है, जिस प्रकार सिंह गज का भक्षण करता है। अपने भ्राता की दशा देखकर रोती हुई वह राजकन्या अपनी मधुर वाणी से देवी आशापुरा की वन्दना करती हैं।

आशापुरा देवी की बार–बार स्तुति करने पर, प्रसन्न होकर देवी राजकन्या को कहती है– हे पुत्री, तुम्हारे अपने सगे भाई का जो अंग बचा है वह यहाँ लाओ, जिससे मैं उसे जीवन – दान दे दुँ। इसके बाद वह राजकन्या अत्यधिक प्रसन्न हो दैत्य के द्वारा बचे हुए अपने भाई के अंगो को चुनने लगी। अत्यधिक भाग्यशाली वह कन्या अपने पिता के कुल की वृद्धि की इच्छा से चुने हुए अंगो का उस आशापुरा देवी के सम्मुख रखकर, अपने भ्राता को जीवित करने के लिए वन्दना करने लगी। उस राजपुत्र पर अमृत युक्त कृपाकटाक्षों से सिंचन करती हुई देवी ने उसे जीवित कर दिया और प्रसन्न होकर बोली– हे वीर पुत्र उठो और अस्थिपाल नामक दैत्य का सर्वनाश करो, उसे मारकर उस नाम को ही धारण कर चन्द्रसेन वंश के उद्धारक बनो।

उस देवी आशापुरा की कृपा से वह वीर, काल के मुख से बिना किसी क्लेश के बाहर आ गया। इसके बाद उसने दैत्य अस्थिपाल के साथ युद्ध किया। उस चन्द्रसेन पुत्र ने अपनी भुजाओं से दबाकर शीघ्र ही उसके प्राण ले लिए। उस राजकुमार ने देवी को प्रणाम कर स्वगृहे प्रस्थान किया। उस राजा चन्द्रसेन ने अपने पुत्र को प्राप्त कर उसका आंलिगन किया। ब्राह्मणों को अत्यधिक धन देकर, देवी के वरदान के कारण उसका नाम अस्थिपाल रख दिया।

इसके बाद पिता ने अपने पुत्र का राज्याभिषेक किया। इस प्रकार राजा अस्थिपाल अपने शौर्य एंव पराक्रम से अनेक वर्षों तक अखण्ड राज्य करता रहा। अस्थिपाल के बाद उस वंश में जो राजा उत्पन्न हुए, वह चाहुवान वंशीय होने पर भी 'अस्थि शब्द पर्याय देशज' 'हाड़ौती' वंश गौत्र नाम से प्रसिद्ध हुए। इस प्रकार महाकवि विश्वनाथ ने अपने महाकाव्य शत्रुशल्य चरित के तृतीय सर्ग में अस्थिपाल के उद्भव एवं शौर्य का मार्मिक चित्रण किया हैं।

चतुर्थ सर्ग – मेदान्वयध्वसः

इसके बाद अर्थात् अस्थिपाल के बाद चन्द्रराज नामक राजा हुआ। वह चन्द्रराज चन्द्रमा से भी अत्यधिक सुन्दर, शत्रु एवं मित्र दोनों में ही आदरणीय, अत्यन्त दानवीर, शत्रुओं के लिए अत्यन्त क्रूर और सज्जनों के लिए दयावान था।

वह चन्द्रराज स्वामित्व को प्राप्त करके प्रजाओं के कष्ट दूर किया करता था। वह राजा चन्द्रराज अत्यन्त शौर्य एवं पराक्रम से युक्त था। अतिविनय वह राजा याचकों को कल्पवृक्ष से भी अत्यधिक अभिलाषाओं की पूर्ति करता था। औदार्य आदि गुणों से युक्त, वह राजा सभी को आनन्दित करता हुआ, अपने राज्य का सफलता पूर्वक संचालन करता हुआ पिता की आज्ञा का पालन करता था। इसके आर्तिहरण नाम का अन्वर्थसंज्ञक पुत्र हुआ। उस आर्तिहरण के आदेश मात्र से ही अधीनस्थ राजा शीघ्र ही अपने मस्तकों को संस्थापित कर देते थे। आर्तिहरण राजा की कीर्ति पूर्णिमा के चन्द्रमा के समान सर्वत्र विद्यमान थी। वह आर्तिहरण रेणुसिंह नाम से इतिहास में देशीभाषा में 'रेणसी' इति उपमान से प्रसिद्ध एक पुत्र को जन्म दिया। जो कीर्ति से अलंकृत वंश वाला, सच्चरित्र, रणों में धीर, स्थिर और गम्भीर व्यक्तित्व वाला था। जिनके चरण कमलों की रज पर राजा अपना मुकुट रखते है और दानकाल के समय सुमेरू पर्वत भी कण मात्र हो जाता हैं। सद्गुणों से युक्त उस रेणुसिंह के कोल्हन नाम का एक पुत्र हुआ। वह अपने पिता के समान ही पराक्रमी और शत्रुओं का अनुशासक था। इस प्रकार राजा कोल्हन ने केदारेश्वर की तीर्थ यात्रा करते हुए भगवान शंकर की पूजा–अर्चना की। इसके बाद महाकवि विश्वनाथ ने कोल्हन के द्वारा की गई शिव – पूजा का वर्णन करते हुए कहा है – कि हे भगवन् ! तुम्हारे द्वारा दृष्ट्रार मुनि के निगम अर्थात् श्रुति वाक्य में एक अद्वितीय जगत् के निमित कारण उपादान हेतुभूत कहा गया हैं और मैं परिवार निवारण हेतु श्रेष्ठ कारण हुँ। आप हिमालय पुत्री पार्वती के अंगो का आंलिगन करके स्व–हृदय पर रूद्राक्ष की माला धारण करते हो। हे शिव ! आप नियमानुसार समाधि युक्त होकर एक नेत्र से मुनियों की इच्छा पूर्ति करते हो। पाँच बाणों वाले कामदेव की भाँति कामनाओं की पूर्ति करते हों। मेरे अर्थात् भक्त की रक्षा के लिए चन्द्रमा की षोड्श कला प्रदान करने वाले हो। हे भगवान शंकर आप कल्याण को देने वाले हो, आपके हुँकार मात्र से ही शत्रुओं का नाश हो जाता हैं। संसार की कुशल–क्षेम के लिए आपने कालकूट विष को सदैव ही अपने कण्ठ में धारण करने वाले हो। शरण में आए हुए देवताओं की रक्षा करते हों। हे गिरिराज सुतेश वेदों में आपके अगम्य चरित्र का वर्णन है। चार मुख वाले ब्रह्या भी आपकी स्तुति करते है। देवनदी गंगा भी, संसार के प्राणियों की पीड़ा को दूर करने में समर्थ, ध्वजा रूप

में, आपके मस्तक पर विराजमान हैं। हे चन्द्रशेखर ! मैं भी आपकी शरण में हुँ, आप मेरी रक्षा करें। हे भगवन् शीघ्र ही मेरे वंशजो के माडल पर्वत के मण्डल में एक स्थिर राज्य हों, आप मेरी अभिलाषा को शीघ्र पूरा करें। इसके बाद भगवान शंकर ने प्रकट होकर ऐसा ही हो वरदान प्रदान किया वह राजा अत्यधिक प्रसन्न हुआ।

इसके बाद यह धैर्यशाली राजा कोल्हन स्वपराक्रम से वीर प्रसविनी पृथ्वी का पालन करता हुआ सबका प्रिय बन गया। सप्त सागरों की सीमा मण्डल पर राज्य करता हुआ वह बून्दी को अपना राज्य बनाता हैं। जो नगरी कुबेर की अलका नगरी के समान सम्पन्न थी। रत्नों को उत्पन्न करने वाले समुद्र के समान, वीर पुत्रों की जन्मदात्री थी। मित्रों एवं राजाओं की प्रतिष्ठा एवं शत्रुओं के मान को खण्डित करने के कारण मानद उपाधि प्राप्त करने वाला राजा कोल्हन एक पुत्र को जन्म देता हैं, जिसका नाम आशुपाल था। आशुपाल राजा के भी एक पुत्र होता हैं, जिसका विजयपाल था। जो सुन्दरता में कामदेव के समान, अपने शत्रुओं के लिए मानों जलती हुई अग्नि की ज्वाला रूप था, जिसमें शत्रु रूपी कीट–पतंगें समाप्त हो जाया करते थे। यह विजयपाल राजाओं में अर्जुन के समान भरत वंश का भूषण था। उस विजयपाल का एक पुत्र हुआ, जिसका नाम वंगदेव था। सुर्जनचरित में चन्द्रशेखर ने वंगदेव को कोल्हन का पुत्र बताया है, न कि उसका पौत्र और भी उसका नाम वहां गंगदेव मिलता है। राजा वंगदेव शत्रुओं के विनाश में समर्थ रावण के शत्रु राम के समान था, जिसका विवाह विक्रमादित्य वंश में उत्पन्न कन्या के साथ राम और जानकी की तरह विधिवत् सम्पन्न होता है। अत्यन्त रूपवती सौभाग्यशीला उस कन्या के साथ अत्यन्त प्रसन्न एवं सन्तुष्ट राजा को पुत्र–रत्न की प्राप्ति होती है, जो साक्षात् देव ही था, अतः उसका नाम देवसिंह रखा गया। महाकवि विश्वनाथ इस सर्ग में वंगदेव एवं उसकी पत्नी की प्रणय गाथा उसका चरित्र का वर्णन अत्यन्त रोचक एवं प्रभावी ढंग से करता है। देवसिंह के जन्म समय एंव ज्योतिष के आधार पर ग्रह नक्षत्रों की अनुकूलता का वर्णन भी कवि ने बड़े प्रभावी ढंग से किया है। देवसिंह के रूप और उसके पराक्रम को अपने से भी बढ़कर जानकर वंगदेव ने उसे युवराज बना दिया तथा पृथ्वी का राज्य, पुत्र के

मस्तक पर सौंपकर, त्यक्त नाम के पुत्र पर स्वर्गलोक का भार सौंपकर इन्द्र के समान राज्य शासन से होने वाले खेद (चिन्ता) से मुक्त हो गया। अपने पुत्र को सफल मानता हुआ वह राजा बून्दी के पास कभी सुन्दर तालाबों में, कभी पुष्पित बगीचों में कभी केले के वनों में विहार करने लगा, इससे बहुत समय व्यतीत होने का भी राजा को ज्ञात नहीं रहा और राजनीति सिद्वान्तों को विस्मरण कर, वराह, विभिन्न पक्षियों, मृगों आदि को मारने में प्रवृत्त हो गया। इस प्रकार उस बंगदेव को वन में ही मेदकजातीय वनेचर ने अपना दुष्ट जानता हुआ भोजन में उन्हें विष देकर मार दिया। वनेचर के द्वारा अपने पिता के मारे जाने की बात सुनकर देवसिंह अत्यन्त क्रोधित हो गया और युद्ध के लिए प्रस्थान कर दिया। क्रोधाविष्ट वह सभी शत्रुओं का नाश कर अपने यश को विस्तारित करता हुआ पृथिवी पर राज्य करने लगा। अनन्तर उसे एक पुत्र उत्पन्न हुआ, जिसका नाम वीरसेन रखा गया। पुत्र के योग्य हो जाने पर राजा देवसिंह अपने पुत्र वीरसेन को राज्य सौंपकर शिव की उपासना में लग गया।

इस प्रकार विश्वनाथ कवि द्वारा लिखित शत्रुशल्यचरित में भेदान्वय ध्वंस नाम का यह चतुर्थ सर्ग पूरा होता है।

पंचम सर्ग – बून्दयां तुरूष्कोदयः

पंचम सर्ग का आरम्भ करते हुए कवि ने वर्णन किया है कि देवसिंह के बाद उसके पुत्र समरसिंह ने राज्य संभाला। वह अपने पिता के समान ही पराक्रमी तथा अपनी वंशपरम्परा से प्राप्त राज्यलक्ष्मी को प्राप्त कर एक चक्रवर्ती राजा के रूप में प्रतिष्ठित हुआ।

इस राजा की मूर्ति रूप कीर्ति के समान गौरी श्वेता नामक पत्नी थी। जो बुद्धि, चेष्टा और क्रियाशीलता से परिपूर्ण कुलरीति की तरह उदारशीला थी। अपने महान् प्रभाव और तेज के साथ उसने समरसिंह के नार्पनाम के पुत्र को जन्म दिया। यही नार्प नाम का राजा नापजी नाम से इतिहास प्रसिद्ध हुआ। इसके पराक्रम के कारण पृथ्वी अन्य किसी राजा के अधीन न होकर इनके पास ही रहती थी। सुन्दर सूर्य रूपी नाप नाम के इस राजा को एक पुत्र हुआ, जिसका नाम

हम्मीरदेव था। यह हम्मीर राजा रमणी योग्या भार्या की तरह पृथ्वी को परिणीता बनाकर उसका भरण करता था, जिसे अपने अनुरूप ही उदार चरित वाला अत्यन्त प्रतिष्ठित वरसिंह नाम का एक प्रिय पुत्र हुआ। यह अत्यन्त धैर्यशाली, पराक्रमी, तेजस्वी कामदेव के समान सुन्दर और शिव के समान प्रिय था। वरसिंह नाम के इस राजा के एक पुत्र ने जन्म लिया, जिसका नाम वैरचन्द था। वह वैरचन्द्र नाम का राजा चन्द्रमा के समान निर्मल एवं अन्तःकरणस्थ काम–क्रोध–मोह–मद–मात्सर्य रूपी छः शत्रुओं पर विजय प्राप्त करने वाला, इन्द्र के समान प्रतापशाली, वृन्दावती नाम की नगरी रूपी कुमुदिनी को विकसित करने वाला चन्द्रमा के समान था, जिसके अपने राज्य की रक्षा करने में समर्थ भारमल्ल नाम के पुत्र ने जन्म लिया।

राजा भारमल्ल पिता से इस पद को प्राप्त कर अपने कुल से प्राप्त सिंहासन पर आरूढ़ होकर जनता के कष्ट को हरने वाला, अत्यन्त बुद्धिमान था। अपने कुशल अमात्यों के साथ प्रशासन चलाता हुआ पृथिवी पर राज्य करने लगा। इस राजा की कुशलता और नीतिज्ञता एवं प्रजापालकता का वर्णन महाकवि काफी उदारता के साथ किया है।

इसके बाद अचानक ही देवताओं की विहारभूमि आकाश में विनाशकारी धूमकेतु, उत्पात सूचक, अमंगलकारी पुच्छलतारा के समान राजा भारमल्ल के राज्य में अमंगलकारी उत्पात प्रारम्भ हो गया। उस राजा भारमल्ल की वाजिशाला में भोजनादि को छोड़कर खिन्नता होकर दुःखी आर्तस्वर में घोड़े भी क्रन्दन करने लगे।

राजा भारमल्ल इस प्रकार के उत्पात सूचक चिह्नों को देखकर अत्यन्त व्याकुल होता हुआ अपने पुरोहितों (पण्डितों) के पास गया और उनसे इन उत्पातो के कारणों को पूछा। राजा की बात सुनकर कुछ देर स्थिर एवं गम्भीर भाव से विचार कर दुःखसूचक बातों को जानता हुआ दीर्घ निःश्वास लेकर राजा भारमल्ल को कटुवचन कहने पर भी सत्य वचन पुरोहितों कहने प्रारम्भ किया–हे राजन्। वेदार्थ ज्ञान से कठोर बुद्धिवाले हम लोग चाटुकारिता की बात नहीं जानते हैं। अतः सत्य बता रहे हैं। ये राजा आज प्रजाओं में सर्वत्र उत्पातसूचक चिह्न उपस्थित हो

गये हैं। इसमें जरा सी भी आपकी असावधानता नहीं है, किन्तु यह कलियुग का प्रभाव है, ऐसा हमें लग रहा है। इस समय धर्म करने वाले असफल एवं पाप करने वाले सफल होंगे। क्षत्रिय अपने कुल परम्परा से प्राप्त क्षत्रियोचित नियम को छोड़कर चाटुकारिता के द्वारा यवन के धर्म का आचरण करेंगे। उसी को प्रसन्न करने के लिए राज्य प्राप्ति के लोभ के कारण यवन धर्म को अंगीकार करेंगे। इस प्रकार सम्पूर्ण पृथिवी पर प्रायः मुसलमानों का राज्य हो जायेगा। पहले तुम्हारे जो पूर्वज वासुदेव ने, जिस मण्डूपति को वश में करके अपना सेवक बनाया था, वही मण्डूपति यवनसुर की रक्षा करने वाला वृन्दावती (बून्दी) पर आक्रमण कर तुम्हें युद्ध में मारेगा और तुम्हारा पुत्र अत्यन्त कीर्ति वाला होगा, जो रक्तदन्तिका दुर्गा के नाम वाला रक्तदन्ति उन यवन समूहों को मारकर पुनः बून्दी को मुक्त करेगा। ऐसा कहकर वह पुरोहित चुप हो गया। राजा भारमल्ल भाग्य के इस अविस्मरणीय घटना को सुनकर ज्यादा दुःखी नहीं हुआ। इसके बहुत दिनों तक अपनी बुद्धिमत्ता के कारण वह राजा राज्य भार चलाता रहा। फिर सांसदगणों, सचिव और अमात्यों के साथ विचार–विमर्श किया। तदनन्तर सचिवों ने राजा से निवेदन किया कि हमें साम, दाम, दण्डनीति अथवा प्रभुमन्त्रोत्साह इन तीनों शक्तियों का बार–बार विचार कर समुचित समय में ही जीतने का प्रयत्न करना चाहिए।

अब शत्रु सेना प्रतिदिन बढ़ने लगी, तब अपने पुरोहितों से विचार करने पर उसका पुरोहित राजा भारमल्ल को बताया है कि अब समय आ गया है कि हम आपके साथ मण्डल नामक पर्वत दुर्ग पर चलेंगे। वहीं पर बहुत दिनों तक रहकर राष्ट्रकोषादि को बढ़ाकर यवन सैनिकों को जीतने में समर्थ होंगे, यदि आपको अच्छा लगे तो। ऐसा पुरोहितों के निवेदन करने पर युद्ध के लिए कृतिनिश्चयी राजा भारमल्ल सभी सामग्री के साथ तैयारी कर माण्डल दुर्ग पर आ गया और वहीं से यवन सैनिकों के साथ युद्ध कर सभी यवनों को संहार कर पुनः अपने राज्य के दुर्ग पर आ गया। इस प्रकार बून्दी नगरी में तरूष्णकाओं के उदय सम्बन्धी पाँचवाँ सर्ग पूरा होता है।

षष्ठ सर्ग – नारायणदासवर्णनम्

उसके बाद माण्डलदुर्ग पर नारायणदास नाम का राजा यवनों के द्वारा अपने पिता की नृशंस हत्या को सुनकर अत्यन्त क्रोधित हो जाता है और किशोरावस्था में होने पर भी शत्रुओं को जीतने के लिए निश्चय कर लेता है। अपने उद्धत पराक्रम के कारण युद्ध के निश्चय करने पर भी उसके सचिव एवं मंत्रीगणों ने चिरकाल से राजा के सैन्य रहित, मित्रादिपक्ष से रहित होने के कारण नारायणदास की बात स्वीकार नहीं की और नारायणदास को समझाते हुए कहा कि है राजन् ! आपके पिता उदार बुद्धि वाले थे। पुरोहितों ने आपके पिता को जो बताया था वह हमने सुना था और मैं आपको बता रहा हूँ। उन्होंने कहा था कि यवनों एवं मण्डप सुरत्राण रूपी समुद्र को आपका पुत्र अपनी भुजाओं रूपी बाँध बनाकर उस समुद्र को पार करेगा। युद्धभूमि में आपकी विजय अवश्य होगी, ऐसा मैं मानता हूँ। इसलिए बून्दी के पास 'सथूर' नाम के देवस्थान में रक्तदन्तिका देवी की स्तुति करो। रक्तदन्तिका देवस्थान बून्दी से तीन कोस पश्चिम उत्तर की दिशा में चन्द्रभागा नदी के तट पर है, जहाँ आज भी मिट्टी की बनी देवी की मूर्ति है। ऐसा कहने पर वह राजा नारायणदास भट के साथ उस देवस्थान में आकर शत्रुओं पर विजय की प्रार्थना करता है। स्तुति के बाद देवी प्रसन्न होकर विजय का वरदान देती है। रास्ते में युद्ध सम्बन्धी बहुत सारी बातें करते हुए भट कपट नीति से बून्दी में प्रवेश करने की सलाह देता है, जिसके लिए वामन महाभारत में पाण्डवादि के प्रवेश का उदाहरण देकर शत्रु–विजय के लिए 'अभी यही आचरण उचित है' यह सलाह देता है।

खैराडवीर की सुन्दर और नीतियुक्त बातें सुनकर अपने पराक्रम और तेज से मानो जलने लगा। उसके बाद बून्दी में प्रवेश करते समय मंगल सूचक दायीं भुजा फड़कने लगी जो मानों युद्ध में विजयश्री की पूर्व सूचना दे रही हो। उसके बाद राजगृह में प्रवेश करते हुए नारायणदास ने वचनों का साथ देने वाले अपने चाचा समरकन्द को देखा। छिपकर आने से उन दोनों को कोई देख नहीं पाया और वहाँ एकान्त में बैठे अपने चाचा को मार दिया और तदनुयायी सभी को अपने वश में कर लिया। उसके बाद ब्राह्मणों के द्वारा वैदिक मन्त्रोच्चारण के साथ उन्हें

राज्यसिंहासन पर बिठाया गया। अपने पैतृक आसन को प्राप्त कर नारायणदास अपने कोष, सैन्य और राज्यसम्पत्ति का विस्तार करते हुए समस्त भूमण्डल को अपने अधीन कर लिया। उसके बाद कपटपूर्वक नारायणदास के द्वारा समरकन्द नाम के उस यवनानुयायी बून्दी के अधिकारी की मृत्यु के विषय में जानकर यवनों ने क्षुब्ध होकर मानों संसार को निगलना चाहा और संपूर्ण सेना को साथ लेकर माण्डू दुर्गेश बून्दी के पास आ गया। युद्ध में कुशल राजा नारायणदास ने भी अपने पराक्रम के उन सभी सेनाओं का विनाश कर दिया। अपनी सेना की इस अवस्था को देखकर यवनेश्वर स्वयं युद्ध के लिए आ गया। नारायणदास भी यवनेश्वर द्वारा किये गये आक्रमण के विषय में सुनकर माण्डूदुर्ग की तरफ चल दिया। कवचों से आच्छादित नारायणदास शीघ्र ही दुर्ग पहुँचकर यवनेश्वर के प्रतिहारी को महाराज से मिलने का निवेदन किया। प्रतिहारी की बात सुनकर यवनेश्वर ने आदेश दिया कि यदि बून्दीश्वर अकेले हैं तो उसे राज्यसभा में ले आओ। प्रतिहारी के कहने पर यवन सैनिकों से सुसज्जति सभा में नारायणदास ने प्रवेश किया। उसके तेज और शरीर की शोभा देखकर माण्डूराज क्षण भर के लिए स्तब्ध सा हो गया। फिर अपने भावों को छुपाने में कुशल वह यवनेश्वर नारायणदास से कहने लगा– हे वीरश्रेष्ठ! तुम्हारे पराक्रम को सुनकर मैं प्रसन्न हूँ। यदि तुम मेरे साथ मैत्री कर लो तो मैं तुम्हें अभय कर दूगाँ। राजा नारायणदास ने यवनेश्वर की चतुर बातें सुनकर मन में सुन्दर विचार कर यवनपति को अपनी मैत्री स्वीकार करने का संकेत दिया। उसके बाद उस यवनपति ने हाथी, घोड़े आदि से उसका सम्मान कर उसे अपना मित्र बना दिया। उसके बाद उससे मित्रता कर वह नारायणदास शीघ्र ही 'षटपुर' देशी नाम 'खटकड़ा' से प्रसिद्ध राजा अक्षयराज को जीतने के लिए चल दिया।

राजधर्मवेत्ता उस नारायणदास ने युद्ध में प्रबल, बल में गौरवशाली, किन्तु अवस्था में छोटे भाई से आदेशपूर्वक नहीं, अपितु प्रेमपूर्वक कहा– हे–वत्स! अक्षयराज शीघ्र ही षटपुर राज्य मुझे दे दो और यदि अपनी मृत्यु चाहते हो तो युद्ध के लिए तैयार हो जाओ। अपने बड़े भाई के आदेश को सुनकर वह नर्मद अक्षयराज के राजगृह में प्रवेश कर गम्भीर आवाज में बोला–यदि तुम पृथिवी का भोग करना चाहते हो तो शीघ्र ही षटपुर का राज्य मेरे लिए दे दो। नर्बद की बात

सुनकर क्रोध से जलता हुआ वह अक्षयराज अपनी चतुरग्निकी सेना को सुसज्जित कर युद्ध के लिए तैयार हो गया। इसके बाद अक्षराज एवं बून्दीश्वर दोनों में युद्ध होने लगा। बून्दीश्वर के पराक्रम के आहत होकर वह युद्धभूमि से भाग गया। राजा नारायण ने भागते हुए उसका पीछा नहीं किया और सभी शत्रुओं को जीतकर अपनी राजधानी को लौट आया और अपने प्रताप से पृथिवी मण्डल पर होने वाले अत्याचार को बार–बार समाप्त कर यवनों के द्वारा जीते राज्य को अपने राज्य में मिला लिया।

इस प्रकार विश्वनाथ विरचित शत्रुशल्यचरित काव्य का षष्ठ सर्ग पूर्ण होता है।

सप्तम सर्ग – सूर्यमल्लवर्णनम्

सप्तम सर्ग का आरम्भ करते हुए महाकवि विश्वनाथ ने वर्णन किया है कि उसके बाद नारायणदास का पुत्र सूर्यमल्ल राजा हुआ, जो अपने हाथों के तेज से शत्रु रूपी अन्धकार समूह को नाश कर सम्पूर्ण दिशा को प्रकाशित करने वाला था।

यह सूर्यमल्ल किशोरावस्था में ही पिता के राज्य सिंहासन को शास्त्रविधि से अपने अधीन कर लिया और षटपुर के राजा को मारकर दयावश उसी के पुत्र को षटपुर का राजा बना दिया और स्वयं अपनी नगरी बून्दी वापस आ गया। धन–वैभवादि से सम्पन्न राजा सूर्यमल्ल ने राजा रत्नसिंह की बहन के साथ विवाह किया। अपनी पत्नी के साथ समभाव से सुन्दर केलिवनों में विहार करते हुए मेवाड़ अधिपति राजा रत्नसिंह द्वारा बन्दी बनाये गये षटपुर नरेश के पुत्र बारे में सुना। उसके बाद राजा सूर्यमल्ल षटपुर राजा के पुत्र को छुड़ाने के लिए चल दिया। रास्ते में अपने भारत के राजाओं में प्रसिद्ध चित्रकूटाधीश्वर रत्नसिंह को शारदीय नवरात्र में देवी दुर्गा की पूजा करने जाते हुए देखा, जो ऐरावत के समान हाथी पर चढ़कर तेजी से चल रहा था और, जिसके पीछे षटपुर का राजा था। यद्यपि वह रत्नसिंह अपने सैनिकों के साथ था, फिर भी सूर्यमल्ल अकेले ही सिंह के समान उछलकर रत्नसिंह के हाथी पर चढ़ गया। चित्रकूटाधिपति अपने हाथी के पृष्ठभाग

में चढ़े हुए सूर्यमल्ल को देखकर क्रोध से बहुत देर तक ढके हुए बनने वाले दवा पाक की तरह सन्तप्त हो गया।

वह राजा सूर्यमल्ल देवी पूजा से लौटे हुए रत्नसिंह के हाथी से षटपुरपति को अपने हाथी की तरफ ले आया और क्रोधपूर्वक आँखे लाल किये हुए अत्यन्त संक्षेप में कहने लगा– पृथ्वी पर जितने भी राजा हैं सभी चित्रकूट के राजा सिसोदिया राणा के वंश में ही हूए हैं। इस षटपुरपति का इस प्रकार छल से बन्दी बना लेना उचित नहीं है और बून्दीश्वर षटपुरपति के साथ बून्दी नगर को आ गया। उसके बाद सूर्यमल्ल ने उसे पुनः षटपुर साम्राज्य के राजसिंहासन पर अभिषिक्त कर दिया। उसके बाद ईर्ष्यालु रत्नसिंह ने आखेट के ब्याज से चन्द्रदुर्ग के पास में जाते हुए सूर्यमल (अपने बहनोई) को शिकार के लिए निमन्त्रित किया और मायाधारी कपटी रत्नसिंह सूर्यमल्ल को शिकार खेलने आता हुआ देखकर उनकी बार–बार प्रशंसा कर उसे अपने विश्वास में ले लेता है। निर्लज्ज वह रत्नसिंह अपने सैनिकों के साथ एकान्त में कुछ निन्ध कर्म का विचार कर आखेट के बहाने हिंसक जन्तुओं से व्याप्त जंगल में चला गया और वहाँ उन सैनिकों ने रत्नसिंह के इशारे पर सूर्यमल्ल को मारने के लिए बाण चलाया। उसके बाद सीने पर बाण लगने से सूर्यमल्ल बेहोश हो गया। कुछ देर बार होश आने पर उन दोनों के लौटते हुए रत्नसिंह से कहा कि तुमने हिरण का शिकार किया है अब तुम सकुशल घर जाओ। इससे क्रोधित रत्नसिंह पुनः सूर्यमल्ल को मारने दौड़ता है, किन्तु मूर्च्छित होने पर भी सूर्यमल्ल उनके कन्धों को पकड़कर खींच लेता है और उसके मर्म ह्रदय को चीर डालता है। किन्तु बाण से क्षत हो जाने के कुछ ही क्षण में उसकी भी मृत्यु हो जाती है।

रत्नसिंह और सूर्यमल्ल के मृत्यु का समाचार सुनने के बाद उसकी माँ खेतू बाई अपनी बहू को यह समाचार देती है। इस बात से पति साथ जाने की इच्छावाली अपनी उस वधू को रोकती है। यह खेतूबाई जोधपुर राजा सूजा राठौड़ की पुत्री, नारायणदास की पत्नी थी, यह इतिहास से जानना चाहिए।

सूर्यमल्ल के सुरताण नाम का एक पुत्र हुआ था जो दुर्भाग्य से बहुत उन्मादी था और पिता के इस समृद्ध राज्य को ज्यादा दिन तक चलाने में समर्थ नहीं हो सका। अतः शीघ्र ही शत्रु इस पर अधिकार कर लेगा ऐसा देखकर वृद्ध मंत्रीगण समयानुकूल विचार करते हैं। तभी सचिवों के कानों में आकाशवाणी रूप अमृत की वर्षा होती है, अर्थात् एक आवाज सुनाई देती है कि नारायणदास का छोटा भाई नर्बद का जो पौत्र है सुर्जनदेव, इस बून्दी राज्य शासक होगा। इस आकाशवाणी के बाद सभी ऋषि मंत्री आदि शुभ महूर्त में उसे राज्य सिंहासन के पद पर अभिषिक्त कर देते हैं। इस प्रकार विश्वनाथ के प्रस्तुत काव्य का सूर्यमल्ल–स्तुति नाम का यह सातवाँ सर्ग पूर्ण होता है।

अष्टम सर्ग – सुर्जनवर्णनम्

इस सर्ग में वर्णन किया गया है कि सुरताण के बाद सुर्जनदेव राजा पृथ्वी को धारण करता हुआ अत्यधिक ऊँचे आकाश में देदीप्यमान था। इनकी दोनों भुजाएँ लम्बी थी। यह अत्यन्त कान्तिमान, शत्रुओं के लिए कष्टकारक, सूर्यवंशी तथा एक अद्‌भुत पराक्रमी था। यह जहाँ अत्यन्त क्षमाशील, सज्जनों व मित्रों का विजयाभिलाषी था, वहीं उसने शिव की तरह इस संसार में काम के समान अत्यन्त उद्धत आवेग को मार दिया। यह एक पवित्र पूतात्मा परशुराम के समान था, भोगोत्सुक दान के द्वारा ब्राह्मणों के साथ धन–सम्पत्ति के उपभोग का अभिलाषी था। यह अच्छे मंत्रियों से युक्त (सुमन्त्र युक्त) दशरथ के समान था। अपने कुलों का दीपक था, दृढ़ प्रतिज्ञता में भीष्म के समान था। इसकी शादी अत्यन्त उच्च वंश की राजपुत्री कनकावती से हुई थी। यह कनकावती ईडरराज जगमाल की पुत्री थी। यह वृतान्त सुर्जन चरित से जाना जाता है। यह अत्यन्त पराक्रमी सुर्जनदेव शत्रु सेना को जीतकर शीघ्र ही रणम्भौर पर्वत दुर्ग को अपने वश में कर लेता है।

महाकवि विश्वनाथ ने यहाँ पाँच श्लोकों में रणथम्भौर का वर्णन किया है। सुर्जन रणथम्भौर को जीतकर वहीं निवास करने लगता है। अपने आचरण एवं प्रजापालन तत्परता के कारण कुशल सदस्ययुक्त राज्यसभा में बैठे हुए सुर्जन की

स्तुति मंत्रो से व बन्दीजन प्रशंसा किया करते थे। हे राजा सूर्यकुल के भूषण आपके कीर्ति रूपी प्रकाश से समस्त भूमण्डल प्रकाशित है। आपके पराक्रम से सभी शत्रुओं की स्त्रियाँ शोकमग्न दिखाई देती हैं। आपकी कृपा से याचकगण भी वैभवशाली हो गये हैं। चित्रकूट दुर्ग में राजा के नष्ट हो जाने पर मेवाड़ के राजा सहायक है। आपके पिता उस पर्वतदुर्ग पर रहते हुए अपने बाहुबल से स्वर्ग को जीतते हुए देखे गये थे।

ध्यातव्य–यहाँ कुछ वर्णन इतिहास विरूद्ध है। चितौड़ दुर्ग पर आक्रमण माण्डू–सर त्राण ने नहीं किया था, अपितु गुर्जर सुरत्राण बहादुरशाह ने (1592 वि. 1535 वैक्रमाब्द) में राजा विक्रमाजित नाम के चितौड़ राजा राणा संग्रामसिंह पुत्र के शासन काल में किया था। मुगल इतिहास के अनुसार मार्च मास में यह आक्रमण समाप्त हो गया। इसी आक्रमण से सुर्जन पिता नर्मद पुत्र अर्जुन चितौड़ दुर्ग के सुरक्षा से भागते समय दुर्ग के प्रांगण में युद्ध करता हुआ मारा गया था। यह गहलोतादि रचित राजस्थान के इतिहास ग्रन्थों से जानना चाहिए।

इस प्रकार सम्पूर्ण पृथ्वी पर सबकी रक्षा करता हुआ वह चिन्तारहित होकर सुख पूर्वक सोते थे।

इसके बाद युद्ध में अत्यधिक दर्पशाली मदिष्णु तुर्कजातीय यवनों का स्वामी चुगताईवंशोत्पन्न दिल्ली सम्राट् अकबर अक्षौहिणी सेना लेकर घूमता हुआ रणथम्भौर दुर्ग पर आक्रमण करने आ गया और उसे अपने अधीन करके कुछ वर्षो तक वहीं रहा। रणथम्भौर दुर्ग के आक्रांत हो जाने पर राजा सुर्जन युद्ध के लिए दुर्ग के बाहर चला गया तथा युद्ध की तैयारी कर अकबर पर आक्रमण करके बढ़ती हुई अकबर की सेना को बेला समुद्र के तट पर रोक दिया। दोनों में भयंकर युद्ध हुआ और अन्त में सुर्जन की जीत होती है तथा रणथम्भौर दुर्ग पर सुर्जन पुनः अधिकार हो जाता है। इसके बाद सुर्जन से हराकर अत्यन्त कुपित यवनराजा राजनीति–वेत्ता अकबर सुर्जन के पास एक दूत भेजता है, जो अकबर के सन्देश को अत्यन्त विनम्रता पूर्वक समयानुकूल साधारण वस्त्रादि में कहने सुर्जन के पास आता है और विनम्रतापूर्वक उनके चरणों में प्रणाम कर अपना परिचय बताता है कि

मैं कछवाहा क्षत्रियवंश में उत्पन्न आमेर राजा भगवानदास का पुत्र तथा अकबर का श्रेष्ठ दूत हूँ और बादशाह अकबर आपसे मित्रता करना चाहते हैं, ऐसा मैं सन्देश लाया हूँ और भी वह अपने अतिथि हैं, जिसके लिए रणथम्भौर दुर्ग प्रदान करना आपके लिए अच्छा होगा। अस्थिपाल वंश में उत्पन्न आप जैसे राजाओं के लिए तो बाहुबल ही दुर्ग है। ये दुर्ग सब तो अन्य कुलों में उत्पन्न भीरू राजाओं के प्राणरक्षा के लिए होता है। इसलिए मेरे विचार से तो आप अकबर से मित्रता कर और उन्हें रणथम्भौर दुर्ग देकर सम्मानित करके अपनी मित्रता को और भी मजबूत बनाये। भगवानदास के पुत्र की इस प्रकार बात सुनकर सुर्जन ने कहा कि यदि मेरे घर आकर यदि स्वयं बादशाह रणथम्भौर दुर्ग मांगता है तो मैं धन्य हूँ। मैं अकबर के लिए अवश्य ही यह दुर्ग दे दूँगा। धन, बस्त्र, हाथी घोड़े जीते गये राज्य, इतना ही नहीं, अपना प्रिय शरीर भी मैं दान में दे सकता हूँ किन्तु मैं केवल अपना यश देने में मैं बहुत कृपण (कंजूस) हूँ। ऐसा कहकर दानवीर राजा सुर्जन अकबर का सम्मान करके रणथम्भौर दुर्ग उसके लिए दे देता है। उसके बाद वह अकबर दूत अपने यश को फैलाता हुआ सुर्जन के साथ दिल्ली आता है, जहाँ अकबर उसका सम्मान कर उसे गोडवान प्रदेश का शासक नियुक्त करता है। अकबर में अपना विश्वास दिखाने वाला वह सुर्जन पुलिंददेश (गोडवाना) अधिपति को जीतने चला जाता है तथा उसे जीतकर चतुष्काल दुर्ग को शीघ्र ही जीत लेता है और चौराचल नाथ तथा उस दुर्ग को जीतने चला जाता है। अपने पराक्रम से वहाँ के राजाओं को मारकर उस पर अपना आधिपत्य बना लेता है। इस प्रकार शीघ्र ही अपने शत्रुओं को जीतकर अपने यश का अत्यधिक विस्तार करता है। इसके बाद सुर्जनदेव के दो पुत्रों का जन्म होता है, जिसका नाम दुर्योधन और भोजदेव रखा जाता है। धीरे–धीरे सुर्जन बूढ़ा हो जाता है। उसने अपने ज्येष्ठ पुत्र दुर्योधन को जो इतिहास में दूदा नाम से प्रसिद्ध था, उसे बून्दी के युवराज पद पर स्थापित कर अपने भक्त, सेवानिष्ठ, अतिप्रिय भोजदेव को लेकर अपनी मुक्ति की कामना से बाराणसी आ जाता है और वहाँ भगवान् शंकर की अराधना करते हुए तारक मंत्र का जप करते हुए सूर्यकुलोत्पन्न यह वीर सुर्जन वहीं स्वर्गलोक को प्रस्थान कर देता है।

इस प्रकार विश्वनाथ कृत शत्रुशल्यचरित काव्य में सुर्जन का वर्णन रूप आठवाँ सर्ग समाप्त होता है।

नवम सर्ग – महाराज श्री दुर्योधन वर्णनम्

नवम सर्ग का आरम्भ करते हुए महाकवि ने वर्णन किया है कि युवराज के पद पर आसीन सुर्जन का ज्येष्ठ पुत्र वीर दुर्योधन पिता के जीवत रहते हुए ही जल्दी ही बून्दी को अपने वश में कर लेता है। इतिहास कहता है कि इस दुर्योधन ने अपने पराक्रम के कारण किसी के सामने अपना सिर नहीं झुकाया।

यह दुर्योधन सूर्यमल्ल के द्वारा मारे गये चित्रकूट के राजा रत्नसिंह की मृत्यु के विषय में सुनकर स्वयं ही दिल्लीपति मुगल सम्राट् को मारने के लिए मन में सोचने लगता है और इसके लिए उसने अपनी विशाल सेना का संग्रह करता है तथा इन सबसे युक्त होकर वह अकबर को भी कुछ नहीं समझने लगता है। दुर्योधन शीघ्र ही पृथ्वी के सभी राजाओं को जीतकर मेदकाधीश को युद्ध में मारकर चित्रकूट जीतता हुआ वृक देशीभाषा में बीका नाम के भिल्लपति (भीलराजा) को अपना सेवक सा बना लेता है। इसके बाद दुर्योधन ने अकबर से द्वेषता के कारण क्रोधवश उन उन सभी प्रान्तों को अपने अधिकार में कर लेता है और दिल्ली सम्राट् अकबर के कृपापात्र ऐसे सैकड़ों म्लेच्छाधिकारी और सैनिकों को युद्ध में मार गिराता है तथा बार–बार अकबर के राज्य में उपद्रव मचाने लगता है। अपने राज्य में दुर्योधन के इस उपद्रव को देखकर दिल्लीपति अकबर महान् मदशाली नाम वो अन्वर्थसंज्ञक मुहम्मद नाम के मुगल सेनापति को उसे रोकने के लिए भेजता है। दस हजार सैनिकों के साथ वह यवन मुहम्मद बून्दी के पास में सेना की छावनी बना देता है। इससे क्रोधित कर दुर्योधन बाणों की वर्षा करता हुआ युद्धभूमि में आ जाता है। महान विशाल सेना से युक्त क्रुद्ध यवन सेनानी उस दुर्योधन को वहीं रोक देता है। दोनों में घमाशान लड़ाई होती है, जिसके बाद यवन सैनिकों का विध्वंस करता हुआ भान्जे आदि सभी को छोड़कर प्राण बचाने के लोभ में दिल्लीपति महाराज अकबर के पास आ जाता है। मुहम्मद के द्वारा सभी समाचार

ज्ञात होने पर लकड़ी की तरह ही किसी के सामने नहीं झुकने के कारण अकबर दुर्योधन को लक्कड़खाँ की उपाधि देता है।

अकबर के द्वारा राज्यसभा में अपने सभी सैनिकों को धिक्कारते हुए बहादुर खान नाम के यवन सेनापति ने कहा था– महाराज! उस लक्कड़खान को काटने वाला मैं कुल्हाड़ी हूँ। अतः आप मुझे वहाँ भेजें। ऐसा कहने पर अकबर ने उसे कुठार खान नाम देकर दुर्योधन के पास भेजा। दोनों में पुनः भयंकर युद्ध होता है, जिसमें विजयश्री दुर्योधन को ही मिलती है। इसके बाद गुजरात के राजा की पराधीनता से मुक्ति दिलाकर आनन्द के साथ विहार करता हुआ आयु की क्षीणता के कारण इस लोक को छोड़कर स्वर्गलोक को प्रयाण कर देता हैं।

इस प्रकार विश्वनाथ के श्री शत्रुशल्यचरित काव्य के दुर्योधन के तेज और प्रताप रूप स्तुति रूप नवम सर्ग पूर्ण होता है।

दशम सर्ग – भोजदेव वर्णनम्

दशम सर्ग का आरम्भ करते हुए महाकवि ने वर्णन किया है कि सुर्जन के ज्येष्ठ पुत्र दुर्योधन के पश्चात् दुर्योधन का छोटा भाई दीर्घकाल तक राज्य करता हुआ सभी राजाओं में अग्रगण्य प्रमाणित होता है। अपने पिता सुर्जन के मित्र अकबर की सहायता की इच्छा से शत्रु का नाश करने गोडवाना के राजा पुलिन्द के पास जाता है और उनकी सेना के साथ युद्ध करता है तथा भोज के द्वारा उपकार को देखकर अतिदुष्ट आमेर का राजा मानसिंह अकबर के सामने उसकी निन्दा करने लगता है, जिससे अकबर भोज के प्रति क्रुद्ध हो जाता है। इसके बाद गुजरात के राजा के साथ युद्ध में भोज अकबर की सहायता करता है और वहाँ के सम्राट् मुजफ्फरशाह को बन्दी बना कर दयावश उसे अभय प्रदान करता है। इसके बाद अकबर उससे प्रसन्न होता है और वह अकबर के साथ आगरानल आकर अपने भवन में प्रवेश करता है। फिर वह वहाँ से बहमनी की राजधानी अहमदनगर जाता है, जहाँ के राजा की पत्नी चाँद बीबी इतिहास प्रसिद्ध है, जो पृथ्वी पर माता की तरह शत्रुओं को नाश करने में समर्थ शिव की पत्नी दुर्गा की तरह है। अत्यन्त गम्भीर शत्रुओं की गति को रोकने वाली मण्डलाकार रेखा को धारण करता हुआ

यमदिक्पति का अमरापुर है, जहाँ अत्यन्त वीरों के निवास में (निवास स्थान में) बाण, धनुष, खड्ग, माला आदि अस्त्रों से युक्त स्त्रियाँ मातृशक्ति की तरह हैं, जहाँ विद्वानों का समूह है।

यह राजा भोज युद्ध में अत्यन्त बलशाली है, तीनों लोकों के विजय का निवास स्थान है, उसने अमरापुर नाम के नगर को शीघ्र ही छिन्न–भिन्न कर दिया। घोड़े पर बैठा हुआ ही नगरों की ऊँची–ऊँची दीवारों को तोड़ डाला और चारों तरफ अपनी विजय पताका लहराता रहा। इस प्रकार राजा भोज उस दक्षिण दिशा को अपने आज्ञापालक के प्रति निष्ठा दिखाकर अपने नगर बून्दी वापस लौट आया।

अकबर की मृत्यु के बाद मानसिंह अकबर के पौत्र खुर्रम को राजा बनाने के लिए उद्यत हुआ, किन्तु त्रिभुवन जयशाली भोज ने अकबर के पुत्र शाह शिलिम नाम के सलीम को (जहाँगीर) बलात् दिल्ली का शासक बना दिया। इसके बाद वह भोज अपने पुत्र रत्नसिंह को अपना राज्य समर्पित कर मृत्यु को प्राप्त हो गया।

इस प्रकार शत्रुशल्यचरित में दशम सर्ग पूर्ण होता है।

एकादश सर्ग – श्री रत्नराज वर्णनम्

इसके बाद ग्यारहवें सर्ग में वर्णन किया गया है कि भोज का पुत्र राजा रत्नसिंह शरीर से सुवर्ण की कान्तिवाला, अत्यन्त गम्भीर, धैर्यशाली युद्ध में प्रबल अपने वंश का अलंकार, उन्नत कंधा वाला सभी राजाओं में श्रेष्ठ था, जो बाल्यावस्था में से यवन सेनाओं के लिए प्रज्ज्वलित अग्नि की तरह था। यहाँ कवि विश्वनाथ ने एक ऐतिहासिक घटना का संकेत किया है। राव सुर्जन की मृत्यु के बाद चरणाद्रि दुर्ग पहले ही उसके पुत्र राव भोज के अधिकार में थे, किन्तु शीघ्र ही अकबर ने लाहौर के अधिकार में नियुक्त कर लिया। भोज के परिवार के सभी लोग चरणाद्रि दुर्ग में ही रह गये। भोजपुत्र रत्नसिंह यहाँ भोज के प्रतिनिधि के रूप में रहता था। उसके बाद अकबर ने प्रयाण के शासक के रूप में सिरिफखान को नियुक्त किया। उसने अकबर को चरणाद्रि दुर्ग का आधिपत्य देने की भी प्रार्थना की। मुगल सेनाध्यक्ष ने इस बात का आज्ञा पत्र भोज के पास भेजा और

उसकी प्रतिलिपि यवन सूबेदार के लिए भी भेज दी। उसके अनुसार प्रयाग सूबेदार ने चरणाद्रि दुर्ग को उसे देने के लिए भोजपुत्र रत्न के पास दूत भेजा। रत्नसिंह ने पिता भोज की आज्ञा के बिना चरणाद्रि दुर्ग को उसे देने के लिए मना कर दिया। इस विषय में प्रयाग सूबेदार ने चरणाद्रि दुर्ग को अपने अधीन करने का प्रयास किया, तभी रत्नसिंह ने उसकी हत्या कर दी। राजा रत्नसिंह ने आमेर के शासक भगवानदास की पुत्री रामकुंवर से शादी कर ली। अपनी पत्नी के साथ आनन्दपूर्वक रहता हुआ उसके एक अत्यन्त पराक्रमी पुत्र ने जन्म लिया, जिसका नाम गोपीनाथ था। युवावस्था होने पर गोपीनाथ को रत्नसिंह ने युवराज बना दिया। अपने पिता द्वारा प्राप्त राज्यभार को कर्त्तव्य पूर्वक ढोता हुआ उसने महामेला दुर्ग के राजा विजयनाथ की पुत्री से विवाह किया, जिससे एक पुत्र ने जन्म लिया। जिसका नाम शत्रुशल्य था। शत्रुशल्य के जन्म के बाद आकाशवाणी हुई कि हे राजन्! तुम्हारा यह पौत्र अपने बल से शत्रुओं पर विजय प्राप्त कर चिरकाल तक पृथ्वी का शासक होगा। अपनी समृद्धि और अनुराग से युक्त राजा ने अपने पुत्र गोपीनाथ को बून्दी के राज्यपालन में नियुक्त कर दशों दिशाओं को जीतने के लिए प्रस्थान किया और गोगूँदा (मेवाड़ स्थित) उदयपुर के राजा अमरसिंह के दुर्ग को अपने पराक्रम से वश में कर लिया। उसके बाद दिल्ली के राजा जहाँगीर की रक्षा करने अजमेर पहुँचा। इस तरह सम्पूर्ण पृथ्वी पर भोज का पुत्र राव रत्नसिंह अपनी कीर्ति को प्रसारित करने लगा।

महाकवि विश्वनाथ ने इस सर्ग में राजा रत्नसिंह के पराक्रम एवं उसकी शासन–दक्षता का वर्णन बहुत ही रोचक ढ़ंग से प्रस्तुत किया है।

द्वादश सर्ग – श्री शत्रुशल्य सामुद्रिकलक्षणवर्णनम्

बारहवें सर्ग का आरम्भ करते हुए महाकवि ने वर्णन किया है कि गोपीनाथ के बाद उसका पुत्र शत्रुशल्य संसार के पालक रूप में एक अच्छा राजा प्रमाणित हुआ। इस शत्रुशल्य को गर्भ में धारण करती हुई उसकी माँ गौरी को स्वप्न में शेषनाग के दर्शन होते हैं उसे भगवान् शिव का आशीर्वाद प्राप्त हो जाता है। कवि की इस कामना से इसके ऊपर शिव शक्ति का प्रभाव भी झलकता है। यद्यपि इस

सूर्यवंश में अनेकों राजा हुए हैं, किन्तु शत्रुशल्य निश्चित ही अपने में एक पृथक् एवं अत्यन्त गर्वित राजा के रूप में लोक प्रतिष्ठित हुआ।

यह शत्रुशल्य आज्ञानुवाक् क्षात्रधर्म की प्रतिमूर्ति था। इसके मस्तक मानों इच्छानुरूप पृथ्वी के स्वाभाविक सुन्दर राज्य की कीर्ति लेखक की पुस्तिका थी। यह इन्द्र के समान पराक्रमी, विष्णु के समान समदर्शी एवं शिव के समान गौरवशाली था। चन्द्रमा की सभी कान्तियों को धारण करता हुआ यह शत्रुशल्य अपने तेज से सबको प्रकाशित करने वाला था। इनके दोनों कानों एवं नेत्रों में होने वाले विवाद को रोकने के लिए मानों नासिका रूपी सीमारेखा खींची गई हो। इस शत्रुशल्य का लाल कमल की पंखुड़ियों सदृश जिह्वयुक्त शरीर रूपी समुद्र के समान था, जो मानों बुद्धिरूपी नौका से पार करने में समर्थ हो। शरीर की सुन्दरता से कामदेव के अहंकार को खण्डित करता हुआ इसके राज्य को मानों उसने अपने अधीन कर लिया था।

इस प्रकार सामुद्रिक सभी लक्षणों से युक्त इस युवराज का चमकता हुआ तेज शत्रु रूपी मेघ समूह को विभक्त करने वाला था। ये सारे सामुद्रिक लक्षण महापुरूषों में ही पाये जाते हैं और शत्रुशल्य में यह सब पाया जाना एक अत्यन्त उच्च शासक का लक्षण है, जिसका वर्णन महाकवि विश्वनाथ ने इस काव्य के इस सर्ग में बड़े ही साहित्यिक ढ़ंग से (अलंकारिक रूप में) प्रस्तुत किया है।

त्रयोदशः सर्ग – शत्रुशल्यायः नालिकेरार्पणम्

तत्पश्चात् तेरहवें सर्ग में महाकवि ने वर्णन किया है कि रत्नसिंह से युवराज पद की प्राप्त कर शत्रुशल्य उसी समय से शत्रुओं के तेज को समाप्त करने लगा। अपने बाहुबल से दुष्टों को अपने अधीन करके प्रजाओं में नीति का विस्तार करने लगा। इस शत्रुशल्य की प्रजा वेदों की तरह निपात अनुदात्तादि स्वर से, वैशेषिकों की उक्ति की तरह पदार्थों में, कालिदासादि कवियों को गम्भीर वाणी की तरह व्यंजनाप्रधान, कुटिल उक्तियों में प्रवीण न थी अर्थात् सरल और सज्जन प्रत्यक्ष स्वरूप वाली थी। इस शत्रुशल्य के चरित्र से दूसरों की साधारण बातें करने से विरत इस राजा के शिकार के अतिरिक्त उत्पन्न किसी प्रकार का प्रहार नहीं होता

था। इस राजा की प्रखर नीति प्रजा की तरह कविजन भी स्वीकार किया करते थे। श्रुति की तरह शत्रुशल्य की नीति सबके लिए धारण के योग्य हुआ करती थी। उसके बाद राठौड़ कुल में उत्पन्न दलपति ने शत्रुशल्य के गुणों को सुनकर शत्रुशल्य के लिए अपनी पुत्री को देने के लिए पूज्य और आदरता से युक्त संदेश लेकर अपने पुरोहित को भेजा। उसके बाद दलपति के पुरोहित ने अपने कार्य की सिद्धि के लिए अश्वारूढ़ होकर शुभ मुहूर्त में प्रस्थान किया। रास्ते में एक कमलमुखी मृगनयनी, सुन्दर शरीर वाली, तिलकयुक्ता, सुन्दर वस्त्र युक्ता सिद्धि की संसूचिका पोडशवर्षीय कन्या को देखा और अत्यन्त पीनस्तनी होने के कारण मन्द–मन्द चलती हुई गाय को देखकर शुभ–अशुभ का विचार करता हुआ वह पुरोहित बून्दी पहुँचता है और राजा का दिया गया सन्देश उसे बताया है। पुरोहित उसे राजकन्या के गुणों को बताते हुए उपयुक्त होने के कारण वरण करने के लिए राजा को निवेदन करता है। राजा शत्रुशल्य भी उसके गुणों से आकृष्ट होकर उसे अपने अनुरूप जानकर उसे स्वीकृति प्रदान करता है।

चतुर्दश सर्ग – शत्रुशल्यस्य विवाहप्रस्थानवर्णनम्

राजा शत्रुशल्य पुरोहित के द्वारा संदेश सुनने के पश्चात् उस कन्या के विवाह के विषय में सोचता हुआ मन ही मन प्रसन्न होता है और उसे अभीष्ट वस्तु की प्राप्ति का काल भी असह्य हो रहा है तथा मन ही मन अनेक प्रकार के मनोरथों की कल्पना करता है।

कवि विश्वनाथ प्रस्तुत सर्ग में शत्रुशल्य की आसक्ति एवं कामाग्नि से पीडित उसकी अवस्था का चित्रण बड़े ही रोचक ढ़ंग से करता है। कवि कहता है कि शत्रुशल्य मन ही मन प्रसन्न होता हुआ उसे अपनी पत्नी मानकर कहता है कि मेरी इस तरह की भावना और आसक्ति का होना निश्चय ही मेरे योग्य होने का परिचायक है। शत्रुशल्य अपने मन ही मन उसे सम्बोधित करता हुआ कहता है कि हे प्रिये मेरी वाणी तुम्हारे गुणों से मोहित हो चुकी है, मेने कान तुम्हारी कथाओं से आहत हो चुका है, नेत्र तुम्हारे रूपों से अन्य को देखने में असमर्थ हो गया है। मैं शपथपूर्वक कहता हूँ कि तुम्हारे अतिरिक्त मेरे मन में और किसी का प्रवेश नहीं है।

ऐसा सोचता हुआ शत्रुशल्य उसे अपनी भुजाओं में लेने के लिए ज्योही हाथ फैलता है, अज्ञानात् उसका आलिंगन करना चाहता है, तभी किसी मित्र द्वारा उसे रोका जाता है। शत्रु के द्वारा रोकने मात्र से ही वाणों से आहत हुआ सा वह उन्माद रूप मत्तगज शत्रुशल्य के हृदय रूपी सरसी प्रदेश से बाहर चला जाता है। इसी बीच तान्त्रिक माण्डूरपुर से आकर श्यामा दलपति के पुत्रों के विवाहोत्सव का निमन्त्रण पत्र शत्रुशल्य के हाथ में देता है। वह उस पत्र को ही श्यामा के रूप में देखता हुआ हर्ष से सिर हिलाता हुआ उसे पढ़ता है।

वह दलपति कुशलादि पूछकर बून्दी के स्वामी शत्रुशल्य को बताया है कि आज से आने वाले सातवें दिन अंग राजा पुत्री आपको दी जायेगी अर्थात् शादी होगी। वह पत्र शीघ्र ही शत्रुशल्य की मुखकान्ति को दुगुना कर देता है। उसके बाद उस राजा के सचिवों द्वारा मण्डूर को उद्देश्य कर महान् सैन्य बल सुसज्जित कर यात्रा के लिए प्रस्थान करता और स्वयं ही वर के वेश में तैयार होकर सभी लोगों का आशीर्वाद प्राप्त करता हुआ विवाह के लिए प्रस्थान करता है।

महाकवि विश्वनाथ इस सर्ग में शत्रुशल्य की सुन्दरता और विवाह के प्रस्थान विषयक विभिन्न सज्जाओं का वर्णन चारूतया प्रस्तुत करते हैं।

पञ्चदशः सर्ग – वरयात्रावर्णनम्

पन्द्रहवें सर्ग में शत्रुशल्य के विवाह–स्थान का रोचक वर्णन करते हुए कहा गया है कि विवाहाभूषण से सुसज्जित होकर अपने पितामह को प्रणाम के बाद मनोरथपूर्वक सभी के द्वारा नमस्कार किया हुआ और सभी द्वारा आज्ञा प्राप्त वह शत्रुशल्य विवाह के लिए प्रस्थान करता है।

अत्यन्त सुन्दर, बहुविध सुसज्जित शत्रुशल्य विवाह विधि में अति तृष्णा वाला वह कच्छी घोड़ी पर बैठता है (गणेश्वर से पूर्व भाग में समुद्र से उत्तर का भाग कच्छ कहलाता है, जहाँ अत्यन्त श्रेष्ठ माना जाता है।)

शत्रुशल्य के पीछे उसकी विशाल सेना थी, जिसको देखने के लिए गलियों में स्त्रियाँ और पुरजन पंक्तिबद्ध खड़े होकर प्रतीक्षारत थे। नगर की युवतिसमूह

राजा को विवाहोद्यत देखकर मंगल गीत गा रही थी। रास्ते में वायु के बहने से बाँसों के आपस में रगड़ से उत्पन्न आवाज एवं कोयलों के पञ्चम स्वर को सुनाता हुआ वह शत्रुशल्य अपने गायकों के गाने से होने वाले सुख को भूल गया।

इस प्रकार शत्रुशल्य के विवाह प्रस्थान विषयक मार्ग का वर्णन कवि द्वारा उपस्थापित प्रकृति वर्णन का अनुपम उदाहरण है। कवि कहता है कि मार्गों के इस सुन्दर स्वरूप को देखकर केलिवनों, वनों, पर्वत, खण्डों नदियों आदि की प्राकृतिक स्वाभाविक दशा शत्रुशल्य को और भी उद्वेलित कर रही थी। उसे शीघ्र पहुँचने की उद्विग्नता है, फिर भी वह राजा अपने आपको नियंत्रित करता हुआ मार्ग में सभी का सम्मान करता है। सभी द्वारा दिये गये उपहार को स्वीकार करता है और सभी के सत्कार स्वीकार कर उससे अनुगृहित होता है।

कवि कहता है कि इस प्रकार शत्रुशल्य की विशाल वाहिनी सेना जगह–जगह विश्राम करती हुई नदियों के जल और अन्य फलों को खाती हुई सुजनों के बताये मार्ग पर चलती जा रही है। वन मानों अपने पक्षियों की कूजने रूपी प्रेमपूर्ण वाणी से स्वागत करता है, कुल्यों में फूलों के गंध से सुगंधित जलों से उनका पैर धोता है और पुष्प वर्षा से उनका स्वागत करता है। इस सबको स्वीकार करता हुआ भी वह शत्रुशल्य दलपति की पुत्री श्यामा को अगले दिन प्राप्त करूँगा, ऐसा सोचकर दुःखी होता हुआ विरहपूर्वक जैसे तैसे उस दिन को बिताता है।

षोडशः सर्ग – नायिकांगवर्णनम्

उसके बाद सोलहवें सर्ग में महाकवि ने वर्णन किया है कि सूर्य ने दिशाओं की वधू के समान अपने हाथों से समालिंगन करने के कारण श्री कामक्रीड़ास्थल में होने वाली थकान से झलकाये हुए अंगो को छोड़कर मानों पश्चिम दिशा को प्राप्त कर लिया।

बहुत देर तक अपनी प्रिया को दूर होने से दुःखित पश्चिम दिशा रूपी नायिका के पास जाते हुए सूर्य ने अतिविनीत बुद्धिवाली पश्चिम दिशा का चुम्बन किया। पश्चिम दिशा में डूबते हुए सूर्य रूपी हाथों के ऊपर किरण रूपी सिन्दूर

रेखा पश्चिम दिशा में भी उसी रूप को प्राप्त कर आकाश में रक्तता को धारण करता है। सूर्य के पश्चिम दिशा में जाने पर कार्य की शीघ्रता के कारण अपने आश्रय स्थान पर जाने का विचार भी नहीं करने वाले के लिए अचानक अन्धकार छा गया। इधर चाँदनी 'अपने प्रिय चन्द्रमा से संगम होगा' ऐसा विचार कर कुंकुम अंगलेप लगाई हुई सी आकाशमण्डल में फैल गई। चन्द्रमा भी उदयांचल पर्वत पर रहता हुआ पर्वतों की उपत्यका में रहते हुए अपने मित्र की तरह बार–बार उसे प्रकाशित नहीं करके बार–बार हंसते हैं। आकाश में तारे अपने अपने स्थानों पर उद्भासित होते हुए मानो अपने राजा के आने की खुशी में अत्यन्त प्रसन्न से दिखाई दे रहे थे। इस प्रकार कवि विश्वनाथ ने प्रस्तुत सर्ग में प्राकृतिक सुन्दरताओं का चरित्रांकन करने के साथ शत्रुशल्य के मानसिक व्यापार का चित्रण अत्यन्त काव्यीय दृष्टि से प्रस्तुत किया है। अप्रस्तुत अलंकार के साथ–साथ उपमा का प्रयोग करने में कवि ने अपनी कुशलता व्यक्त की है। कवि दलपति की पुत्री श्यामा का चित्रण करता हुआ उसका नख–शिख वर्णन करता है। कवि कहता है कि यौवनजल से अभिषिक्त होने से श्यामा के अंग पर चन्द्रमा की कान्ति को तिरस्कृत कर देने वाली अनुपम कान्ति है, कपोलफलक पर लालिमा मानों पके हुए नारंग फल के समान थी। ऐसा लगता है कि ब्रह्मा ने अपनी कृति इस श्यामा के अधर पर माधुर्य से युक्त अपनी सारी कला को अभिषिक्त कर दिया हो। मृगी के सदृश श्यामा का बुद्धिविषय रूप गलगण्ठ संसार को जीतने के लिए कामदेव का कण्ठ ही है, जो कानो को मोहित करने हेतु सुन्दर ध्वनि निकालने वाला है। इस प्रकार श्यामा का नखशिख वर्णन करता हुआ कवि कहता है कि शत्रुशल्य ने इस प्रकार श्यामा के स्वरूप का बार–बार चिन्तन करते हुए जैसे–तैसे वन में वह रात बिताई। इस प्रकार शत्रुशल्य एवं श्यामा के सौंदर्य वर्णन के साथ यह षोडश सर्ग समाप्त होता है।

सप्तदशः सर्ग – विवाहवर्णनम्

उसके बाद अगले सत्रहवें सर्ग में कवि कहता है कि आनन्द से प्रफुल्लित होते हुए उस कलप नामक राजा ने अपने सचिव और अधिकारी से कहा कि सूर्यकुल में उत्पन्न अपनी सम्पदा से इन्द्र को भी तिरस्कृत करने वाले श्यामा के

वर शत्रुशल्य की यथायोग्य सेवा करो–ऐसा कहने पर आज्ञाकारी सेवकों ने सभी उपयुक्त सामग्री को तैयार कर लिया। दलप के राज्य में विवाहोत्सव कार्य में लगे लोगों के कोलाहल से सभी दिशाएँ गुंजायमान हो रहीं थीं। अत्यन्त सुखद वाद्ययन्त्रों के साथ बलाने वाली सहचरी कहती है – हे श्यामे!, जिस शत्रुशल्य के साथ तुम मन ही मन रमण करती हो वही तुम्हारा हाथ स्वीकार करेंगे। अतः मंगल कार्य के लिए चलो, मन में किसी प्रकार की शंका मत करो।

महाकवि विश्वनाथ श्यामा के दुल्हन–वस्त्रारूप में उसकी सुन्दरता का वर्णन करता है तथा तत्जन्य ईर्ष्यावश अन्य स्त्रियों की हीनता का भी दिग्दर्शन कराता है। इसके बाद श्यामा अपने से बड़ों का आशीर्वाद लेती है। कुल देवताओं को प्रणाम करती हुई अपने गुरू, पुरोहित एवं उनकी पत्नियों को भी प्रणाम कर आशीर्वाद ग्रहण करती है। उसके बाद वह दलप राजा सूर्यकुलोत्पन्न शत्रुशल्य को श्यामा के साथ विवाह–विधि के लिए बुलाता है। दलप द्वारा भेजे गये सन्देश से प्रसन्न चित्त वाला शत्रुशल्य मंगल गीतों एवं वाद्य ध्वनियों के साथ मण्डूर में प्रवेश करता है।

प्रतिहार द्वारा शत्रुशल्य के द्वार पर आने की बात सुनकर दलपति पैदल ही पास आकर दोनों भुजाओं को फैलाकर आलिंगन करता है और फिर अपनी पुत्री को शल्य को देने के लिए श्रुतिपूर्वक पूजा आरम्भ करता है। गठ–बन्धन के बाद दलपति मधुपर्क लाता है, जिसे शत्रुशल्य श्यामा के मधुर ओष्ठ के सदृश उसका चुम्बन करता है। उसके बाद श्यामा और शत्रुशल्य दोनों के हाथों को कुशों से बाँधता हुआ पुरोहित दोनों को आशीर्वाद प्रदान करता है। श्वसुर दलप के द्वारा दिये गये चूड़ामणि हार को अपने गले में डालकर शत्रुशल्य श्यामा रूपी कमल के मृणालदण्ड से भी कोमलता का अनुभव करता है। इसके अतिरिक्त शत्रुशल्य अनेकों प्रकार के आभूषण धन–धान्य, घोड़े, हाथी एवं सैकड़ों दासियाँ भी उपहार में प्रदान करता है। इस प्रकार अग्निविधान के साथ दोनों का विवाह सम्पन्न होता है, वर वधू एक–दूसरे को देखते हैं और स्वीकार करते हैं और दलपति विवाहोपरान्त तीन दिवस तक अपने घर में रखकर उन्हें विदा करते हैं।

इस प्रकार शत्रुशल्य एवं श्यामा के विवाहवर्णन रूप यह सत्रहवाँ सर्ग पूर्ण होता है।

अष्टादशः सर्ग – वन्दिस्तुतिवर्णनम्

उसके बाद प्रातःकाल मगध के स्तुति–गान विशेष पुरूषों द्वारा जगाये जाने के लिए स्तुति–गीत सुनाया जाता था। स्तुति गीतों के साथ बन्दीजनों ने राजा से कहा– हे राजन्, सूर्य अपनी लालिमा से युक्त मुख कमल को विकसित कर जैसे अन्धकार को दूर करता है, उसी तरह आप निद्रा रूपी अन्धकार का त्याग कर लोगों को आनन्दित करें। इस प्रकार कवि विश्वनाथ ने इस सर्ग में प्रायः 87 श्लोकों तक बन्दीचारणों द्वारा स्तुति गीतों के माध्यम से राजा की स्तुति की है। इस प्रकार समूहों के सुन्दर छन्दों से युक्त स्तुति द्वारा शीघ्रता पूर्वक परित्यक्त नींद वाला शत्रुशल्य जंभाई लेकर, विलासपूर्वक अलसाई आँखें खोलने वाली श्यामा के बदन–कमल को देखता है। शत्रुशल्य का नेत्र जम्हाई लेने से दोनों बाजुओं के प्रसारित होने से स्पष्टता दृश्यमान श्यामा के दोनों स्तन निम्नोन्न कुवलयों की श्रेणी तरह लग रहे थे, जो उलटने वाले के सम्मुख आ जाने पर मानों सुखपूर्वक शयन की बात पूछ रहे हों। उसके बाद वह शत्रुशल्य अपनी उस श्यामा के साथ धीरे–धीरे बून्दी नगर में आ जाता है।

शत्रुशल्य ने चालुक्य पर पर्याय सोलंकी कुल में उत्पन्न दो कन्याओं से भी विवाह किया तथा ईडर नगर पाल कल्याणमल्ल के पास से दो राष्ट्रधर कुल राठौड़ वंश से तीन, कमठ कच्छवा वंश में उत्पन्न, चन्द्रकुलोत्पन्न, यादववंशोत्पन्न, गौडी वंशोत्पन्न, मल्लनहंसज की पुत्री और सिसोदिया वंशोत्पन्न सभी का विशेषरूप, परमारवंशोत्पन्न, कर्णराजा की पुत्री, इस प्रकार से शत्रुशल्य ने पंचदश विवाह किये थे।

महाकवि विश्वनाथ ने अठारहवें सर्ग में शत्रुशल्य एंव श्यामा के सुख निन्द्रा के वर्णन के साथ बन्दीजनों द्वारा किये गये स्तुति माध्यम से शत्रुशल्य का वर्णन किया है। 92 श्लोकों के साथ यह सर्ग एक उत्कृष्ट साहित्यिक स्वरूप प्रकट करता है।

एकोनविंशः सर्ग – वनविहारषड्ऋतुवर्णनम्

तत्पश्चात् उन्नीसवें सर्ग में महाकवि ने वर्णन किया है कि राजा शत्रुशल्य सुरतक्रीड़ा में कुशल अन्तःपुर की वधूओं के साथ अत्यन्त आनन्द के साथ रह रहा था। राजाओं में श्रेष्ठ शत्रुशल्य स्त्री समूहों के साथ एकान्त में विहार करते हुए स्त्रियों के आनन्द से अत्यधिक श्रेष्ठ अपने को विहार का साधक बना दिया था। इस प्रकार राजा शत्रुशल्य ने ललनाओ के साथ कदम्ब वनों में हवा द्वारा मनाये गये वसन्त के समान शोभा को प्राप्त किया और उन्हें सुखपूर्वक सन्तुष्ट करता था। इस तरह महाकवि विश्वनाथ में राजा शत्रुशल्य एवं श्यामा के काम–क्रीड़ा एवं परिणय प्रसंग वर्णन के साथ–साथ ग्रीष्मकाल का वर्णन बड़े ही रोचक ढंग से प्रस्तुत किया है। वन्य जीवों, लताओं के प्राकृतिक सुषमा के साथ–साथ चन्द्रमा की किरणों में सन्तप्त विरहीजनों के दुःख का वर्णन भी महाकवि ने बड़े ही मार्मिक ढंग से प्रस्तुत किया है। ग्रीष्म के तेज से उद्दीप्त जीवों द्वारा वृक्ष की छाया का आश्रय ग्रहण का चित्रण भी कवि ने अपनी लेखनी में अनुपम रूप में प्रस्तुत किया है। कवि कहता है कि बून्दी के परिकर में स्थित महान उन्नत पर्वत शिखर थे, चंचल प्रतिबिम्ब इन्द्र के वज्र के तीव्र प्रहार में भयभीत मैनाक पर्वत के समान लगता है। मनुष्यों में श्रेष्ठ शत्रुशल्य पुष्पित वृक्षों के गन्धयुक्त होने से वायु द्वारा श्रेष्ठ गन्ध को निकालता हुआ चंचल भुजाओं की तरह बुलाते हुए मित्र की तरह तालाब की तरफ जाता है। इस प्रकार पर्वत, नदियों, कन्दराओं और जंगलों की प्राकृतिक वर्णन भी सहज एवं स्वाभाविक रूप से इस सर्ग में प्रस्तुत किया है। इसके साथ सभी वर्षा, शरद आदि ऋतुओं का वर्णन किया है। वस्तुतः कवि का यह सर्ग शत्रुशल्य एवं श्यामा को प्रतीक रूप में स्वीकार कर प्राकृतिक वर्णनात्मक सर्ग है।

विंशः सर्ग – रवीचीदेशग्रहणवर्णनम्

इस संसार में दूसरे के भाग्यवान् हाथ से अस्पृष्ट हमेशा वश में रहने वाली पृथ्वी रूपी पतिव्रता स्त्री अपने पति की तरह हमेशा सुख देने वाले खींची कुलोत्पन्न श्री गोपाल को जीतने के लिए शत्रुशल्य ने अपने पितामह श्रीरत्न के वाक्यानुसार विजय यात्रा प्रारम्भ की। यह शिशु रूप में रहता हुआ भी शत्रुशल्य

युद्ध में अनुपम वीरता दिखाने वाला, उत्कर्ष को प्राप्त करने वाला सुर्यकुल का आभूषण था, जिसकी प्रशंसा वाला, उत्कर्ष को प्राप्त करने वाला सुर्यकल का आभूषण था, जिसकी प्रशंसा युद्ध भूमि में महान् योद्धा किया करते थे। ग्रीष्मकालीन सूर्य की तरह भयंकर शत्रुओं को जलाने वाले मेघ के समान भीषण गर्जना करने वाले राजाओं के समूह के बीच, जो सिंह के समान था, जिसकी विजय पताका सदा आकाश में लहराती थी।

शत्रुशल्य की सेना के आगे स्थित बड़े–बड़े दांतो वाले हाथियों के द्वारा शत्रुकुल की सेना भागती हुई दिखाई देती है। शत्रुशल्य की सेना में चलते हुए घोड़े की आवाज लोगों की कल–कल आवाज को बिल्कुल ही क्षीण कर देती है।

नरपति शत्रुशल्य की सेनाओं के मार्ग में आने वाली नदियाँ शत्रुओं की स्त्रियों के मन की तरह व्याकुल हो जाती है। इस प्रकार कवि युद्ध के लिए प्रस्थान किये हुए शत्रुशल्य का वर्णन करता है। कवि कहता है कि शत्रुशल्य का अक्षयराज मऊ राजा के सेनापति के साथ भयंकर युद्ध हुआ, जिसमें शत्रुशल्य की जीत हुई थी। शत्रुशल्य की वीरता का वर्णन करता हुआ कवि कहता है कि लगातार युद्ध करने से भूख से अत्यधिक क्रूर यमराज की तरह शत्रुओं के यशरूपी वस्त्र को काटने के लिए मानों कृपाण धारण कर रखा हो। अन्ततः युद्ध में अक्षयराज को मारकर शत्रुशल्य ने मऊपति के राज्य की अधिष्ठात्री देवी की तरह उस भूमि को स्वाधीन कर दिया था।

एकविंश सर्ग – शत्रुशल्यस्य राज्याभिषेकवर्णनम्

राजा शत्रुशल्य उस मऊ भूमि को जीतने के बाद गोपाल के अधीन उस भूमि के बारे में यह सोचकर कि इसकी रक्षा किस प्रकार करेगा, अथवा वहाँ की जनता को आश्वस्त करने हेतु कुछ दिन तक मऊ नगर में ही निवास किया और वहाँ के लोगों को आश्वस्त कर अन्तःपुर के वधू–जनों के साथ बून्दी आ गया। उसके बाद आध्यात्मिक, आधिदैविक, आधिभौतिक, त्रिविध ताप को नष्ट करने वाले शत्रुशल्य ने चन्द्रमा की सुन्दरता को तिरस्कृत कर देने वाली अपनी प्रिया श्यामा के साथ एकान्त में विहार करते हुए एक पुत्ररत्न प्राप्त किया, जिसका नाम

भावसिंह था। अपने पूर्वजन्म में उत्पन्न पुण्यरूपी वृक्ष का फल, राज्यलक्ष्मी रूपी स्त्री के सौभाग्यश्री को स्थिर करने वाले, गले में सौभाग्य सूत्र को धारण करने वाले, ऐसे अपने पुत्र को उत्पन्न करती हुई रानी श्यामा ने शत्रुशल्य के आनन्दरूपी समुद्र में उसे बड़ा किया।

उस बच्चे भावसिंह के उत्पन्न होने पर मन में अतिप्रसन्न अपने पितामह से प्रेरित दानादि के द्वारा विधिपूर्वक उसका जातकर्म सम्पन्न किया। धीरे–धीरे भावसिंह के सुन्दर मुख में दुग्ध के समान सफेद दंत पंक्ति दिखाई देने लगी। बचपन से ही सहसा स्वाभाविक तेज के कारण अत्यन्त बलशाली भावसिंह शीघ्र ही पुरोहितों के द्वारा क्षात्र धर्म में संस्कृत हो गया। उसके बाद ब्रह्मचारी व्रत का पालन कर बारहवें वर्ष में केशांतादि संस्कार कर लेने के पश्चात् भावसिंह ने उच्च कुल में उत्पन्न सभी स्त्रियों के सौंदर्य गर्व को हरण करने वाली राणावंश में उत्पन्न राजा जगत्सिंह की पुत्री के साथ विवाह किया। इधर भावसिंह के द्वारा ऊँचे मनोरथों को सिद्ध होता हुआ देखकर सम्पत्ति को स्थिर करने वाले अपने पुत्र के कार्यों को देखकर प्रसन्नता पूर्वक सुख–साधनों से सम्पन्न बून्दी नगर के राजा शत्रुशल्य आनन्द को प्राप्त हुआ।

इसके बाद शत्रुशल्य कभी बाड़े में बँधे हुए हाथियों के बीच दो हाथियों को परम्पर लड़ते हुए देखता कभी, सभा की अवधि समाप्त होते हुए भी शत्रुशल्य के कौतूहलपूर्वक सिद्धहस्त कथा वाले लागों के कोलाहल की तरह सींग–सींग से परस्पर एक–दसूरे को मारने के लिए उद्यत मृग अपने क्रोध को प्रकट करना चाहता हो, इस प्रकार के दृश्य को देखता। सभी राजा शत्रुशल्य को अपना ईश्वर मानते थे। इस प्रकार राजा शत्रुशल्य ने अपने पुत्र और मित्र सबको सही एवं गलत समान कार्यों के लिए समान रूप से देखते हुए अपने कुल की मर्यादा का पालन करते हुए अपने पितामह को आनन्दित किया। अर्थात् उनकी कामना को पूरा किया। इसकी वीरता व पराक्रम के कारण खुर्रम नामक दिल्लीपति यवन–राजा, उदयपुर का राजा जगत्सिंह, जोधपुर का जोधा, राठौड़ कुलपति चन्द्रदुर्ग का राजा, आमेर का स्वामी, कच्छपवंश में उत्पन्न जयसिंह सभी ने शत्रुशल्य के लिए विशेष हाथी आदि उपहार में दिये।

इस प्रकार अपने यश का विस्तार करते हुए उसने अपने राज्य का विस्तार किया। इस प्रकार कवि विश्वनाथ कृत प्रस्तुत काव्य का इक्कीसवाँ सर्ग पूर्ण होता है।

द्वाविंशः सर्ग – शत्रुशल्यद्वारा देवगिरिग्रहणवर्णनम्

प्रस्तुत महाकाव्य के अन्तिम इस बाईसवें सर्ग में कवि ने वर्णन किया है कि तीनों लोकों को अभयदान देने में समर्थ राजाओं में श्रेष्ठ शत्रुशल्य ने अपने पितामह श्री रत्नसिंह द्वारा दिये गये राज्याश्रय पाने वाले खुर्रम राजा की रक्षा के लिए खुर्रम की सेना ओर प्रस्थान किया। तीनों लोकों की रक्षा करने वाले शत्रु को नष्ट करने में सर्मथ शत्रुशल्य भी पीछे दस हजार घुड़सवार सैनिक, पाँच हजार अश्वारोही सैनिक साथ थे। इस प्रकार खुर्रम नगर के पास जाकर अप्रतिहत तेज वाले उस राजा शत्रुशल्य के सामने तारक दैत्य कार्तिकेय के सामने इन्द्र की तरह सेना के साथ खुर्रम वहाँ आ पहुँचा। उस समय अचानक सामने आये खुर्रम के द्वारा आहत राजा शत्रुशल्य ने इन्द्रसभा की तरह खुर्रम सभा में प्रवेश किया। उसके बाद वह खुर्रम को सम्बोधन करता हुआ बोला कि शत्रुशल्य के द्वारा किसी भी प्रकार के शत्रु–उपद्रवों से दुःखित तो नहीं हैं। इस प्रकार पूछने पर यवनपति खुर्रम ने आनन्दपूर्वक शोक को हरण करने वाले शत्रुशल्य से कहा– मेरे राज्य के नाविक की तरह विपत्तिरूपी समुद्र को पार करने पर यह पृथ्वी कैसे प्रसन्न नहीं होगी अर्थात् होगी। हे राजन्! तुम्हारे उद्धत इस हाथ में खड्ग होने पर आज ही सभी राजाओं को मेरे वश में करो। इस प्रकार खुर्रम के मुहँ से निकली बातों को सुनकर शत्रुशल्य स्वयं देवगिरि पर्वत के प्रति प्रस्थान करता है। उसके बाद अपने शोक को दूर करने वाले शत्रुशल्य के साथ उस यवन सेनापति ने अति भयंकर सैनिकों को भेजा। यवन लोगों से युक्त प्रसिद्ध खानखान यवन विशेष रण में विजयी खानजमा नामक उसका पुत्र त्रिभुवन मे श्रेष्ठ और चन्द्रदुर्ग का राजा कर्णराज सैनिकों की पंक्तियों में था।

राजा शत्रुशल्य ने विकट दुर्जय, जो निजाम उसके अधीन देवगिरि पर्वत को चारों तरफ से घेर लिया, वह निजाम नाम का भूमिपाल उस पर्वत को चारों तरफ

से घिरा देखकर युद्ध ही मानों महान उत्सव था जिसके आदि में मंगल करने के लिए सेना महाबलशाली दुर्जय जो निजाम, उसका मित्र जो दिल्ली का राजा सुरगिरि का स्वामी निजाम की सहायता करता है मानों तोपों के गोलों से ही मंगलाचरण किया। इस भयंकर युद्ध में महाबलशाली दुर्जय की मुत्यु होती है। जो निजाम की सहायता के लिए आते हैं, सभी युद्ध में मारे जाते हैं। इस प्रकार देवगिरि पर शत्रुओं को समाप्त कर राजा दिल्ली पहुंचता है। प्रसन्न दिल्लीपति ने पारितोषिक रूप में उसे देवगिरि पर्वत देकर बार–बार आलिंगन करते हुए उसका सम्मान किया है।

संसार में प्रसिद्ध शत्रुशल्य ने बून्दी में चिरकाल तक अपना शासन कर अपना यश फैलाया। इस प्रकार शत्रुशल्य की वीरता का वर्णन कर महाकवि विश्वनाथ मंगल कामना करता हुआ तथा विजय कामना करता हुआ ग्रन्थ को पूर्ण करता है।

इस प्रकार विश्वनाथ रचित शत्रुशल्यचरित महाकाव्य का देवगिरि ग्रहण नामक बाईसवां सर्ग समाप्त होता है।

.....********.....

प्रथम अध्याय

काव्यशास्त्रीय परम्परा में महाकाव्य

कापि दृग्व्यंजनावृत्तिर्येन याति रसात्मकताम्।

सद्यः श्रवणसंस्कारैस्तदिदं काव्यमुच्चते।। 2

श्रवण मात्र से श्रुति–संस्कारो के द्वारा तत्काल ही जिसके द्वारा कोई अनिर्वचनीया, (चमत्कृत) नेत्रों द्वारा व्यंजित होने वाली (दृक्) व्यंजनावृत्ति रसात्मकता (रसरूपता) में परिणत हो, उसे काव्य कहा जाता है। [1]

संस्कृत साहित्य विश्व का सर्वाधिक सम्पन्न एवं उत्कृष्ट साहित्य है। प्राचीनकाल से ही हमारे राष्ट्रीय जन–जीवन पर जिसका प्रभूतमात्रा में प्रभाव पड़ा तथा सम्पूर्ण भारतीय साहित्य एवं संस्कृत्ति जिससे पूर्णतया अनुप्राणित है। संस्कृत काव्य के विकास में वेद से भी परम्परया प्रेरणाप्राप्ति का संकेत प्राप्त होता है।

सहितयोः भावः साहित्यम् साहित्य वस्तुतः वाड्.मय के विशेष रूप में शब्द और अर्थ के मंजुल सामंजस्य का सूचक है। **शब्दार्थो सहितम् काव्यम्**। [2] महाकवि भर्तृहरि का साहित्य से तात्पर्य उन सकुमार काव्यों से है, जिसमें शब्द एवं अर्थ का समानुरूप सन्निवेश है। [3]

The purpose of the literature was the creation of an idealised atmosphere of idealised and obeoctive reality. [4]

काव्य का क्षेत्र अत्यन्त विस्तृत तथा व्यापक होता है, उसे एक श्रेष्ठ परिभाषा में निबद्ध करना अत्यन्त कठिन है। मानव काव्य के माध्यम से अपने भावों की अभिव्यक्ति करता है। अधावधि काव्य अगणित रूपों में परिवर्तित होता रहता है। काव्य में इसके बाह्य स्वरूप शब्द और अर्थ का व्यापक रूप से विवेचन किया गया है। विभिन्न विद्वानों ने काव्य को इस प्रकार परिभषित किया है –

1. ''वामन'' ने रीति को काव्य की आत्मा माना है।

रीतिरात्मा काव्यस्य विशिष्टा पदरचना रीतिः। [5]

2. ''आनन्दवर्धन'' ने ध्वनि को ही काव्य की आत्मा कहा है।

काव्यस्यात्माध्वनिरिति बुधैयः समाम्नात पूर्वः। [6]

3. ''मम्मट'' ने दोषरहित अंलकार युक्त तथा कभी–कभी अंलकार रहित शब्दार्थमयी रचना को काव्य कहा है –

तददोषौ शब्दार्थो सगुणावनलंकृति पुनः क्वापि। [7]

4. ''कुन्तक'' ने वक्रोक्ति को ही काव्य का प्राण माना है –

वक्रोक्तिः काव्यजीवितम्। [8]

5. ''क्षेमेन्द्र'' के मतानुसार औचित्य ही रस जीवितभूत तत्व है। [9] यद्यपि क्षेमेन्द्र ने औचित्य को काव्य की आत्मा नाम से सम्बोधित नहीं किया है, किन्तु जीवित शब्द के प्रयोग से उसका तात्पर्य आत्मा से ही है। [10]

6. ''विश्वनाथ'' के मत में रसात्मक वाक्य ही काव्य है –

वाक्यं रसात्मकं काव्यम्। [11]

7. ''जगन्नाथ'' ने रमणीय अर्थ के प्रतिपादक शब्द को काव्य माना है –

रमणीययार्थ प्रतिपादकः शब्दः काव्यम्। [12]

इस प्रकार अन्य विद्वानों ने भी काव्य को भिन्न–भिन्न प्रकार से परिभाषित किया है यथा –

8. **ननु शब्दार्थो काव्यम्।।** [13]
9. **अदोषौ सगुणौ सालंकारौ च शब्दार्थौ काव्यम्।** [14]
10. **निर्दोषा लक्षणवती सरीतिर्गुण भूषिता।**
सालंकार – रसानेकवृत्तिवतिर्वातकाव्यनामभाक्।। [15]

उपर्युक्त परिभाषाओं से तात्पर्य यह है कि शब्द और अर्थ के सहभाव का अत्यधिक महत्व है। रससिद्धान्त के अनुसार भी शब्द और अर्थ का साहित्य ही काव्य की कृति है। शब्द और अर्थ का सहभाव काव्य निमित माना गया है।

इस जगत में होने वाले अनेक चमत्कारों को देखकर मानव के हृदय में जो कल्पनाएँ तरंगित होती है उनको मनोरम शब्दों में अभिव्यक्त करना काव्य का ही कार्य है। [16] संस्कृत साहित्य अनके शताब्दियों से लिखा जाता रहा है, यह अनके रूपों में उपलब्ध होता है –

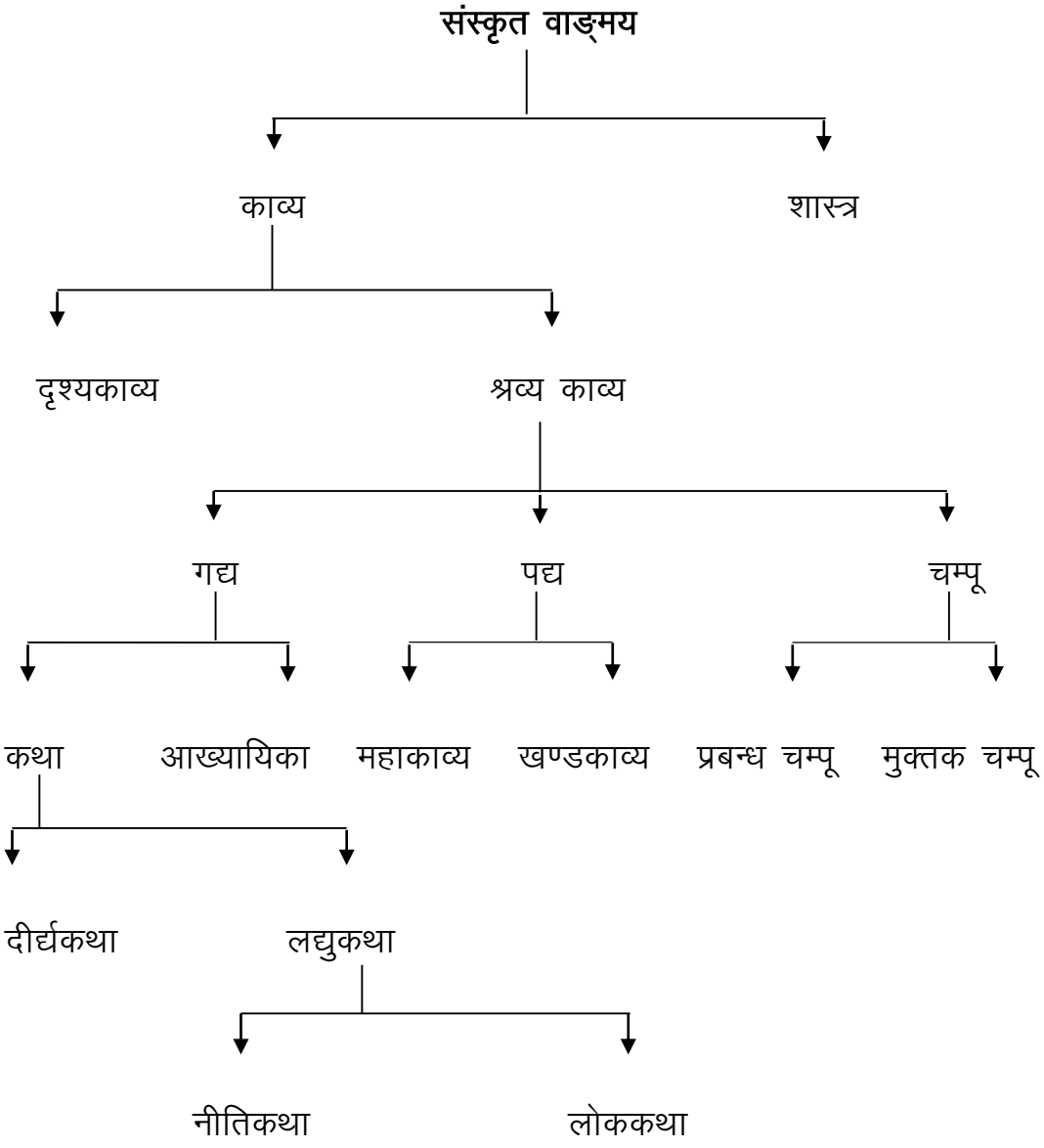

संस्कृत काव्य–साहित्य को मुख्य रूप से दो भागों में विभाजित किया गया है (i) दृश्यकाव्य वह होता है जिसका अभिनय किया जाए, जो नेत्रों का सहारा लेकर

हद्य को आनन्दित करे। (ii) श्रव्य काव्य में केवल श्रवण ही मुख्य है वह कानों के सहारे रसिक के चित को आनन्दित करता है।

श्रव्य काव्य के तीन उपभेद किए गए हैं। (i) पद्यकाव्य वह होता है जो छन्दोबद्ध लिखा गया होता है (ii) छन्दोविहीन वाक्यों की रचना जिसमें होती है, वह गद्यकाव्य कहलाता है (iii) गद्य–पद्य के सम्मिश्रण को चम्पू कहा गया है। गद्य–पद्य काव्य के पुनः उपभेद किए है इन सब विद्याओं में सबसे महत्वपूर्ण जो विद्या मानी जाती रही है –

महाकाव्य विद्या –

भारतीय परम्परानुसार ''महाकाव्य'' प्रबन्ध काव्य का मुख्य रूप है एवं काव्य के विविध रूपों में महाकाव्य का स्थान सर्वोपरि है। महाकाव्य की कथावस्तु महान होती है, एवं उसमें महान चरित्रों की अवधारणा के साथ–साथ उद्देश्य भी महान होता है। महाकाव्यकार सम्पूर्ण युग को वाणी प्रदान करता है, महाकाव्य व्यक्ति विशेष से सम्बन्धित न होकर बाह्य जगत से सम्बन्धित होता है और सामाजिक जीवन के विविध अंगों पर प्रकाश डालता है उसमें जातीय जीवन का चित्रांकन रहता है। महाकाव्य का विषय एवं उद्देश्य महान होता है।

महाकाव्य के लक्षण –

महाकाव्य के स्वरूप का विवेचन संस्कृत के अनेक आचार्यो ने अपने लक्षण ग्रन्थों में किया है। इसके मुख्य आचार्य भरत, वेदव्यास (अग्निपुराणकार) भामह, दण्डी, वामन, रूद्रट, आनन्दवर्धन, कुन्तक, मम्मट, हेमचन्द्र आचार्य, विद्यानाथ, वागभट्टप्रथम, वागभट्टद्वितीय, विश्वनाथ और पण्डित जगन्नाथ है।

1. **भरत तथा उनका काव्य लक्षण** –

महामुनि भरत ने अपने नाटयशास्त्र में महाकाव्य के लक्षणों का विवेचन सर्वप्रथम प्रस्तुत किया है।

मृदुललितपदाढ्यं गूढ़ शब्दार्थहीनं

जनपदसुखबोधम् युक्तिमन्नृत्ययोग्यम्।

बहुकृतरसमार्ग सन्धिसंधान युक्तम्,

स भवति शुभकाव्य नाटक प्रेक्षकाणाम्''।। भ. ना. 16। 1। 8।

अर्थात वही काव्य शुभ काव्य है जो मृदु तथा ललित पक्ष पदों से युक्त हों। गूढ़ शब्द एवं गूढ़ार्थ रहित हों सामान्य जनता के लिए बोधगम्य हो। युक्तियुक्त तथा नृत्य करने योग्य हों, रसात्मक हो तथा सन्धियों का समाहार किया गया हों।

2. अग्निपुराणकार वेदव्यास –

वेदव्यास ने अपने महाकाव्य ''अग्निपुराण'' में काव्य–लक्षणों का विस्तृत विवेचन प्रस्तुत किया है–

सर्गबन्धों महाकाव्यमारब्धं संस्कृतेन यत्।

तादात्म्यमजह तत्र तत्समं नातिद्रुष्यति।

इतिहास कथोद्भूतम् इतरद्धा सदाश्रयम्।

मन्त्रदूत प्रयाणानि नियतं नाति विस्तरम्।

शक्वर्याऽति जगत्याऽति शक्वर्या त्रिष्ठभा तथा।

पुष्पिताग्रादिभिर्वकूत्राभिजनैश्चारूभिः समैः।

युक्ता तु भिन्नवृत्तान्तानाति संक्षिप्त सर्गकम्।

अतिशक्वरिकाष्टभ्यामेक संकीर्णकैः परः।

मात्रयाऽत्यपरः सर्गः प्राशस्त्येषु च पश्चिमः।

कल्पोऽति निन्दितः तस्मिन्विशेषा नादरः सताम्।

नगरार्णवशैलर्तुचन्द्रार्काश्रम पादपैः।

उद्यानसलिलक्रीड़ा मधुपान रतोत्सवैः।

दूती वचन विन्यासैरसती चरिताद्भुतैः।

तमसा मरूताडप्यन्यैर्विभावैरति निर्भरः।

सर्वरीति रसैः स्पृष्टं पुष्टं गुण विभूषणैः।

अतएव महाकाव्यं तत्कर्ता च महाकविः।

वाग्वैदग्ध प्रधानेऽति रस एवात्र जीवितम्।

पृथक् प्रत्यनं निर्वर्त्य वाग्विक्रमणिरसाद्वपुः।

चर्तुवर्गफलं विश्वव्याख्यातां नायकाख्यया। 37/24-34 पृ.स. 61

वेदव्यास के अनुसार महाकाव्य सर्गबद्ध होना चाहिए। विशुद्ध संस्कृत भाषा प्रयुंक्त करना चाहिए। महाकाव्य का कथानक ऐतिहासिक अथवा किसी महापुरूष के जीवन से सम्बन्धित होना चाहिए। सर्ग न तो लघु हो तथा न अत्यन्त विस्तृत ही हों। अतिशक्वरी, शक्वरी जगती, त्रिष्टुभ, पुष्पिताग्रादि छन्दों का प्रयोग किया जाना चाहिए।

नगर, वन, पर्वत, चन्द्र, सूर्य, आश्रम, पादप, उद्यान, सलिलक्रीड़ा, मधुपान, रतोत्सव दूती का विस्तार पूर्वक वर्णन किया जाना चाहिए। महाकाव्य में रसयोजना होना भी अनिवार्य है। रीतियों एवं वृत्तियों आदि का समुचित प्रयोग किया जाना चाहिए। वाग्वैदग्धता से युक्त होने पर भी रस की प्रधानता होनी चाहिए। (नायक को) धर्म, अर्थ काम तथा मोक्ष (चतुवर्ग) की प्राप्ति को समुचित रूप से दिखलाना चाहिए।

3. भामह और काव्य लक्षण –

सर्गबन्धो महाकाव्यं महतां च महच्च तत्

अग्राम्यशब्दमर्थ्य च सालंकारं सदाश्रयम्।।

मन्त्रदूत प्रयाणानिनायकाभ्युदयैश्च यत्।

पचभिः सन्धिर्भियुक्तं नातिव्याख्येयमृद्धिमत्।।

चतुवर्गाभिधानेपि भूयसार्थोपदेशकृत्।

युक्तं लोकस्वभावेन रसैश्च सकलैः पृथक्।।

नायकं प्रागुपन्यस्य वशवीर्यश्रुतादिभिः।

न तस्यैव वधं ब्रूयादन्योत्कर्षाभिधित्सया।।

यदि काव्य शरीरस्य न स व्यापितयेष्यते।

न चाभ्युदयभाक्तस्य न मुद्यादौ ग्रहणस्तवौ।। परि. 1, 19-23

अर्थात् आचार्य भामह ने अपने महाकाव्य ''काव्यालंकार'' में कहा है– महाकाव्य एक सर्गबद्ध रचना होती है। उसका आकार बड़ा होना चाहिए तथा उसमें महान चरित्रों को स्थान दिया जाता है। अलंकारों से युक्त शिष्ट भाषा का प्रयोग होता है। उसमें राजदरबार, दूत, आक्रमण, युद्ध, सन्धि आदि का विस्तारपूर्वक वर्णन किया जाता है। उसमें नायक का अभ्युदय होता है तथा अन्य किसी पात्र का उत्कर्ष दिखाने की इच्छा से नायक का वध नहीं दिखाया जाता है। इसमें नाटक की सम्पूर्ण सन्धियाँ रहनी चाहिए। धर्म, अर्थ, काम, मोक्षादि चतुवर्ग फल प्राप्ति का उसमें स्थान दिया जाना चाहिए।

4. दण्डी –

महाकवि दण्डी ने अपने महाकाव्य ''काव्यादर्श'' में महाकाव्य के स्वरूप विषयक विशेष नवीनता नहीं है। इन्होनें भामह द्वारा निर्देशित लक्षणों को ही अपनी परिभाषा में समावेश किया है, किन्तु इन्होनें महाकाव्य के बहिरंग सम्बन्धी नियमों पर भी बल दिया है।

सर्गबन्धो महाकाव्यमुच्यते तस्य लक्षणम्।

आशीर्नमस्क्रिया–वस्तुनिर्देशो वापि तन्मुखाम्।।

इतिहास–कथोद्भतभितरद्वा सदाश्रयम्।

चतुर्वर्गफलायतं चतुरोदात्त–नायकम्।।

नगरार्णव–शैलर्तु–चन्द्रार्कोदय वर्णनैः।

उद्यान सलिल क्रीडामधुपानरतोत्सवैः।।

विप्रलम्भैर्विवाहैश्च कुमारोद्रय वर्णनः।

मन्त्रदूत प्रयाणानि नायकाश्युदयैरपि ।।

अलंकृतमसंक्षिप्तं रसभाव निरन्तरम्।

सर्गेरनति विस्तीर्णः श्राव्यवृत्त सुसन्धिभिः।।

सर्वत्र भिन्न–वृत्तान्तैरूपेतं लोक रंजनम।

काव्यं कलपान्तरस्थाति जायते सद्लंकृति

न्यूनमप्यत्र यैः केश्चिंदगैः काव्यं न दुष्यति।

यद्युपात्तेषुसम्पतिराराधयति तद् विदः।। (काव्या. 1/14-20)

5. वामन –

''काव्यांलकार'' रचयिता आचार्य वामन ने महाकाव्य को अलंकारो से युक्त होना अनिवार्य बतलाया है। उनके मतानुसार गुण तथा अलंकारो से युक्त काव्य सौन्दर्य का कारण माना गया है।

(i) **सदोष गुणालंकारहानादानाभ्याम्** (काव्यालंकारसूत्र – 1/1/3)

(ii) **काव्यं ग्राह्यमलंकारात्** (काव्यालंकारसूत्र – 1/1/1)

6. आनन्दवर्धन –

ध्वन्यालोककार आनन्दवर्धन ने ध्वनि को ही काव्य के लिए आवश्यक स्वीकार किया है।

शब्दार्थ शरीरन्तावव्द्काव्यम (ध्वन्यालोक – 5)

7. कुन्तक –

कुन्तक ने शब्द तथा अर्थ को ही नहीं अपितु उक्तिवैचित्रय वाले, शब्द और अर्थ को ही महाकाव्य माना है।

शब्दार्थो सहितौ वक्रकविव्यापारशालिनि।

बन्धे व्यस्थितो काव्यं तद्विदाहादकारिणी।। वक्रोक्तिजीवितम् 1/7

8. मम्मट –

काव्यप्रकाशकार मम्मट के अनुसार दोषरहित गुण एवं अलंकार सहित शब्दार्थ को जिसमें कहीं–कहीं अलंकार न भी हो उसे महाकाव्य कहा गया है।

तददोषौ शब्दार्थो सगुणावनलंकृति पुनः क्वापि। काव्यप्रकाश 1/1

9. हेमचन्द्र आचार्य –

''काव्यानुशासन'' के प्रथम अध्याय में महाकवि ने महाकाव्य विषयक व्याख्या दी हैं, दोषरहित, गुणयुक्त, सालंकार शब्द और अर्थ ही महाकाव्य है। आपके मतानुसार ग्राम्य भाषाओं में भी महाकाव्य की रचना की जा सकती है।

अदौषौ सगुणौ सालंकारौ च शब्दार्थो काव्यम्। काव्यानुशासन, 1/6/8/9

10. विद्यानाथ –

महाकवि विद्यानाथ ने अपने ग्रन्थ ''प्रतापरूद्रयशोभूषणे'' में आचार्य हेमचन्द्र के समान ही कुछ परिवर्तित रूप से कहा है। इनके मतानुसार भी गुणालंकार सहित दोष वर्जित शब्दार्थ को ही काव्य कहा गया है।

गुणालंकार सहितौ शब्दाथौ दोषवर्जितो काव्यम्।

11. विश्वनाथ –

साहित्यदर्पण–कार, कविराज विश्वनाथ ने अपने ग्रन्थ में महाकाव्य के स्वरूप को अत्यन्त व्यापक एवं स्पष्ट किया है। इसका विस्तृत उल्लेख इस खण्ड के तृतीय अध्याय में किया गया है। [16]

महाकाव्य के उद्‌भव एवं विकास –

महाकाव्यों का उदय उस समय हुआ होगा जबकि मानव पूर्ण रूप से सभ्य भी नहीं हुआ होगा । जैसे–जैसे मानव अर्धविकसित अवस्था में विकास एवं सभ्यता की और अग्रसर हुआ वैसे–वैसे ही महाकाव्य का विकास हुआ होगा। प्रारम्भिक

महाकाव्यों की रचना का आधार भी वीर गाथाएँ ही रही है। प्रत्येक देशों में वहाँ की सामाजिक स्थिति के अनुसार अलग–अलग समय पर वीर युग का उदय हुआ एवं उस वीर युग में ही वहाँ पर महाकाव्यों का बीजारोपण एवं विकास हुआ।

वीर गाथाओं में वीरों की प्रशंसा के गीत हुआ करते थे। विद्वानों के मतानुसार भारतवर्ष मे प्राचीनकाल से ही वीरों की स्तुतियाँ की जाती रही है। ऋग्वेद आदि ग्रन्थों में भी इन्द्र एवं अन्य शक्तिशाली देवों (वीरों) के कार्यो की प्रशंसा के गीत गाये जाते हैं जिनमें भारतीय महाकाव्य के मूल प्रतिपाद्य विषय की झलक देखी जा सकती है। [17]

अथर्ववेद में भी कुछ सूक्त स्तुतिविषयक हैं जिनमें राजाओं के वीरोदारतादि गुणों का रोचक कथन हैं, कुछ विद्वानों के मतानुसार ये सूक्त भी वीररस प्रधान काव्य के जनक ही है। इस प्रकार हम कह सकते है कि महाकाव्य के स्वरूप विकास आदि की खोज हमें रामायण एवं महाभारत के वीरगीतों में ही नहीं करनी चाहिए अपितु वेदों में ही उपलब्ध हो जाती है। क्योंकि भारतवर्ष में प्राचीनकाल से ही महाकाव्यों की रचना हुआ करती थी। मैक्समूलर के मतानुसार भारत तथा अन्य आर्य राष्ट्रों में भी देवताओं तथा वीरों की प्रशंसा में गाये जाने वाले गीत अतिप्राचीन काल से ही प्रसिद्ध थे। अतः महाकाव्यों के रूप की खोज हमें वैदिक स्त्रोतों आदि में करनी चाहिए, केवल रामायण, महाभारत से ही नहीं। क्योंकि स्तुति स्त्रोतों में भी कुछ स्त्रोत ऐसे है जिन्हें महाकाव्य कहा जा सकता है। [18]

यह निःसन्दिग्ध तथ्य है कि काव्य निर्माण की पूर्ण प्रेरणा कवियों को रामायण तथा महाभारत से प्राप्त हुई। संस्कृत काव्य के विकास में वेद से भी परम्परया प्रेरणाप्राप्ति का संकेत मिलता है। वेदों में देवस्तुति के अतिरिक्त तत्कालीन दानशील उदार राजाओं की प्रशस्तियाँ भी हैं, जिन्हें 'नाराशंसी' कहते हैं। ब्राह्मण–ग्रन्थों में प्राचीन यशस्वी राजाओं के जीवन की विशिष्ट घटना का उल्लेख मिलता है।

पाश्चात्य काव्यशास्त्री महाकाव्य के दो प्रकार मानते है (1) विकसित महाकाव्य (2) कलापूर्ण महाकाव्य। विकसित महाकाव्य वह है जो अनेक शताब्दियों में अनेक कवियों के प्रयास से विकसित होकर अपने वर्तमान रूप में आया हैः जैसे ग्रीक

महाकवि होमर का 'इलियड' और ओडेसी नामक युगल महाकाव्य। इनका वर्तमान परिष्कृत रूप होमर की प्रतिभा का परिणाम है, परन्तु गाथाचक्रों के रूप में वे प्राचीन काल से चारणों द्वारा गाये जाते थे। 'कलापूर्ण महाकाव्य' वह है जो एक ही कवि की कलात्मक रचना है और उसमें प्रथम श्रेणी के सभी काव्यगुण विद्यमान रहते हैं ब्राजील कवि का लैटिन भाषा में विरचित 'इनीड' कलापूर्ण काव्यों में प्रमुख है। संस्कृ –त में रामायण प्रथम विकसित महाकाव्य की श्रेणी में तथा रघुवंश शिशुपालवध आदि द्वितीय कलापूर्ण महाकाव्य की श्रेणी में आते है। [19]

कालिदास–पूर्व महाकाव्य–परम्परा –

वैदिक कविता अपने सहज रूप से युगों तक मन्द एवं सरल गति से प्रवाहित हुई। तत्पश्चात्, आर्षकाव्य रामायण और महाभारत में, वीररसोचित आख्यानों का आश्रय ग्रहण करके उसकी धारा में एक तीव्रता आयी और वही धारा कालिदास, अश्वद्योष आदि में कुछ इस मात्रा में उभरकर प्रवाहित हुई कि उसने एक महानदी का रूप ग्रहण कर लिया। आर्षकाव्यों के बाद और कालिदास के पूर्व भी महाकाव्य–परम्परा के संकेत मिलते है। आर्षकाव्यों के बाद कालिदास–पूर्व युग की महाकाव्य–रचनाओं के अनुसन्धान के सन्दर्भ में, व्याकरण शास्त्र के पाणिनी वररूचि (कात्यायन) और पतंजलि का उल्लेख किया गया है।

पाणिनी –

आठ अध्यायों में विभक्त 'अष्टाध्यायी' या 'शब्दानुशासन' के कर्ता पाणिनि ने व्याकरण–शास्त्र का निर्माण किया। इनके पूर्व भी व्याकरण–शास्त्रकारों की एक परम्परा थी। किन्तु पाणिनी के कवित्व पक्ष की पुष्टि राजशेखर का यह पद्य सूक्ति–ग्रन्थों में प्राप्त होता है –

नमः पाणिनये तस्मै यस्मादाविरभूदिह।

आदौ व्याकरणं काव्यमनु जाम्बवतीजयम्।।

कहीं पर 'जाम्बवतीजय' नाम मिलता है तो कहीं इस रचना का 'पातालविजय' नाम मिलता है। आचार्य बलदेव उपाध्याय जी मुक्तकण्ठ से संस्कृत साहित्य के

सर्वप्रथम महाकाव्य लिखने का श्रेय पाणिनि को देते है। 'सदुक्तिकर्णामृत' में उद्धृत कविप्रशंसापरक एक पद्य में अनेक कवियों के साथ 'दाक्षीपुत्र' (पाणिनि) भी उल्लेखित है –

सुबन्धौ भक्तिर्नः क इह रघुकारे न रमते।

धृतिर्दाक्षीपुत्रे हरति हरिचन्द्रोऽपि हृदयम्।।

विशुद्धोक्तिः शूरः प्रकृतिमधुरा भारविगिर–

स्तथाप्यन्तर्मोदं कमपि भवभूतिर्वितनुते।।

'जाम्बवतीजय' का नाम 'पातालविजय' भी मिलता है। रूद्रट के टीकाकार नामिसाधु नें महाकवि लोग भी अपशब्दों का प्रयोग कर देते हैं। इसे सिद्ध करने के लिए पाणिनि के 'पातालविजय' संध्यावधू ग्रहय करेण भानुः, को उद्धृत किया है, जिसमें 'ग्रह्य' पाणिनि–व्याकरण के अनुसार अपशब्द (अशुद्ध) है। रायमुकुट (अमर कोश के एक टीकाकार) ने इकारान्त 'पृषन्ति' के उदाहरण के लिए 'जाम्बवतीविजय' से यह पंक्ति उद्धृत की है –

पयः पृषन्तिभिः स्पृष्टा वान्ति वाताः शनैः शनैः।

'जाम्बवतीविजय' और 'पातालविजय' वस्तुतः दोनों ही नाम एक ही कथावस्तु को सूचित करते है ; क्योंकि जाम्बवती के लाने के उद्देश्य से श्रीकृष्ण ने पाताल पहुँचकर उस पर विजय की थी। एक पद्य शरणदेव की 'दुर्घटवृति' में उद्धृत है, जिसे 'पाताल–विजय ' के 18वें सर्ग से उद्धृत बताया गया है।

त्वया सहार्जितं यच्च–यच्च सख्यं पुरातनम्।

चिराय चेतसि पुरस्तरूणीकृतमद्य में।।

(जाम्बवतीविजये पाणिनिनोक्तं ..... इत्यष्टादशेसर्गे)

इन उद्धरणों से ज्ञात होता है कि पाणिनि के पास अद्‌भुत कवित्व था, वे एक ओर सहज सरल पद्य भी निर्माण करते थे तो दूसरी ओर अलंकृत शैली की रचना में भी निपुण थे।

वररूचि –

पाणिनि के बाद, कालिदास–पूर्व महाकाव्य–परम्परा में लिखने वाले वररूचि का नाम लिया जााता है। संस्कृत वाड्.मय के इतिहास में वररूचि के नाम से कई ग्रन्थों के नाम मिलते है और कुछ सूक्ति–संग्रहो जैसे 'सुभाषितावली' 'शार्ङ्.गधरपद्धति' और 'सदुक्तिकर्णामृत' आदि मे भी अनेक पद्यों के रचयिता के रूप में उद्धृत है। वररूचि के विषय में जो प्रश्नचिह्न लगा है उसका अब तक कोई समाधान नहीं निकला है। पाणिनीय व्याकरण पर वार्तिक लिखने वाले कात्यायन को तथा प्राकृत–प्रकाश नाम के प्राकृत–व्याकरण के रचयिता को भी वररूचि नाम से जाना जाता है। यहाँ तक, पालिभाषा का 'कच्चायन' व्याकरण भी कात्यायन द्वारा निर्मित होने से वररूचि से जुड़ जाता है। विक्रमादित्य के नवरत्नों में से एक वररूचि भी थे। तारानाथ ने अपने 'भारत में बौद्ध धर्म का इतिहास' में ब्राह्मण–वररूचि या आचार्य–वररूचि को उद्धत किया है। वररूचि के नाम से संस्कृत में अनेक ग्रन्थ मिलते है।

पतञ्जलि –

महाभाष्यकार पतञ्जलि ने प्रसंगतः उदारहण के रूप में अनेक श्लोक या श्लोकखण्ड उद्धृत किये हैं। उन्होंने वासवदता, सुमनोत्तरा और भैमरथी नाम की आख्यायिकाओं का निर्देश किया है। वाररूचिकाव्य के अतिरिक्त उन्होंने 'कंसवध' और 'बलिबन्धन' नाटक भी निर्दिष्ट किये है, इससे सिद्ध होता है कि ईस्वी पूर्व की कुछ शताब्दियों में अनेक संस्कृत काव्य तथा नाटक निर्मित हुए थे और कविता की धारा अजस्त्र प्रवाहित थी।

जहाँ तक संस्कृत महाकाव्यों की विकास परम्परा का सम्बन्ध है, कालिदास और अश्वद्यघोष के समय पूर्वापरता आज तक विवादास्पद है। विद्वानों का एक समूह अश्वद्यघोष को प्रथम कवि मानकर बुद्धचरित्र को प्रथम महाकाव्य स्वीकार करता है तो

दूसरा अधिकांश विद्वत्समुदाय महाकवि कालिदास को प्रथम महाकवि और कुमार सम्भव को प्रथम महाकाव्य स्वीकार करता है।

प्राचीन भारत के इतिहास में वह युग विदेशी शकों के आक्रमणों से भारतीय जनता धर्म एवं संस्कृति के संरक्षक, मालव संवत् के संस्थापक और शकारि मालव गणाध्यक्ष विक्रमादित्य का था। उसी युग में भारतीय संस्कृति के उपासक राष्ट्रीय महाकवि कालिदास की भारती ने अलौकिक चमत्कार दिखाकर मानव मन को मोह लिया। इस प्रकार कालिदास अश्वद्योष के पूर्ववर्ती सिद्ध होते है। [20]

महाकाव्यों का विभाजन –

महाकाव्यों को मुख्यरूप से निम्नलिखित कोटियों में विभाजित किया जा सकता है।

(1) आर्ष काव्य –

आर्ष का अर्थ है– ऋषि के द्वारा रचा हुआ। ''रामायण और महाभारत'' इन दोनों महाकाव्यों के प्रणेता महर्षि वाल्मीकि और वेद व्यास है इसीलिए इन दोनों महाकाव्यों को आर्ष महाकाव्य कहा गया है।

(2) अलंकृत महाकाव्य या विदग्ध महाकाव्य –

अलंकार का अर्थ है परिपूर्ण बनाना तथा सजाना। अभिव्यक्ति परिपूर्णता के आधार पर महाकाव्यों को अलंकृत महाकाव्य कहा जा सकता है। विदग्ध का व्याकरणपरक अर्थ है– सिका हुआ या भुना हुआ। जैसे किसी खाद्य वस्तु को और अधिक स्वादिष्ट बनाने के लिए सेका या भुना जाता है उसी प्रकार विदग्ध महाकाव्यों में आर्ष महाकाव्यों की अपेक्षा शैली का परिष्कार या निखार विषयवस्तु को अधिक आकर्षक तथा आस्वाद्य बनाने के लिए लाया जाता है। विदग्ध या अलंकृत महाकाव्यों के स्त्रोत हैं– रामायण, महाभारत, पुराण तथा गुणाढ्य विरचित वृहत्कथा। संस्कृत साहित्य में रद्युवंश, कुमारसभंव किरातार्जुनीय, शिशुपालवद्य, नैषध रचित, धर्मशर्माभ्युदय आदि विदग्ध महाकाव्य कहे जा सकते है।

(3) **पौराणिक महाकाव्य –**

पौराणिक महाकाव्यों में पुराणों व पौराणिक कथानकों का आश्रय लिया जाता है। कतिपय महाकाव्यों में पौराणिक विषयवस्तु को पौराणिक शैली में ही प्रस्तुत किया गया, जैसे– क्षेमेन्द्र की रामायण मंजरी, भारतमंजरी, दशावतार चरितः तथा जयरथ का हरचरित–चिंतामणि इस प्रकार के महाकाव्य है।

(4) ऐतिहासिक तथा चरित्र प्रधान महाकाव्य –

ये महाकाव्य ऐतिहासिक प्रंसगों या चरित्रों (राजाओं, ऋषियों, संतो आदि) को आधार बनाकर रचे गये है– नवसाहसांकचरित, राजतंरगिणी, विक्रमांकदेवचरित आदि इनके उदाहरण है। ऐतिहासिक महाकाव्यों का विस्तृत विवरण इस खण्ड के तृतीय अध्याय में किया गया है।

(5) शास्त्रकाव्य –

शास्त्र विशेष के ज्ञान के लिए इन काव्यों की रचना की गई थी। भट्टिकाव्य के द्वारा व्याकरण का ज्ञान कराने के लिए लिखे गए काव्यों या महाकाव्यों की परम्परा प्रचलित हुई। इसी प्रकार दामोदर की कुट्टनीमत कुट्टनियों के चरित्र का ज्ञान कराने के प्रयोजन से लिखा गया है।

यह वर्गीकरण साहित्यिक दृष्टि से प्रधान गुणों के आधार पर किया गया है। आर्ष महाकाव्यों में भी शैली या विदग्धता के दर्शन होते हैं इसी प्रकार अलंकृत या विदग्ध महाकाव्यों में आर्ष महाकाव्यों के गुण जीवन दर्शन, शैली की प्रासादिकता या सहजता आदि मिलते है। परमार्थतः महाकाव्य की विकास यात्रा पर दृष्टिपात करें तो यह ज्ञात होगा कि विभिन्न धाराएँ एक दूसरे से संगम बनाती रही है।

विषय–वस्तु या धार्मिक दृष्टि से वैदिक परम्परा के महाकाव्य तथा जैन महाकाव्य और बौद्ध महाकाव्य– ये तीन श्रेणियां भी संस्कृत महाकाव्यों में कही जा सकती है।

प्रमुख महाकाव्य

1. रामायण –

युगों तक भारतीय जीवन और साहित्य को प्रभावित एवं प्रेरित करने वाले 'उपजीव्यकाव्य' रामायण कुछ प्रक्षिप्त अंशो को छोड़कर जिस एक कवि की लेखनी से लिखा गया, उसके रचियता थे महर्षि वाल्मीकी। वाल्मीकी को 'आदिकवि' तथा रामायण को 'आदिकाव्यः भी कहा जाता है। इसे एक 'विकसनशील महाकाव्य' भी माना गया है। साहित्य दर्पणकार विश्वनाथ ने इसे आर्षकाव्य' कहा है और महाकाव्य की कोटि में रखा है।

वाल्मीकी ने अपने काव्य के इस भव्य मन्दिर में राम के लिए उदात्त व्यक्तित्व को प्रतिष्ठित किया, वह एक सम्पूर्ण मानव का आदर्श बन गया। 'अयोध्याकाण्ड' के प्रथम सर्ग में निम्न श्लोक उद्धृत किया गया है।

स च नित्यं प्रसन्नात्या मूदुपूर्वञ्च भाषते।

उच्यमानोडपि पुरूषं नोत्तरं प्रतिपघते।।

कदाचिदुपकारेण कृतेनैकेन तुष्यति।

न स्मरत्यपकाराणां शतमप्यात्मवत्तया।। (वा. रा. अयो. का. 9/90 - 99)

रामायण ने वैदिक संस्कृत और लौकिक संस्कृत के साहित्यों के बीच एक सेतु का कार्य किया हैा वाल्मीकि का रामायण एक संवेदनशील लेखनी की उपज का महाकाव्य है।

2. महाभारत –

एक विकसनशील महाकाव्य के रूप में रामायण की भाँति ही महाभारत को माना जाता है। अठारह पर्वो में विभक्त यह महाग्रन्थ भारतीय साहित्य का सुमेरू या 'गौरीशंकर शिखर' का महत्व रखता है। महाभारत है भरत के वंश में उत्पन्न क्षत्रियों के परस्पर युद्ध की कथा। इसके नामकरण का स्वयं आरम्भ मे एक कारण निर्दिष्ट किया गया है – महत्वाद् भारवत्त्वाच्च महाभारतमुच्यते। यह महान है तथा भारवान्

भी है। इसके विकास के तीन स्वरूप कहे जाते हैं – जय, भारत और महाभारत। महाभारत एक ऐतिहासिक ग्रन्थ तो है ही, वह 'पञ्चम वेद' भी कहलाता है। इसके पूना संस्करण के सम्पादक डॉ. सुकनकर के अनुसार ''भृगुवंशी ब्राह्मणों द्वारा किये गये सम्पादनों का ही फल महाभारत का वर्तमान वृद्धिगत रूप है।''

महाभारत के वर्तमान रूप का समय ईसा पूर्व पाँचवी शताब्दी से कुछ पहले का समझा जाता है। इसके अठारह पर्वो में कौरव और पाण्डवों के युद्ध की कथा के साथ नाना उपाख्यान तो है ही, 'श्री मद्भगवद्गीता' इसी का एक अंश है। इसके रचयिता कृष्ण द्वैपायन वेदव्यास स्वयं इस ग्रन्थ के पात्रों से सम्बद्ध थे। इनके सम्बन्ध में यह कथन सत्य है– **यदिहास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न तत्क्वचित्।**

3. कुमारसम्भव –

रामायण और महाभारत जैसे आर्ष और विकसनशील महाकाव्यों की रचना के पश्चात् संस्कृत साहित्य के आकाश में अनेक कवि नक्षत्रों ने अपनी प्रभा प्रकट की, पर नक्षत्र–ताराग्रहसङ्कुला होते हुए भी कालिदास–चन्द्र के द्वारा ही भारतीय–साहित्य की परम्परा सचमुच ज्योतिष्मती कही जा सकती है। माधुर्य और प्रसाद का परम परिपाक, भाव की गम्भीरता तथा रसनिर्झरिणी का अमन्द प्रवाह, पदों की स्निग्धता और वैदिक काव्य परम्परा की महनीयता के साथ–साथ आर्ष काव्य की जीवन दृष्टि और गौरव–इन सबका ललित सन्निवेश कालिदास की कविता में हुआ है।

कुमारसम्भव सत्रह सर्गो का महाकाव्य है। परम्परागत मान्यता है कि कालिदास ने आठ सर्गो तक ही इस महाकाव्य की रचना की थी। अवशिष्ट ६ (9) किसी परवर्ती कवि के द्वारा रचे हुए है। वल्लभदेव, मल्लिनाथ आदि प्राचीन विश्रुत टीकाकारों ने आठ सर्गो तक ही इस महाकाव्य पर अपनी टीकाएं लिखी है तथा काव्यशास्त्र के प्राचीन ग्रन्थों में भी कुमारसम्भव से जितने उद्धरण मिलते है, वे आठवें सर्ग तक के ही है।

कुमारसम्भव का अर्थ है कुमार (कार्तिकेय) का जन्म पार्वती के जन्म से लेकर शिव से उसके विवाह तक का कथानक ही आठवें सर्ग तक वर्णित है, शिव और

पार्वती के अटूट प्रेम और मांगलिक दाम्पत्य में कुमार के जन्म की सम्भावना निदर्शित है।

महाकवि ने कुमारसम्भव में पार्वती के रूप का वर्णन करते हुए लिखा है –

सर्वोपमाद्रव्यसमुच्येन यथाप्रदेशं विनिवेशितेन।

सा निर्मिता विश्वसृजा प्रयत्नादेकस्थसौन्दर्यदिदृक्षयेव।। कुमार. 9.(49)

कुमारसम्भव की सर्वातिशायिनी विलक्षणता है– प्रणय की गम्भीर गहनता जिसमें रूप पर्यवसित हो जाता है, जिसमें वासना दग्ध हो जाती है तब जो नवनीत बचता है वह सामान्य होकर भी सामान्य नहीं होता, अपितु युग–युग तक विशुद्ध, पवित्रता और मंगल के प्रतीक रूप में स्थायी रहता है। विश्ववन्द्य कवि रवीन्द्र के शब्दों मे कालिदास ने अनाहूत प्रेम के उस उन्मत्त सौन्दर्य की उपेक्षा नहीं की है, उसे तरूण लावण्य के समुज्ज्वल रंगो से चित्रित किया है। किन्तु इसी उज्ज्वलता में उन्होंने अपना काव्य समाप्त नहीं किया। महाभारत के सारे कर्मो का अन्त जैसे महाप्रस्थान में हुआ, वैसे ही 'कुमारसम्भव' के सारे प्रेम का वेग मंगल–मिलन मे समाप्त हुआ है।

4. रघुवंश महाकाव्य –

महाकवि कालिदास का रघुवंश "संस्कृत महाकाव्यों का मुकुटमणि हैं।'' कुमार सम्भव की तुलना में इसका फलक विस्तीर्णतर है। अनेक चरित्रों और नाना घटना प्रसंगों की वज्रसमुत्कीर्ण मणियों को कवि ने इसे एक सूत्र में पिरो दिया है और उनके माध्यम से राष्ट्र की गौरवशाली परम्पराओं, आस्थाओं और संस्कृति की महनीय उपलब्धियों की तथा समसामयिक सामन्तीय समाज के अधः पतन की महागाथा उज्ज्वल पदावली में प्रस्तुत कर दी है।

19 सर्गो युक्त इस महाकाव्य में रघुवंशी राजाओं का जीवन–चरित्र वर्णित है। इसके अन्तर्गत वसिष्ठ ऋषि के आश्रम में गमन, नन्दिनी का वर–प्रदान, रघु–राज्याभिषेक, रघु–दिग्विजय, अजस्वयंवराभिगमन इन्दुमतीस्वयंवर–वर्णन, अज इन्दुमती पाणिग्रहण, अज–विलाप, मृगया–वर्णन रामावतार, सीता–विवाह, रावण वध,

दण्डक वन से प्रत्यागमन, सीता–परित्याग, राम–स्वर्गारोहण, कुमुदवती–परिणय, अतिथि वर्णन, वंशानुक्रम अग्निवर्ण का श्रृंगार आदि का वर्णन है। अग्निवर्ण के विलासी जीवन का करूण अन्त दिखाकर काव्य का अन्त कर दिया गया है –

तस्यास्तथाविधनरेन्द्रविपत्तिशोका –

दुष्णर्विलोचनजलैः प्रथमाभितप्त।

निर्वापित कनककुम्भमुखोज्झितेन

वंशाभिषेक विधिना शिशिरेण गर्मः ।। रघु.।।19/56

महाकाव्य अश्वद्योष और बौद्ध काव्य–परम्परा –

संस्कृत साहित्य में महाकवि कालिदास भारतीय संस्कृति के समर्थक थे। उन्होंने अपनी रचनाओं के माध्यम से भारतीय धर्म, दर्शन और मान्यताओं का स्वरूप प्रस्तुत किया। उनकी इन विशेषताओं ने बौद्ध धर्मावलम्बी आचार्यो को भी प्रभावित किया। कालिदास के काव्यों से प्रेरित होकर बौद्धकवियों ने भी अपने धर्मप्रचार के लिए संस्कृत में काव्य रचना आवश्यक समझा, फलतः बौद्ध धर्म के आदि प्रवर्त्तक भगवान बुद्ध के उदात्त चरित को आधार मानकर संस्कृत में काव्य–रचना प्रारम्भ हुई। इस परम्परा का श्री गणेश बौद्धकवि अश्वद्योष ने किया।

बौद्ध–संस्कृत–काव्यकारों में द्वितीय शती ईस्वी के सुप्रसिद्ध बौद्ध दार्शनिक नागार्जुन का भी उल्लेखनीय स्थान है। इन्होंने 'सुहृल्लेख नामक सन्देश काव्य तथा 'युक्तिषष्टिका' एवम् 'शून्यतासप्तति' नामक पुरूषार्थ–काव्यों की रचना की। 'सुहृल्लेख' में नागार्जुन ने किसी राजा के पास बौद्ध–जीवन–दर्शन का सन्देश भेजा है। नागार्जुन के ही प्रधान शिष्य आर्यदेव ने 250 ई. के आसपास 'चतुःशतक' नामक काव्य में 400 कारिकाएं लिखकर नागार्जुन द्वारा प्रवर्तित शून्यवाद की परम्परा को विकसित किया।

अश्वद्योष के बाद बौद्ध–संस्कृत महाकाव्यों की परम्परा के उन्नायकों में महाकवि बुद्धद्योष का स्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। इन्होंने पांचवी शताब्दी में 'पद्यचूड़ामणि' नामक एक श्रेष्ठ महाकाव्य की रचना की। सातवीं शती में सौराष्ट्र में

प्रसूत शान्तिदेव में 'बोधिचर्यावतार' शिक्षा 'समुच्चय' एवम् सूत्र 'समुच्चय' नामक तीन ग्रन्थों की रचना की। महाराजा हर्षवर्धन ने 'सुप्रभातस्त्रोत' तथा अष्टमहाश्रीचेत्यस्तोत्र' की रचना की। ये दोनों स्तोत्र फ्रान्सीसी पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुके है। इसी क्रम में नवीं शताब्दी में महाराज देवपाल के आश्रय में वज्रदत्त नामक कवि ने 900 स्त्रग्धरा पद्यों में 'लोकेश्वरशतक' नामक काव्य की रचना की।

5. बुद्धचरितम् महाकाव्य –

बुद्धचरित महाकवि अश्वद्योष की कवित्वकीर्ति का आधार स्तम्भ है, किन्तु दुर्भाग्यवश यह महाकाव्य मूलरूप में अपूर्ण ही उपलब्ध है। 28 सर्गो में विरचित इस महाकाव्य के द्वितीय से लेकर त्रयोदश सर्ग तक तथा प्रथम एवम् चतुर्दश सर्ग के कुछ अंश ही मिलते है। इस महाकाव्य के शेष सर्ग उपलब्ध नहीं है। इस महाकाव्य के सम्पूर्ण सर्गो का चीनी तथा तिब्बती अनुवाद अवश्य उपलब्ध है।

महाकाव्य का आरम्भ बुद्ध के गर्भाधान से तथा बुद्धत्व–प्राप्ति में इसकी परिणति होती है। यह महाकाव्य भगवान बुद्ध के संघर्षमय सफल जीवन का ज्वलन्त, उज्ज्वल तथा मूर्त चित्रपट है। इसका चीनी भाषा में अनुवाद पांचवी शताब्दी के प्रारम्भ में धर्मरक्ष, धर्मक्षेत्र अथवा धर्माक्षर नामक किसी भारतीय विद्वान ने ही किया था तथा तिब्बती अनुवाद नवीं शताब्दी से पूर्ववर्ती नहीं है। इसकी कथा का रूप–विन्यास वात्मीकिकृत रामायण से मिलता–जुलता है।

बुद्धचरित 28 सर्गो में था जिसमें 14 सर्गो तक बुद्ध के जन्म से बुद्धत्व–प्राप्ति तक का वर्णन है। यह अंश अश्वद्योषकृत मूल संस्कृत सम्पूर्ण उपलब्ध है। केवल प्रथम सर्ग के प्रारम्भ सात श्लोक और चतुर्दश सर्ग के बत्तीस से एक सौ बारह तक (81 श्लोक) मूल में नहीं मिलते है। चौखम्बा संस्कृत सीरीज तथा चौखम्बा विद्याभवन की प्रेरणा से उन श्लोकों की रचना श्री रामचन्द्रदास ने की है। उन्हीं की प्रेरणा से इस अंश का अनुवाद भी किया गया है।

15 से 28 सर्गो की मूल संस्कृत प्रति भारत में बहुत दिनों से अनुपलब्ध है उसका अनुवाद तिब्बती भाषा में मिला था उसके आधार पर किसी चीनी विद्वान ने चीनी भाषा में अनुवाद किया तथा आक्सफोर्ट विश्वविद्यालय से संस्कृत अध्यापक

डाक्टर जॉन्सन ने उसे अंग्रेजी में लिखा। इसका अनुवाद श्री सूर्यानारायण चौधरी ने हिन्दी में किया, जिसको श्री रामचन्द्रदास ने संस्कृत पद्यमय काव्य में परिणत किया है। [21]

6. सौन्दरनन्द महाकाव्य –

सौन्दरनन्द महाकवि अश्वद्योष का द्वितीय महाकाव्य है। इसकी दो पाण्डुलिपियां नेपाल के राजकीय पुस्तकालय में संरक्षित हैं। इन्हीं के आधार पर हरप्रसाद शास्त्री ने बिब्लियोथेका इण्डिका क्रमांक 192 में इस महाकाव्य का प्रकाशन 1939 में कलकत्ता से करवाया है। बंगाल की रॉयल एशियाटिक सोसायटी से प्रकाशित 18 सर्गो के इस महाकाव्य में कुल 1063 श्लोक है।

अपनी कविता के विषय में कवि की सुस्पष्ट उद्‌द्योषणा है – ''मुक्ति की चर्चा करने वाली यह कविता शान्ति के लिए है, विलास के लिए नहीं है। अन्यमनस्क श्रोताओं का मन एक ओर आकृष्ट करने के उद्देश्य से इसकी काव्य–रूप में रचना की गई है। [22]

इस महाकाव्य के चरितनायक नन्द के भिक्षु बनने की मूलकथा महावग्ग तथा निदान–कथा में मिलती है। इस प्रकार इस महाकाव्य के कथानक का सम्बन्ध बुद्धचरित से ही है। परन्तु 'सौन्दरनन्द' में कवि ने यौवन सुलभ उद्दाम काम तथा धर्म के प्रति प्रबुद्ध प्रेम के विषम संघर्ष की, कथा को कोमलकान्त पदावली में व्यक्त कर कमनीय काव्य के रूप में परिणत कर दिया हैं। काव्य–गुणों के उत्कर्ष की दृष्टि से सौन्दरनन्द बुद्धचरित की अपेक्षा अधिक रमणीय है। महाकवि अश्वद्योष ने तथागत बुद्ध के सौतेले भाई सुन्दरनन्द तथा उसकी पतिव्रता पत्नी सुन्दरी की मनोरम कथा को इस महाकाव्य की पीठिका पर अधिष्ठित किया है।

इस प्रकार इस महाकाव्य में चित्त की उच्छृंखल प्रवृत्तियों को सही दिशा में अग्रसर कर देने की जो मार्मिक प्रक्रिया विद्यमान है, वह विश्वसाहित्य में अन्यत्र दुलर्भ है। चरित्र–विकास की कला के उत्तम निदर्शन के रूप में अश्वद्योष का सौन्दरनन्द एक अद्वितीय काव्यकृति है।

कालिदासोत्तर महाकाव्यः पहली शताब्दी से तेरहवीं शताब्दी तक

कालिदास तथा अश्वद्योष जैसे महाकवियों ने जिस काव्य–परम्परा को सुदृढ़ आधार दिया, उसका ईसा के बाद की शताब्दियों में कई धाराओं में विकास होता रहा।

कालिदासोत्तर महाकाव्यों की एक विशिष्ट प्रवृत्ति अलंकृत शैली का उदय मानी गई है तथा इस युग के प्रतिनिधि महाकाव्यों को 'अलंकृत शैली के महाकाव्य' की संज्ञा दी जाती रही है।

भारवी, माघ तथा श्री हर्ष के महाकाव्य इस प्रकार की विशिष्ट शैली के उत्कृष्ट उदाहरण है। अलंकृत शैली का अतिरेक रत्नाकर और शिवस्वामी के महाकाव्यों में प्रदर्शित किया गया है। कालिदास की प्रसादगुणसम्पन्न वैदर्भी रीति का अनुवर्तन करने वाले महाकवि कुमारदास का जानकीहरण, उद्भट का कुमारसम्भव अभिनन्द और क्षेमेन्द्र के महाकाव्य, श्री कण्ठचरित, हरिविलास, चक्रपाणिविजय, धर्मशर्माभ्युदय, सुहृद्यानन्द आदि महाकाव्य है।

7. किरातार्जुनीयम् महाकाव्य –

महाकवि भारवी 'बृहत्त्रयी' के प्रथम कवि और अलंकृत काव्यधारा के पथिकृत् पुरोधा है। अट्ठारह सर्गो में उपनिबद्ध तथा महाभारत के वनपर्व की एक छोटी घटना पर आधृत 'किरातार्जुनीयम्' महाकाव्य उनकी अब तक उपलब्ध एकमात्र कृति है।

इस महाकाव्य में दुर्योधन द्वारा अन्यायपूर्वक द्यूतक्रीडा में पराजित कर दिये जाने पर पाण्डव दौपद्री के साथ अरण्य में निर्वासित जीवन व्यतीत कर रहे है। राज्यप्राप्ति हेतु शक्ति अर्जित करने के क्रम में व्यास एवं युधिष्ठिर की आज्ञा से तृतीय पाण्डव अर्जुन, इन्द्रकील पर्वत पर जाकर पाशुपतास्त्र की प्राप्ति के लिए भगवान शंकर की अराधना करते है। तपश्चर्या से प्रसन्न शिव किरातवेश में आकर उनके पराक्रम की परीक्षा लेते है और अन्त में सन्तुष्ट होकर उनको उनका अभीप्सित आयुध और शत्रुविजय का वर प्रदान का चरित्रांकन किया गया है। महाभारत के इसी छोटे से इतिवृत्त को कल्पना और विचक्षणता का स्पर्श देकर महाकाव्य का वैशद्य प्रदान किया गया है कवि ने अपनी कल्पना–प्रवणता, चरित्र–चित्रण की कुशलता एवं उक्ति

वैचित्र्य आदि से न केवल कथा को विस्तीर्ण किया है, अपितु अपने वैदुष्य, विशेषकर राजनीतिक व्युत्पत्ति के माध्यम से उसे आवर्जक, चमत्कारपूर्ण तथा हृद्य बनाकर विद्वान् सहृदयों के लिए, उनकी बुद्धि को कसने वाली कसौटी बनाकर प्रस्तुत किया है।

8. शिशुपालवध महाकाव्य –

माघविरचित 'शिशुपालवध' भारवि के 'किरातार्जुनीय' की ही परम्परा में एक प्रौढ़ तथा सर्वांगसम्पन्न महाकाव्य के रूप में प्रतिष्ठित है। यह बृहत्त्रयी काव्यों में पारम्परिक प्रशस्तिओं से प्रामाणिक है –

(क) उपमा कालिदासस्य भारवेरर्थगौरवम्

नैषधे पदलालित्यं माद्येसन्ति त्रयो गुणाः।

(ख) मुरारिपदचिन्ता चेत्तदा माद्ये रतिं कुरू।

मुरारिपदचिन्ता चेत्तदा माद्ये रतिं कुरू।।

(ग) मेघे माद्ये गतं वयः।

यद्यपि शिशुपालवध की समाप्ति में कविवंश–वर्णन के पाँच पद्यों में स्वयं माद्य ने अपना परिचय उपनिबद्ध किया है, इसके अनुसार उनके पितामह सुप्रभदेव, (किसी) श्री वर्मल सञ्ज्ञक राजा के महामन्त्री थे। उनके पुत्र अत्यन्त धर्मनिष्ठ एवं युधिष्ठिर–सदृश गुणों वाले दत्तक हुए। माघ इन्हीं दत्तक के पुत्र थे। इस महाकाव्य की पुष्पिकानुसार –

''इति श्रीभिन्नमालवास्तव्य दत्तकसूनोर्महावैयाकरणस्य माघस्य कृतौ शिशुपालवधे महाकाव्ये .....''

'शिशुपालवध महाकाव्य' की कथा भी किरातार्जुनीय की भाँति महाभारत से ली गई है। श्री मद्भागवत आदि पुराणों में भी यह कथा प्राप्त होती है। काव्य का मूल कथानक श्री कृष्ण तथा उनके फुफेरे भाई चेदिनरेश शिशुपाल के वैर तथा युधिष्ठिर के राजसूय–यज्ञ में श्री कृष्ण द्वारा किए गए उसके वध से सम्बन्धित है।

कवि ने द्वारका से युधिष्ठिर के राजसूय–यज्ञ में सम्मिलित होने के लिए कृष्ण के प्रस्थान और वहाँ शिशुपाल द्वारा किए गए उनके अपमान तथा बाद में श्री कृष्ण के द्वारा उसके मारे जाने की प्रासंगिक कथा को बीस सर्गो में विस्तारित किया है।

9. जानकीहरणम महाकाव्य –

कुमारदासकृत जानकीहरण केवल नाम्ना आलंकारिक, छन्दः शास्त्र तथा कोषों की कुछ टीकाओं से ज्ञात था जब तक धर्मराम स्थविर (1891) ने चौदह सर्गो तथा पन्द्रहवें के अंश का सम्पादन सिंहली भाषा के सन्न (शब्दशः अनुवाद) से नहीं कर दिया। कालिदास के साथ अत्यधिक साम्य एवं उसका प्रभाव होने के कारण परम्परा में कुमारदास का सम्बन्ध जुड़ गया तथा दन्त कथाओं मे उनका तादात्म्य भी दृष्टिगत होता है। सिंहलद्वीप में आलंकारिक शैली के काव्य लिखने का श्रेय कुमार दास को ही जाता है।

रामायण कथा होने के कारण इस काव्य को भी मुक्तिदायक बताया गया है –

जानकीहरणं श्लक्ष्णं लक्षणैरूपलक्षितम्।

रामायणसुधासारमास्वाद्यं मुक्तिदायकम्।।

महाकाव्य में राम की उत्पति, वन में वशिष्ठ के आश्रम का वर्णन, राम का मिथिला जाना, सीता से विवाह, राम के वनवास सीताहरण, सेतुनिर्माण आदि का वर्णन है। विण्टरनित्स के अनुसार जानकीहरण काव्य में कथा मूलतः सीता के हरण तक थी।

10. उद्भट : कुमारसम्भव –

सुप्रसिद्ध आलंकारिक भामहविवरण तथा काव्यालंकारसारसंग्रह जैसे महत्वपूर्ण काव्यशास्त्र ग्रन्थों के प्रणेता उद्भट ने भी कालिदास के कुमार सम्भव से प्रेरित होकर इसी नाम से इसी विषयवस्तु पर अपना महाकाव्य लिखा था, जो वर्तमान में अप्राप्य है। काव्यालंकारसारसंग्रह में इस महाकाव्य से बहुसंख्य पद्य उद्धृत किये गये, जिसमें इसकी प्रतिसर्ग विषयवस्तु और रचनाशैली का अनुमान किया जा सकता है। उद्भट का समय 800 ई. के आसपास है।

11. अभिनन्दकृत रामचरित –

अभिनन्दकृत रामचरित में 36 सर्ग उपलब्ध होते है, तथा दो परिशिष्ट हैं जिनमें से पहला 37 सर्ग से 40 सर्ग तक तथा दूसरा भी 37 सर्ग से 40 सर्ग तक है। यह महाकाव्य राम–लक्ष्मण संवाद से प्रारम्भ होकर, रावण के वध, तथा राम के राज्याभिषेक तक वर्णीत है। महाकवि अभिनन्द ने रामकथा में अनेक परिवर्तन किए हैं जहाँ कथा को कलात्मक सौन्दर्य देना भी एक मुख्य कारण है। अभिनन्द ने राम के चरित्र को विष्णु के अवतार के रूप में चित्रित करने का यत्न किया है। रामचरित में सुग्रीव स्वयं राम की सहायता के लिए आते है तथा उसे राम का सेवक प्रदर्शित किया गया है। अभिनन्द की शैली में वर्णन का सौविध्य, शब्दावली में संगीतात्मकता तथा कल्पनाप्रखरता सर्वत्र दृष्टिगत होती है।

12. नैषधीय चरित –

संस्कृत–महाकाव्यों की 'बृहत्त्रयी' के तृतीय घटक के रूप में दार्शनिक कवि श्री हर्ष के नैषधीय चरित महाकाव्य की गणना की जाती है। 'नैषधीयचरित' किरातार्जुनीय तथा शिशुपालवध की अपेक्षा विस्तृत तथा अधिक ग्रन्थिल है। पारम्परिक समीक्षा में इसे विद्वदुपभोग्य एवं विचित्रमार्ग का सर्वोत्कृष्ट निदर्शन माना गया है –

तावद्रभा भारवेर्भाति यावन्माघस्य नोदयः।

उदिते नैषधे काव्ये क्व माघः क्व च भारविः।।

महाकवि स्वयं को कान्यकुष्जेश्वर की सभा में दो पान का बीड़ा तथा आसन प्राप्त करने वाला कहकर गर्व का अनुभव करते है।

ताम्बूलद्वयमासनं च लभते यः कान्यकुब्जेश्वरात्। (नैषध, 22/153)

महाकाव्य में अपना परिचय देते हुए अपने को श्री हीर मामल्लदेवी का पुत्र कहा है।

'श्री हर्ष कविराजराजिमुकुटालङ्कारहीरः सुतं।

श्री हीरः सुषुवे जितेन्द्रियचयं मामल्लदेवी च यम्।।

(प्रायः प्रत्येक सर्ग के अन्त में आने वाला पद्यार्थ)

इस महाकाव्य में निषधदेशोद्भव पुराणप्रसिद्ध पुण्यश्लोक महाराज नल और विदर्भदेश की राजकुमारी दमयन्ती के प्रणय एवं विवाह की कथा पर आधृत हैं। यों तो यह कथा पुराणों तथा कथासरित्सागर आदि अन्य ग्रन्थों में प्राप्त होती है; किन्तु नैषधकार ने जिसे अपने महाकाव्य का आधार बनाया है वह सम्भवतः महाभारत के वनपर्व में वर्णित 'नलोपाख्यान' है। नलोपाख्यान में 52 से लेकर 79 तक अट्ठाइस अध्यायों मे विस्तार से नल का चरित्र वर्णित हुआ है। वन में विषादग्रस्त पाण्डवों के आश्वासनार्थ महर्षि बृहदश्व ने उन्हें यह वृत्तान्त सुनाया है और वहाँ इसका मूल रस शान्त है, क्योंकि नल और दमयन्ती का चरित मानवीय जीवन के अनेकविध उतार –चढ़ावों के बीच अदम्य जिजीविषा और दाम्पत्य–निष्ठा का उज्ज्वल उदाहरण है। महाकवि ने इस कथानक के एकदेश को लेकर ही अपनी लेखनी का प्रवर्तन किया है। नल–दमयन्ती के विवाह तक की प्रणयकथा ही उसमें 22 सर्गो तथा 2830 पद्यों में वर्णित की गई है। महाकाव्य का अंगीरस श्रृंगार है –

वीक्ष्य पत्युधरं कृशोदरी बन्धुजीवमिव भृङ्सङ्गतम्।

मञ्जुलं नयनकज्जलैर्निजैः संवरीतुमशकत्सिमतं न सा।।

तां विलोक्य विमुखश्रितस्मितां पृच्छतो हसितहेतुमीशितुः।

ह्रीमती व्यतरदुरं वधूः पाणिपङ्करूह दर्पणार्पणाम्।। (नैषधः 18/925, 126)

इन पद्यों मे दमयन्ती के मुग्धात्व एवं रतिकाल के अनुकूल स्वाभाविक ह्रास–परिहास का सरस चित्रण हुआ है।

13. परिजातहरण महाकाव्य –

इस महाकाव्य के कर्ता कविराज है तथा रचनाकाल बारहवीं शती है। कविराज के पिता नारायण गौतमवंशीय विद्वान ब्राह्मण थे और वे कादंबवंश के राजा के यहाँ सेनापति थे। इनकी माता का नाम चन्द्रमुखी था। इस महाकाव्य में कुल दस सर्ग तथा 770 श्लोक हैं। सत्यभामा के अनुरोध पर श्री कृष्ण द्वारा स्वर्ग के नन्दनकानन

से परिजात वृक्ष लाने की सुप्रसिद्ध हरिवंशादि में वर्णित कथा का कवि ने इसमें पल्लवन किया है।

14. परिजातापहार –

इस महाकाव्य की विषयवस्तु भी उपर्युक्त परिजातहरण महाकाव्य के ही समान है। कवि ने इसे महाकाव्य कहा है, पर इसमें महाकाव्य के लक्षण पूरी तरह घटित नहीं होते। इस काव्य में कुल 179 श्लोक है, इस महाकाव्य (?) के रचयिता नारायण पंडित है, जो त्रिविकमभट्ट के पुत्र थे।

15. नरनारायणानन्द महाकाव्य –

वस्तुपाल ने इस महाकाव्य की रचना 1277 वि. सं. (1220 ई.) में की थी। इसमें सोलह सर्ग हैं, श्री कृष्ण और अर्जुन की मित्रता तथा अर्जुन के द्वारा सुभद्राहरण की कथा को प्रस्तुत किया गया है। वस्तुपाल वैदर्भी रीति के कवि हैं। इस महाकाव्य का कथानक महाभारत से लिया गया है। यह महाकाव्यसम्मत समस्त लक्षणों से परिपूर्ण है। इसमें कुल 740 श्लोक है। इसका अन्तिम सर्ग प्रशस्ति सर्ग है, जिसमें कवि ने अपनी वंश–परम्परा तथा गुरू का परिचय दिया है।

संयोग श्रृंगार के अतिरिक्त, विप्रलम्भ श्रृंगार, रौद्र, वीर आदि अन्य रसों को भी गौण रूप में स्थान प्राप्त है। महाकाव्य में चरित्र–चित्रण व प्रकृति–चित्रण को महत्वपूर्ण स्थान दिया गया हैं। महाकाव्य की भाषा सुसंस्कृत, प्रौढ़ और साहित्यिक है। कहीं–कहीं कवि ने पाण्डित्य–प्रदर्शन का भी प्रयास किया है। तथा –

लोलालोलं लुलोलेली लाली लालल्ललोल्ललः।

लोलं लोलं लुलल्लोलोलोलल्ली लाललोललः।। (नरनारायणानन्द 14/2३)

16. बालभारत महाकाव्य –

अमरचन्द्र भी आचार्य तथा कवि के रूप में समानतः प्रतिष्ठित हैं। चतुर्विंशतिजिनेन्द्रसंक्षिप्तचरित, काव्यकल्पलता, कविशिक्षा, छन्दोरत्नावली, भुक्तावली तथा कलाकलाप आदि विविध रचनाओं के अतिरिक्त इनके दो महाकाव्य प्रसिद्ध है–बालभारत तथा पद्मानन्द। पद्मानन्द का दूसरा नाम जितेन्द्रचरित भी है। पुष्पिका

(19/60-61) से विदित होता है कि यह काव्य राजा वीरधवल (वि.सं. 1294 – 1338) पद्मनामक वणिक् मन्त्री के अनुरोध पर वि. सं. 1298 (1241ई॰) में लिखा गया था।

बालभारत महाकाव्य में महाभारत की सम्पूर्ण कथा का संक्षेप में वर्णन किया गया है। इसका कथानक पाण्डवों के चरित्र से सम्बन्धित है। वीर पाण्डव इसके नायक है। इस महाकाव्य की रचना 18 पर्वो और 44 सर्गो में हुई है। इसमें कुल 5482 पद्य है।

17. सहृदयानन्द महाकाव्य –

कृष्णानन्द रचित इस महाकाव्य में नल–दमयन्ती की संपूर्ण कथा पन्द्रह सर्गो में प्रस्तुत की है। महाकवि उत्कल प्रदेश में कायस्थ कुल में उत्पन्न हुए। वे संभवतः पुरी के ही शासक के महामात्र या मंत्री रहे। अनुश्रुति के अनुसार इन्होंने श्री हर्ष के नैषधीयचरित पर टीका भी लिखी थी। साहित्य दर्पणकार विश्वनाथ ने इनका एक पद्य उद्धृत किया है, जिसमे इनका समय तेरहवीं शताब्दी के लगभग माना जा सकता है। श्री हर्ष के महाकाव्य की तुलना में कृष्णानन्द ने कथा के प्रस्तुतीकरण तथा भाषाशैली दोनों में अधिक सहजता और सारल्य का निर्वाह किया है।

18. कश्मीर के कवि भर्तृमेण्ठ : हयग्रीववध –

यद्यपि महाकवि भर्तृमेण्ठ या मेण्ठ के कृतित्व तथा यश का प्रख्यापन शताब्दियों से आज तक संस्कृत साहित्य की परम्परा में होता आया है, पर इनका महाकाव्य हयग्रीववध अप्राप्य है, और अन्य कोई रचना भी इनकी स्वतंत्र रूप से नहीं मिलती। राजशेखर ने तो मेण्ठ, भवभूति तथा स्वयं को वाल्मीकी का अवतार बताया है –

बभूव वल्मीकभवः कविः पुरा।

ततः प्रपेदे भुवि भर्तृमेण्ठताम्।

स्थितः पुनर्यो भवभूतिरेखया

स वर्तते सम्प्रति राजशेखरः।। (बालरामायण 9/9६)

हयग्रीव नामक दैत्य की कथा महाभारत तथा कतिपय पुराणों (अग्नि. अ. –1, पदमपुराण अ. 258, भागवतपुराण 8/24) मे आयी हैं। एक कथा के अनुसार विष्णु ने मत्स्यावतार के समय इस हयग्रीव दैत्य का वध किया था। भर्तृमेण्ठ ने अपने महाकाव्य में इसी कथा को विषय बनाया है। महाकाव्य के अप्राप्य होने के कारण सर्ग संख्या व कथावस्तु अस्पष्ट है।

19. हरविजय महाकाव्य –

कश्मीरी कवि रत्नाकर विरचित हरविजय महाकाव्य का प्रकाशन सर्वप्रथम बम्बई मे हुआ था। इसका नवीन संस्करण डा. गंगानाथ झा केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ, इलाहाबाद से डा. राजू के सम्पादकत्व में प्रकाशित हुआ है। यह महाकाव्य अलंकृत शैली के काव्यों का विशालतम निदर्शन है।

हरविजय महाकाव्य की कथा मत्स्यपुराण के 179वें अध्याय में वर्णित अन्धकासुर की कथा पर आधारित है। अन्धकासुर बड़ा पराक्रमी राक्षस था। एक बार उसने भगवती पार्वती का अपहरण करने की कुचेष्टा की, जिसके कारण भगवान शिव और उसके बीच भयंकर युद्ध हुआ। और अन्त में भगवान शिव ने अन्धकासुर को अपने त्रिशुल का लक्ष्य बनाना चाहा तो वह विनीत भाव से उनकी स्तुति करने लग गया। भगवान आशुतोष ने प्रसन्न होकर उसे अपना सामीप्य प्रदान किया तथा गणेशत्व भी दिया।

20. कफ्फिणाभ्युदय महाकाव्य –

महाकवि शिवस्वामी ऊपर चर्चित महाकवि रत्नाकर के समकालिक है। इन्होंने स्वयं शैव होते हुए भी अवदानशतक में वर्णित दक्षिणापथ के राजा कफ्फिण तथा श्रावस्ती के राजा प्रसेनजित के बीच हुए शीतयुद्ध तथा अनंतर कफ्फिण के बौद्ध धर्म मे दीक्षित होने और अर्हत की पदवीं प्राप्त करने के कथानक पर अपनी लेखनी व्यापारित करते हुए कफ्फिणाभ्युदय महाकाव्य की रचना की।

मूल अवदान–शतक की कथा में तो दोनों राजाओं के बीच केवल संदेश वाहक के माध्यम से बात होती है। कफ्फिण ने श्रावस्ती और उत्तरापथ के पाँच अन्य राजाओं के पास यह संदेश भिजवाया कि वे सभी उसकी अधीनता स्वीकार कर

लें। उन राजाओं ने त्रस्त होकर भगवान बुद्ध की शरण ली और तथागत के अनुग्रह से आक्रमण के लिये उद्यत राजा कफ्फिण ही बौद्ध धर्म में दीक्षित होकर अर्हत् बन गया।

रत्नाकर की भाँति शिवस्वामी ने भी इस संक्षिप्त कथा को महाकाव्य का रूप प्रदान कर प्रवर्धित भी किया है और परिवर्तित भी। कफ्फिणाभ्युदय महाकाव्य में बीस सर्ग है। शिवस्वामी ने प्रत्येक सर्ग के अन्त में 'शिव' शब्द का प्रयोग किया है और अपने महाकाव्य को शिवांक घोषित किया है –

यद्वाणी श्रुतिमात्रकेण सुधियां चेतश्चमत्कारिणी

येनामुद्रि विरोधिनां मुखकुलं स्वोद्रगारकौतूहलैः।

तेनाज्ञानघ्यनान्धकारपटलप्रक्षेपदीपाङ्कुरं

व्यातेने कृतिनां कृते सुकृतिना काव्यं शिवस्वामिना।।

विदितबहुकथार्थश्चित्रकाव्योपदेष्टा

यमककविरगम्यश्चारूसन्दानभाणी।

अनुकृतरघुकारोऽभ्यस्तमेण्ढप्रचारो

जयति कविरूदारो दण्डिदण्डः शिवाङ्कः।।

क्षेमेन्द्र के महाकाव्य –

परिचय –

महाकवि क्षेमेन्द्र अपनी सर्वतोमुखी उदग्र प्रतिभा के कारण संस्कृतजगत् मे विख्यात है। अपनी बृहत्कथामञ्जरी, भारतमञ्जरी तथा औचित्यविचारचर्चा की पुष्पिकाओं में उन्होंने अपना परिचय दिया है। तदनुसार उनके वृद्ध प्रपितामह नरेन्द्र कश्मीरनरेश जयापीड के यहाँ कर्मचारी थे। इनके प्रपितामह योगेन्द्र, पितामह सिन्धु तथा पिता प्रकाशेन्द्र थे। आचार्य अभिनव से विद्याभ्यास करते समय क्षेमेन्द्र की आयु

1014 में यदि पच्चीस वर्ष लगभग मानी जाए, तो उनका जन्मकाल 990 ई. के आसपास तथा निधनकाल 1060 के पश्चात् हो जाता है।

महाकवि क्षेमेन्द्र की महाकाव्यात्मक रचनाओं में बृहत्कथामञ्जरी, बोधिसत्त्वावदानकल्पलता, रामायणमञ्जरी, भारतमञ्जरी, दशावतारचरित, कलाविलास तथा पद्यकादम्बरी परिगणनार्ह हैं। इनमें से पद्यकादम्बरी अप्राप्य है। इनके काव्यशास्त्रविषयक ग्रंथों में औचित्यविचारचर्चा, सृवृत्ततिलक तथा कण्ठाभरण सुप्रसिद्ध है इसके अतिरिक्त क्षेमेन्द्र की रचनाओं में नीतिकल्पतरू, अमृताङ्गकाव्यकनकजानकी, व्यासाष्टकम्, लोकप्रकाशकोष, विनयवल्ली, मुनिमतमीमांसा हस्तिजनप्रकाश, समयमातृका आदि बहुसंख्यक रचनाएँ है तथा अवसरसार, मुक्तावली, लावण्यती, पवनपञ्चाशिका आदि इनकी अप्राप्य रचनाएं है।

21. दशावतार चरित –

दशावतार में क्षेमेन्द्र ने अपने को व्यासदास कहा है। स्पष्ट ही वे पुराणों और महाभारत को व्यवस्थित रूप देने वाले महर्षि व्यास के आदर्श को चरितार्थ करना चाहते थे। दशावतार की, विषयवस्तु पौराणिक है, पर क्षेमेन्द्र ने इसमें सरल, सरस और प्राजंल भाषा के साथ काव्यात्मक शैली का सफल निर्वाह किया है। विष्णु के दसों अवतारों का चरित यहाँ विशद रूप में चित्रित है, जिनमें नवें अवतार गौतम बुद्ध है।

क्षेमेन्द्र शैली के चमत्कार के स्थान पर अपने महाकाव्यात्मक ग्रंथों में विषय की गुरूता और अर्थ की सुस्पष्टता के कारण प्रभावित करते है। बड़े घटना क्रम को थोड़े से पद्यबन्धों में समेट लेने की उनकी क्षमता भी प्रशंसनीय है।

दशावतारचरित में कुल दस अध्याय और 1764 पद्य है।

22. रामायणमञ्जरी –

रामायणमञ्जरी में सरलभाषा में वाल्मीकि रामायण के सातों काण्डों की कथा संक्षेप में प्रस्तुत की गई है। इसमें कुल 6186 पद्य है।

23. भारतमञ्जरी –

यह महाकाव्य संपूर्ण महाभारत का हरिवंशखिलपर्व सहित 19 पर्वों में तथा 10,792 पद्यों में प्रस्तुतीकरण है।

24. बृहत्कथामञ्जरी –

यह काव्य गुणाढ्य की बृहत्कथा का संस्कृत रूपान्तर है। इसमें उपसंहार और परिशिष्ट के साथ 18 लम्बक तथा कुल 7639 पद्य है।

25. अवदानकल्पलता –

इस काव्य का सम्पूर्ण नाम बोधिसत्त्वावदानकल्पलता है। इसका विभाजन पल्लवों में किया गया है, और इस कल्पलता में कुल 108 पल्लव है। यह जातक कथाओं का विशाल संग्रह है।

26. श्रीकण्ठचरित –

कश्मीर के महाकवियों में मङ्खक का स्थान महत्वपूर्ण है। ये आचार्य क्षेमेन्द्र के उत्तरवर्ती हैं और इनका आविर्भावकाल बारहवीं शताब्दी का पूर्वाध है।

महाकवि मङ्खक की एक ही रचना अब तक प्रकाश में आयी है–श्री कण्ठचरित महाकाव्य। यह महाकाव्य भगवान शिव द्वारा त्रिपुरदाह की कथा पर आधारित है। इस संपूर्ण काव्य पर जोनराज (15 वीं शताब्दी) की टीका उपलब्ध है। इस महाकाव्य में चतुर्थ से चौबीसवें सर्ग तक इक्कीस सर्गो में भगवान शिव द्वारा त्रिपुरदाह की कथा का सरस निरूपण है। अलंकृत शैली का महाकवि ने निर्वाह किया है कि यथास्थान कथा–प्रसंगों में चन्द्रोदय, दोलाक्रीडा जलक्रीडा, प्रसाधन, पानकेलि, रतिक्रीडा का वर्णन किया है।

27. चक्रमाणिविजयमहाकाव्य –

चक्रपाणिविजय महाकाव्य की प्राचीन पाण्डुलिपि विक्रम की चौदहवीं शताब्दी की हैं। इस महाकाव्य के रचयिता लक्ष्मीधर ने अपने को राजा भोजदेव का समकालीन बताया है। अपने महाकाव्य के प्रथम सर्ग के पद्य 2 से 9 में कवि लक्ष्मीधर ने अपना विस्तृत परिचय दिया है। तदनुसार उनके पूर्वज गौड देश के कौशल नामक गांव में

रहते थे। पूर्वपुरूषों में परम विद्वान और शास्त्रपारावारीण नरवाहन भट्ट हुए, जिनके पुत्र अजित थे, उनके पुत्र वैकुण्ठ हुए और इन्हीं वैकुण्ठ के पुत्र लक्ष्मीधर थे।

चक्रपाणिविजयमहाकाव्य मे बीस सर्गो में उषा और अनिरूद्ध की सरस कथा अत्यन्त रोचक रूप में निबद्ध की गयी है।

लक्ष्मीधर की कल्पनाएं सरस और सप्राण है। इनकी उपमाएं यद्यपि मौलिक नहीं है, पर वे उनमें अतिरिक्त वैशिष्ट्य लाकर सौन्दर्य का अनुभव देते है। तपोरत बाणासुर का वर्णन –

धौताङ्गरागः स बभौ कृतभस्मविलेपनः।

सन्ध्यारूणिमपर्यन्ते प्रभापीनः शशी यथा।। (2/14)

अर्थात् उजला अंगराग और भस्म का लेप लगाए हुए बाणासुर के लिए सन्ध्या की अरूणिमा में रंगे चन्द्रमा से उपमा सटीक है।

लक्ष्मीधर की वर्णनकला भी प्रशस्य है। ऐश्वर्य और समृद्धि का वर्णन वे जितनी दक्षता से कहते है, उतनी ही सहजता से नैसर्गिक अभिरामता का भी। प्रकृति वर्णनों में भी उनकी कल्पना चार चांद लगाती चलती है। उदाहरण के लिये सूर्यास्त के वर्णन में –

सन्ततज्वलितपावकोपमे निर्वृते किरणचक्रवालिनी।

विक्षीतं गगनकर्परोदरे रूक्षकज्जलमलीमसं तमः।।

(निरंतर जलती आग की भांति जो सूर्य दिन भर चलते रहे, उनके अस्त होने पर आकाश रूपी खप्पर में सूखे काजल सा अंधकार भरा दिखाई दिया।) यहां दीपक पर उलय कर रखे पात्र में काजल भर जाने की क्रिया कवि ने लोक जीवन से उठाई है।

निश्चय ही चक्रपाणिविजय महाकाव्य को किरात, शिशुपालवध जैसे कालिदासोत्तर युग के सर्वोत्कृष्ट प्रबन्धों के साथ रखा जा सकता है।

28. लोलिम्बराजकृत : हरविलास –

कवि लोलिम्बराज का परिचय जो काव्यमाला संपादकों ने दिया है [23] उसके अनुसार वे राजा भोज के समकालिक दक्षिण के राजा हरिहर की राजसभा को अलंकृ –त करते थे। इनका जन्म ब्राह्मण परिवार में हुआ। इनके पिता का नाम दिवाकर था। युवावस्था तक इन्होंने न विद्याध्ययन किया, न जीविकोपार्जन का ही प्रबन्ध किया, क्योंकि इनके बड़े भाई निस्संतान होने के कारण पुत्र की भांति इन पर प्रेम रखते थे अंत में अपनी भाभी के कटुवचनों से आहत होकर इन्होंने देश छोड़ दिया तथा सप्तशृङ्गी नामक पर्वत पर जाकर महिषासुर मर्दिनी की आराधना की। प्रसन्न होकर भगवती ने इन्हें एक घटिका में सौ उत्तम पद्य रचने की प्रतिभा प्रदान की तथा अनेक विद्याओं से पारंगत भी बना दिया।

हरिविलास को महाकाव्य कहा गया है, यद्यपि महाकाव्य लक्षणानुसार इसमें अपेक्षित सर्गसंख्या नहीं है। इस काव्य में कुल पांच सर्ग है। पर अन्य सभी दृष्टियों से यह काव्य महाकाव्य के गौरव का पात्र है।

हरिविलास की विषयवस्तु श्रीमद्भागवत के दशम स्कन्ध में वर्णित श्री कृष्ण की लीलाओं का प्रस्तुतीकरण है। कवि ने श्री कृष्ण के बालरूप का वर्णन प्रथम सर्ग में वात्सल्य और स्नेह के रस में पूरी तरह डूबकर किया है। द्वितीय सर्ग में कृष्ण का बलराम के साथ गोचारण वर्णित है।

मुरारि का मुरलीस्वर कानन में गूंजता है –

अपि प्रचुरलालसा मधु मधुव्रता नापिबन्

मुखात् तमपि नूतनं तृणचरास्तृणं नाचरन्।

मुरारिमुरलीस्वरामृतरसैकबद्धादरा

न हंसपिककेकिनः किमपि कूजितं चक्रिरे।। – 2/8

तृतीय सर्ग में गौवर्धनपूजा तथा सकल ऋतुओं की समृद्धि का वर्णन है।

चतुर्थ सर्ग में अक्रूर मथुरा से कंस का बुलावा ले कर आते हैं। श्री कृष्ण वृन्दावन से बिदा लेते हैं। उनके चले जाने पर गोपियां विरहविकल हो जाती है –

विरहहुतवहाकुलीकृतानां प्रतिदिवसं व्रजवामलोचनानाम्।

दिवसगणनयाङ्गुलीदलानां तनु तनु हन्त समग्रभग्रमासीत।। – 4/37

पंचम सर्ग में मथुरा में कृष्ण की लीलाएं और कंसवध का वृत्त है। [24]

अतः उपरोक्त वर्णित महाकाव्य काव्यशास्त्रीय परम्परा में महत्वपूर्ण स्थान रखते है।

.....********.....

1. हरिप्रसादकृत काव्यालोक : रमा गुप्ता पृ.सं. – 65
2. काव्यालंकार – मामह 1 , 16
3. संस्कृत साहित्य का इतिहास – प्रो.(डॉ.) कैलाशनाथ द्विवेदी पृ.सं. 10
4. Dr. Das Gupta – History of Sanskrit Literature
5. काव्यालंकार – सूचवृत्ति, अधि. 1
6. ध्वन्यालोक – आनंदवर्धन, 1/1
7. काव्यप्रकाश – मम्मट, 1/1
8. वक्रोक्तिजीवित – कुन्तक
9. औचित्ययस्य चमत्कारकारिणश्चारूचर्वणे।
   रसजीवितभूतस्य विचारं कुरूते धुना।। का. 3, औचित्यविचार चर्चा
10. अभिनव काव्यप्रकाश, प्रो. जोग. पत्र नं. 15
11. विश्वनाथ, साहित्यदर्पण, 1/3
12. जगन्नाथ, रसगंगाधर, प्रथमानन
13. रूद्रट, काव्यालंकार, 2/1
14. हेमचन्द्र, काव्यानुशासन, 1/6
15. जयदेव, चन्द्रालोक

16. संस्कृत के पौराणिक महाकाव्य – डॉ. राजेश कुमारी मिश्रा पृ.सं. 2 – 8

17. "Songs in celebrations of great heroes were current in India from very oldest time. The deeds of Indra and others Gods and heroes were narrated and lauded in Rigveda in which we way trace the fore – shadowings if Indian epic poetry."

- Koklieshwar Shastri, A Brief History of Sanskrit

- Literature (Vedic and Classical), p. 22

18. "This is not meant denial, that the real epic poetry, that is so say, a mass of popular songs celebrating the power of exploits of Gods and heroes, existed in very early periods in India, as well as amoung the other Aryan natious, but is shows that if it is existing, it is not in the Mahabhasrate and Ramayana, we have to look for these old songs but rather in veda itself. In the collection of the vedic hymns there are some which may be called epic and may be compared with the shortest hymns ascribed to Homer."

19. संस्कृत वाङ्मय का वृहद् इतिहास – पद्मभूषण आचार्य श्री बलदेव उपाध्याय भूमिका – पृ.सं.– 10 – 11

20. संस्कृत वाङ्मय का वृहद् इतिहास – पदम्भूषण आचार्य श्री बलदेव उपाध्याय पृ.सं. – 16 – 20

21. बुद्धचरितम्, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी 1988 ई. प्रथम भाग प्राक्कथन पृ.सं. – 7 – 8

22. इत्येषा व्युपशान्तये न रतये मोक्षार्थगर्भाकृतिः
श्रोतृणां ग्रहणार्थमन्यमनसां काव्योपचारात्कृता। – सौन्दरनन्द 18 / 63

23. यह परिचय काशीविद्यासुधानिधि के खण्ड–2 अंक 16 मे प्रकाशित बेचनरामशर्मा के लेख से उद्धृत है।

24. संस्कृत–वाङ्मय का बृहद् इतिहास – चतुर्थखण्ड (काव्य) – पद्मभूषण आचार्य श्री बलदेव उपाध्याय पृ.सं.–131– 202

द्वितीय अध्याय

ऐतिहासिक महाकाव्यों का स्वरूप

विश्व में संस्कृत–वाङ्मय को प्राचीनतम तथा अनेक दृष्टियों से सम्पन्न स्वीकार करते हुए भी प्रायः पाश्चात्य–समीक्षकों का यह स्पष्ट आरोप रहा है कि उसमें ऐतिहासिक–ग्रन्थों का अभाव है। डॉ. कीथ के अनुसार–संस्कृत साहित्य के सबसे बड़े काल में एक भी ऐसा लेखक नहीं है जिसको हम वास्तव में एक विवेचक ऐतिहासिक कह सकते हों। [1] और इसके लिए उन्होंने भारतीय मनोभूमि तथा सांस्कृ –तिक आध्यत्मिक अवधारणाओं तथा यहाँ की राजनैतिक स्थितियों को दोषी ठहराया है। [2]

आपाततः यह कथन सत्य सा प्रतीत होता है कि पाश्चात्य मानदण्डों के अनुसार, सवंत्, तिथि के क्रमिक व्यौरे के साथ किसी विशेष जाति, कुल या राजवंशादि का इतिहास कश्मीरी कवि कल्हण की राजतरंगिणी के पहले तक सत्य ही उपलब्ध नहीं होता। किन्तु सूक्ष्मदृष्टि से देखने पर इस मत की आधार हीनता और भ्रमात्मकता ही सिद्ध होती है। क्योंकि स्वंय 'राजतरङ्गिणीकार' के अपनी रचना के पूर्व अनेक ऐतिहासिक–कृतियों का नामोल्लेख किया है, जिसमें, क्षेमेन्द्र की नृपावली, हेलाराज की पार्थिवावली तथा पद्ममिहिर और श्री छविल्लाकार की रचनाएँ मुख्य है। [3] राजतरङ्गिणी को लिखने के पहले उन्होंने अपने पूर्व विद्वानों द्वारा रचित ग्यारह ग्रन्थों तथा नीलमतपुराण को सन्दर्भ ग्रन्थ के रूप में देखे जाने का उल्लेख किया है। [4] इस प्रकार यह अनुमान करना अनुचित नहीं है कि प्राचीन भारत में इस प्रकार के इतिहास–लेखन का भी अस्तित्व किसी न किसी रूप में अवश्य रहा है।

महाभारत, हमारा जातीय इतिहास है। पुराणों में अनेक प्राचीन राजवंशों तथा ऋषिवंशों का क्रमशः इतिहास प्राप्त होता है। यास्क (700 ई. पू.) के निरूक्त मे ब्राह्मण गन्थों एवं प्राचीन आचार्यो की कथाओं को 'इतिहासमाचक्षते' कहकर उल्लेख किया गया है। और वेदार्थप्रतिपादकों में एक वर्ग इतिहासकारों का भी था जिसे 'इति

ऐतिहासिका' कहा गया हैं निरूक्त में पुराण और इतिहास को वेदों के समकक्ष माना गया है।

'छान्दोग्योपनिषद्' में नारद मुनि के इतिहास पुराण को 'पंचम वेद' बतलाया है। [5]

वस्तुतः पाश्चात्यों द्वारा भारतीयों को इतिहास–विरहित कहना भारतीय इतिहास –दृष्टि को न समझ पाने की त्रुटि का परिणाम है। संस्कृत में ऐतिहासिक काव्य लिखने वाले कवियों ने घटनाओं और वस्तुस्थितियों का यथावत् विवरण प्रस्तुत करना अपना दायित्व नहीं माना। उन्होंने घटनाओं और वस्तुस्थितियों की पुनः सृष्टि की है। इतिहासविद् प्रो. विश्वम्भरसहाय पाठक ने संस्कृत कवियों की इस प्रवृत्ति को 'इतिहास का दैवीकरण' कहा है। इतिहास के दैवीकरण या मिथकीकरण के पीछे दो मूल कारण रहे हैं, एक तो राजा में ईश्वर का अंश होने की अवधारणा तथा अतीत के गौरव का वर्तमान में पुनर्जागरण देखने की इच्छा। इस दृष्टि से इतिहास को यथाघटित रूप में चित्रित न करके कवियों ने कतिपय विशिष्ट प्रतीकात्मक अभिप्रायों का प्रयोग करते हुए अपनी दृष्टि से इतिहास की व्याख्या करते हुए उसे प्रस्तुत किया हैं। ये अभिप्राय है–चक्रवर्ती पद की प्राप्ति, स्वयंवर और राज्य श्री द्वारा नायक का वरण । पर इन प्रतीकात्मक अभिप्रायों का आधार वास्तविक घटनाएँ रही हैं।

ऐतिहासिक महाकाव्य –

पाश्चात्य परिभाषाओं की संकीर्णता से यदि थोड़ा ऊपर उठकर विचार किया जाए तो संस्कृत भाषा का आदिकाव्य महर्षि वाल्मीकिकृत ''रामायण'' भी वस्तुतः ऐतिहासिक महाकाव्य ही है। क्योंकि महाकाव्य के इतिवृत्त और नायक का स्वरूप कितना ही आदेर्शोन्मुख और कल्पनाप्रवण क्यों न हो वह सर्वथा यथार्थ की भूमि से असंस्पृष्ट नहीं हो सकता। पौराणिक चरित्र हमारे पुरातन इतिहास के जीते जागते प्रतिमान ही हैं।

गुप्तकाल के ऐतिहासिक शिलालेखों [6] में प्रथम बार समकालीन नरेशों की प्रशस्तियों के साथ कतिपय ऐतिहासिक तथ्य काव्यरूप में संकलित किए गए। बौद्ध

और जैन लेखकों में भी कुछ–कुछ समकालिकता की और प्रवृत्ति बढ़ी [7] और कालान्तर में संस्कृत महाकवियों ने अपने समकालीन तथा आश्रयदाता नरेशों के ऐतिहासिकवृत्त को कल्पना से अनुरंजित करके महाकाव्य–लेखन आरम्भ कर दिया।

1. भुवनाभ्युदय महाकाव्य –

श्री शङ्कुक का 'भुवनाभ्युदय' महाकाव्य ऐतिहासिक महाकाव्यों की श्रृंखला में पहली कड़ी है, जो दुर्भाग्य से अब अप्राप्य है। शङ्कुक और उनके इस महत्वपूर्ण काव्य का उल्लेख कल्हण ने अपनी राजतरङ्गिणी (4/704) में किया है। तदनुसार शङ्कुक कश्मीर के राजा अजिचापीड़ (आठवीं शताब्दी ई. का पूर्वार्ध) के शासनकाल में रहे थे और इन्होंने अपने 'भुवनाभ्युदय' महाकाव्य में मम्म और उत्पल नामक दो सामंतों के बीच हुए भंयकर युद्ध का वर्णन किया था। भवुनाभ्युदय के कर्ता शङ्कुक तथा नाट्यशास्त्र के सुप्रसिद्ध व्याख्याकार शङ्कुक सम्भवतः अभिन्न हैं।

2. नवसाहसांकचरित महाकाव्य –

महाकवि पद्मगुप्त परिमल विरचित 'नवसाहसांकचरित' संस्कृत का उपलब्ध प्रथम ऐतिहासिक महाकाव्य माना जा सकता है। महाकवि कालिदास की शैली तथा रस–रीति के सफल अनुकर्ता होने के कारण इस कवि को 'परिमल–कालिदास' भी कहा जाता है। महाकाव्य के प्रत्येक सर्ग की पुष्पिका में कवि ने अपने को 'मृगांकसूनु' कहा है जिससे इनके पिता का नाम मृगांक या मृगांकदत्त सिद्व होता है। भोजकृत सरस्वतीकण्ठाभरण, क्षेमेन्द्र की औचित्य विचार चर्चा मम्मट के काव्यप्रकाश तथा वर्धमान के गणरत्नमहोदधि में इनकी उद्धृतियाँ तथा उल्लेख मिलते है [8], किन्तु 'पद्मगुप्त' सम्बन्धी वैयक्तिक जानकारी इनमें भी प्राप्त नहीं होती। कश्मीरी काव्यशास्त्रियों, मम्मट और क्षेमेन्द्र द्वारा उद्धृत किए जाने से पं. उपाध्याय जी ने इनके कश्मीराभिजन होने की सम्भावना प्रकट की है।[9]

कवि पद्मगुप्त धारानरेश वाक्पति उपाधिधारी मुंज के सभाकवि थे, क्योंकि वे अपने काव्य में 'मंजु' की प्रशंसा करते हुए उनके स्वर्गवासी हो जाने की चर्चा अत्यन्त दुःख के साथ करते हैं। मुंज की मृत्यु के बाद ये इतने विषण्ण हुए कि इन्होंने अपनी काव्यकला को ही सम्मुद्रित कर दिया, किन्तु मंजु के अनुज नवसाहसांक द्वारा सत्कृ

–त होने तथा अनुरोध किए जाने पर ये पुनः काव्यरचना में प्रवृत हुए और उन्हीं के आदेश से इन्होंने इस महाकाव्य की रचना की।[10]

''नवसाहसांकचरित'' का रचनाकाल लगभग 1005 माना जाता है। 18 सर्गो के इस महाकाव्य में मालवा के राजा नवसाहसांक उपाधिधारी सिन्धुराज के पराक्रमपूर्ण वृत्त को आधार बनाकर लिखी गई एक प्रशस्तिपूर्ण यशोगाथा है। जिनमें परमारवंशी राजाओं की वीर परम्परा का वर्णन करते हुए उपेन्द्र नामक राजा से लेकर नवसाहसांक तक के इतिवृत्त का ऐतिहासिक विवरण तथा नवसाहसांक सिन्धुराज द्वारा नागों के शत्रु वज्रांकुश को पराजित करके नागराज शंखपाल की पुत्री शशिप्रभा से विवाह करने की घटना का कुछ काल्पनिक एंव अलंकृत वर्णन किया गया है।

प्रो. विश्वम्भर सहाय पाठक ने नवसाहसांचरित की ऐतिहासिकता का परीक्षण करते हुए निष्कर्ष दिया है कि इसमें नायक की पाताललोक–यात्रा तथा नागकन्या का वरण आदि जो वृतान्त आपाततः कपोलकल्पित प्रतीत होते हैं, वे वस्तुतः प्रतीकात्मक ढंग से वास्तविक घटनाओं का ही संकेत देते हैं। कवि पद्मगुप्त प्रो. पाठक के मत से जैन कथासाहित्य से प्रभावित हैं और उसके अभिप्रायों का उन्होंने यहाँ प्रतीकात्मक शैली में उपभोग किया है। [11]

3. विक्रमाङ्कदेवचरित महाकाव्य –

ऐतिहासिक महाकाव्यों के द्वितीय क्रम में कश्मीरी कवि बिल्हण विरचित 'विक्रमाङ्कदेवचरित' महाकाव्य आता है। इसकी उपलब्धि का श्रेय जर्मन विद्वान् डॉ. व्यूल्हर को है। राजस्थान के जैसलमेर नगर स्थित जैन मन्दिर में जैन ज्ञानकोष भण्डार से प्राकृत काव्य 'गउडवहो' के साथ सन् 1974 ई. में उन्हें यह प्राप्त हुआ था।

महाकवि बिल्हण ने महाकाव्य के अन्तिम सर्ग में अपना जीवन वृत्त अंकित किया है। ये कश्मीर के प्रधान नगर 'प्रवरपुर' के समीपी 'रवोनमुष' नामक ग्राम में कौशिक गोत्रीय ब्राह्मणों के कुल में उत्पन्न हुए थे। इनके पूर्वजों को कश्मीर नरेश गोपादित्य ने मध्यप्रदेश से लाकर वहाँ बसाया था। इनके प्रपितामह का नाम 'मुक्तिकलश' पितामह का नाम 'राजकलश' तथा पिता का नाम 'ज्येष्ठकलश' था

इनकी माता नागादेवी थीं, जिनके ये मध्यम पुत्र थे। राजतंरगिणी (7/938) तथा स्वयं कविकृत विक्रमांकदेवचरित (18/103) के अनुसार आयु के अन्तिम दिनों में कवि ने कश्मीर देश लौटने की इच्छा प्रकट की थी, किन्तु उनकी यह इच्छा पूर्ण हुई या नहीं, इसका कोई विवरण उपलब्ध नहीं होता। लेकिन अगले पद्य में (विक्रमा. 18/104) में गंगासेवन की अभिलाषा भी प्रकट की है।

इस काव्य में 18 सर्ग है तथा यह दक्षिण की कल्याणनगरी के चालुक्य राजा विक्रमादित्य षष्ठ[12] (1078-1927 ई॰) का (उनके पूर्वजों की ऐतिहासिक भूमिका के साथ) अलंकृत जीवनवृत्त है। इसमें तत्कालीन इतिहास के साथ–साथ कवि कल्पना का वैभव, अतिशयोक्ति, चरित्र–चित्रण (भले ही इतिहास विरूद्ध प्रतीत होते हों) आवश्यक तथा शोभादायक तत्व ही कहे जायेंगे। प्रथम 18 सर्गो में चालुक्यवंश की उत्पत्ति और उस वंश में उत्पन्न कुछ प्राचीन राजाओं का वर्णन कर ऐतिहासिक राजा और काव्यनायक के पिता आहवमल्ल (सन् 1040 – 1069) का विशेष रूप से वर्णन है। शिव की कृपा से प्राप्त हुए तीनों पुत्रों–सोमेश्वर, विक्रमादित्य और जयसिंह का वर्णन करते हुए कवि ने युवराजपद हेतु विक्रमादित्य को ही योग्यता तथा पितृप्रियता का संकेत किया है आहवमल्ल की मृत्यु के बाद कालान्तर में ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न हो जाती हैं कि न चाहते हुए भी मध्यम पुत्र विक्रमादित्य को ही राज्यसिंहासन सम्हालना पड़ता है। इस ऐतिहासिक संघर्ष के निरूपण में कवि ने नायक के शील सौजन्य और धीरोदात्तता की युक्तिपूर्वक रक्षा की है।

महाकवि ने महाकाव्य की सभी आवश्यक विषयों का चारूता से सन्निवेश किया गया है। ऋतुओं का भी बड़ा मनोहारी चित्रण किया है, प्रकृति–वर्णन भी अत्यन्त स्वाभाविक तथा मनोहर है, प्रातः काल का यह चित्रण कितना स्पृहणीय है –

खण्डः क्षपासु कियतीष्वपि यः कृशाङ्गि,

भङ्गीमनङ्गपरशोः सदृशीं बिभर्ति।

सोडयं निमज्जति जगन्नयनाभिराम,

श्यामा वधू वदनवन्दनबिन्दुरिन्दुः ।। विक्रमा. ।। 11।। 78।।

4. राजतरंगिणी महाकाव्य –

महाकवि कल्हण कृत 'राजतरंगिणी' (1127 से 1151 ई.) संस्कृत ऐतिहासिक महाकाव्यों का 'मुकुटमणि' कहा जा सकता है। संस्कृत साहित्य में इतिहास को इतिहास मानकर लिखने वाले तथ्यों को तिथि आदि के प्रामाणिक–साक्ष्य और क्रम के साथ प्रस्तुत करने वाले ये अब तक के ज्ञात प्रथम कवि है। यही कारण है कि इनकी कृति 'राजतरंगिणी' का देश–विदेश में सर्वत्र आदर हुआ है। यह कश्मीर के राजाओं का विस्तृत इतिहास है, जिसका रचना–शिल्प बहुत कुछ महाभारत जैसा और अनेक काव्य–गुणों से समृद्ध है। इसमें महाभारत–काल से आरम्भ कर 1150 ईसवी तक के कश्मीरी नरेशों का इतिवृत्त तथा चरित्रांकन अत्यन्त हृद्य तथा प्रासादिक शैली में किया गया है।

'राजतरंगिणी' के इतिहास से कल्हण के पिता का नाम 'महामात्य चम्पक प्रभु' या चण्पक होना सिद्ध होता है। [13] कल्हण का जन्म कश्मीर के परिहासपुर में हुआ था। इनके व्यक्तित्व में एक निष्पक्ष खोजी ऐतिहासिक तथा तर्कप्रवण वैज्ञानिक का अद्‌भुत सम्मिश्रण दिखलाई पड़ता है।

'राजतरंगिणी' आठ तरंगों में विभक्त है जिसमें कुल 7826 श्लोक है प्रारम्भ में छह तरंग छोटे तथा अन्तिम दो तरंग बहुत बड़े है, जिनमें आठवां तरंग, समस्त ग्रन्थ के आधे परिमाण से भी अधिक है। संक्षेप में इसके प्रत्येक तरंग के राजाओं का विवरण इस प्रकार है –

प्रथम तरंग – गोनन्द प्रथम से लेकर अन्ध युद्यिष्ठिर तक 75 राजाओं का विवरण है।

द्वितीय तरंग – 6 राजाओं के 192 वर्षो के शासन काल का अंकन किया गया है।

तृतीय तरंग – गोनन्दवंश के अन्तिम राजा बालादित्य तक दश राजाओं के 536 वर्षो के राज्यकाल का विवरण है।

चतुर्थ तरंग – 260 वर्षो तक राज्य करने वाले 17 राजाओं का इतिहास निरूपित है।

पंचम तरंग – अवन्तिवर्मा के राज्यारोहण के साथ उत्पथवंश के सूत्रपात का वर्णन तथा कल्यपालवंशज संकटवर्मा, सुगन्धादेवी और शंकरवर्धन के राज्यकाल का निरूपण है।

षष्ठ तरंग – 10 राजाओं के, 936 से 1003 ई. तक के शासनकाल का विवरण दिया गया है।

सप्तम तरंग – 6 राजाओं के सन् 1003 से 1101 ई. तक के समय का चित्रण है।

अष्टम तरंग –सातवाहन वंश के उच्चल, सुस्सल, मिक्षाचर और जयसिंह आदि राजाओं की जीवनगाथा तथा कृत्यों का प्रत्यक्षीकरण कराया गया है।

काव्यसौन्दर्य –

महाकवि कल्हण अमृतस्यन्दी सुकवि के गुणों की वन्दना करते हुए उन्हें कवि और वर्णनीय विषय दोनों को अमर कर देने वाला रसायन स्वीकार करते है।

वन्द्यः कोऽपि सुधास्यन्दास्कन्दी स सुकवेर्गुणः।

येन याति यशः कायः स्थैर्य स्वस्य परस्य च।। (राज. १/३)

महाकवि के अनुसार, जिनकी भुजाओं की छत्रछाया में समुद्र सहित यह धरती सुरक्षित रहती है, वे बडे–बड़े बलशाली राजागण जिसकी कृपा के बिना स्मरण भी नहीं किये जाते वह प्रकृति का सर्वोत्कृष्ट कविकर्म नमस्कार योग्य है –

भुजवनतरूच्छायां येषां निषेव्य महौजसां

जलधिरशनामेन्दियासीदसावकुतोभया।।

स्मृतिमपि न ते यान्ति क्ष्मापा बिना यदनुग्रहं

प्रकृतिमहते कुर्मस्तस्मै नमः कविकर्मणे।। (राज. १/४६)

हमारे आद्य इतिहास महाभारत की भांति राजतंरगिणी का अंगी रस 'शान्त' है। कल्हण, एक दार्शनिक की भांति संसार की क्षणभंगुरता पर विचार करते हुए काव्यशास्त्रीय दृढ़ता से 'शान्त' रस की सर्वोत्कृष्टता सिद्ध करते है –

क्षणभङ्गिनि जन्तूनां स्फुरिते परिचिन्तिते।

मूर्धाभिषेकः शास्तस्य रसस्यात्र विचार्यताम्।। (राज. १/२३)

कल्हण ने राजतरंगिणी में अपना काव्यकौशल प्रदर्शित करने और जीवन दर्शन को चित्रित करने के लिए इतिहास को माध्यम बनाया है।

राजतरंगिणी की परवर्ती परम्परा –

5. जोनराजकृत द्वितीय राजतरंगिणी –

कल्हण के पश्चात् 'राजतरंगिणी' के कथा–प्रवाह को परवर्ती कुछ कवियों ने आगे बढ़ाया। इनमें राजानक जोनराज का नाम अत्यधिक महत्वपूर्ण है। कल्हण ने कश्मीरनरेश जयसिंह तक का इतिवृत्त लिखा था, जोनराज ने उसके बाद से अपने समय के मुसलमान–शासक जैनुल–आब्दीन (1419 ई. से 1470 तक) के आरम्भिक इतिवृत्त तक इस क्रम को बनाए रखा, ये कश्मीरी ब्राह्मण थे इनका दूसरा नाम 'ज्योत्स्नाकार' भी था। इस तरंगिणी में तरंगों या सर्गो की योजना नहीं है इसकी शैली भी अपेक्षाकृत अधिक आधुनिक है। इन्होंने ऐतिहासिक–तथ्यों को यथावत् अंकित किया है, उन पर आलोचना, टिप्पणी या भाष्य आदि नहीं किया। फिर भी यह अपने ग्रन्थ को 'काव्यद्रुम' कहकर प्रस्तुत करते है

दर्पग्लानिभवां राजपान्थानां तापसन्ततिम्।

हर्तु संरोपितः काव्यद्रुमो भाविफलोदयः।। (जो. राज. श्लो. 8)

जोनराज की मृत्यु जैनुल–आबदीन के ही शासनकाल (1459 ई.) में हो गई थी।

6. श्रीवर तथा शुक की कृतियाँ –

जोनराज के बाद उनके शिष्य 'श्रीवर' ने सन् 1459 ई. से 1486 ई. तक के इतिहास का वर्णन कर अपनी (तृतीय–राजतरंगिणी) में किया। इसी दिशा में प्राज्यभट्ट ने 'राजावलिपताका' नाम से एक पृथक् ग्रन्थ लिखा था किन्तु वह उपलब्ध नहीं होता इसकी सूचना 'चतुर्थ–तरंगिणी' के रचयिता शुक से प्राप्त होती है

कविः श्री प्राज्यभट्टाख्यः समग्रगुणभूषितः।

राजावलिपताकां स्वां राज्ये फतिहभूपतेः।

एकोननवतिं यावद् त्यतीचक्रे ततः परम्।। (शुककृत चतुर्थ राज.)

शुक ने 1596 ई. तक का वर्णन किया है यह राजतरंगिणी का चौथा तथा अन्तिम प्रवाह है। इन सभी राजतरंगिणी का महत्व कल्हण की तरंगिणी के साथ ही है, स्वतन्त्र रूप से इनका अपना अस्तित्व ऐतिहासिक या साहित्यिक क्षेत्र में कोई विशेष पहचान नहीं बना पाता इसी कारण इनको राजतरंगिणी परवर्ती परम्परा में रखकर एक संक्षिप्त दृष्टिपात ही प्रस्तुत किया है।

7. सन्ध्याकरनन्दी रचित रामपालचरितम् महाकाव्य –

बारहवीं शताब्दी के उतरार्द्ध में इस महाकाव्य की रचना की गई। इसमें चार परिच्छेदों में दाशरथि राम तथा राजा रामपाल की कथा एक साथ प्रस्तुत की गई है।

सन्ध्याकरनन्दी महाराज रामपाल के पुत्र मदनपाल के शासनकाल में रहे, इनके पिता प्रजापति नन्दी महाराज रामपाल के मन्त्री थे। राजा रामपाल का इतिवृत्त इन्हें अपने पिता के प्रामाणिक ग्रन्थ के रूप में प्राप्त हुआ। इस प्रकार इस काव्य का ऐतिहासिक दृष्टि से भी महत्व है। रामपाल का शासनकाल 1017 ई. से 1120 ई. है।,

सम्पूर्ण काव्य में 220 आर्याएं है। चतुर्थ परिच्छेद के दसवें पद्य तक कवि ने भगवान राम तथा राजा रामपाल की कथा एक साथ कही है, उसके अनन्तर रामपाल के पुत्र कुमारपाल, पौत्र गोपाल तथा पुत्र मदनपाल क्रमशः राजा हुए, जिनका वृत्तान्त

कवि ने श्लेष के द्वारा भरत, शत्रुध्न और कुश के वृत्त निरूपण करते हुए प्रस्तुत कर दिया है। ऐतिहासिक दृष्टि से इस काव्य में बंगाल के पालवंशीय राजाओं के विषय में महत्वपूर्ण जानकारी मिलती है।

8. कुमारपाल अथवा द्वयाश्रय–काव्य –

कुमारपाल चरित अथवा द्वयाश्रयकाव्य के रचयिता गुर्जर देश के प्रसिद्ध जैनसूरि हेमचन्द्राचार्य (सन् 1089 ई. से 1173) ने 1163 ई. लगभग अणहिल पाटन के समसामयिक चालुक्यवंशी नरेश कुमारपाल के जीवनचरित आधारित यह काव्य है। दो भाषाओं का आश्रय लेने के कारण ही इसे 'द्वयाश्रयकाव्य' की संज्ञा प्राप्त हुई है। संस्कृत वाले अंश में बीस सर्ग है और बाद के प्राकृत अंश में आठ सर्ग है। काव्य के दोनों भागों का अध्ययन करने पर यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि कवि का लक्ष्य कुमारपाल के जीवनवृत्त के वर्णन के साथ–साथ संस्कृत और प्राकृत्त व्याकरण के उदाहरणों को प्रस्तुत करना भी है।

आचार्य का जन्म गुजरात में अहमदाबाद से साठ मील दूर दक्षिण–पश्चिम में स्थित 'धुन्धुका' नगर में सन् 1089 ई. के लगभग मोढ़–वैश्य–कुलोत्पन्न माता–पिता 'चाच' तथा पाहिणीदेवी के घर हुआ था इनके पिता शैव और माता जैन थी।

रचनाएँ –

इनके द्वारा रचित पंक्तियों की संख्या साढ़े तीन करोड़ बतलाई जाती है इनकी रचनाओं में त्रिपष्टिशलाकापुरूष चरित (पुराण), द्वात्रिंशिकाएँ, वीतरागस्तुति तथा महावीरस्तुति (स्तोत्र), सिद्वहेमशब्दानुशासन (व्याकरण), छन्दोऽनुशासन (छन्द), काव्यानुशासन (अंलकार), दर्शन (न्याय)–प्रमाणमीमांसा, योग–योगशास्त्र आदि प्रमुख है।

कुमारपाल चरित काव्य, व्याकरण, इतिहास, और काव्य–तीनों का संवाहक है [14] कवि ने ऋतुवर्णन, सन्धा, उषा एवं युद्ध आदि के दृश्य सजीव द्वयाश्रय काव्य के कुछ श्लोकों में इतिहास व व्याकरण का सामंजस्य अतीव रोचक बतलाया है। यथा –

तत्तद्धितं कर्तृभिरात्मभर्तुः समेत्य वृद्वैर्युवभिः क्षणाद्वा।

दुष्टैरथावन्तिभटैः स वप्रोऽध्यारोह्म भीर्तः रणतुर्यवाद्यात्।। (कुमार. 14, 37)

उक्त श्लोक मे इतिहास के रूप में अवन्तिभटों की स्थिति का वर्णन है। वे वृद्ध–युवा सभी अपने दुर्ग के परकोटे की रक्षा में लग गये और चालुक्य सेना के सामरिक नगाड़ों की आवाज से नहीं डरे। इस वर्णन में दीर्घकाल तक चलने वाले युद्ध की सुचना दी गई है।

इस प्रकार अति संक्षिप्त परिचय से भी संस्कृत ऐतिहासिक महाकाव्यों की परम्परा में 'कुमारपालचरित' के विशिष्ट स्थान का अनुमान सरलता से किया जा सकता है।

9. पृथ्वीराजविजय –

ब्यूहलर को संस्कृत पाण्डुलिपियों का अन्वेषण करते समय कश्मीर में सन् 1875 ई. में 'पृथ्वीराजविजय' नामक ऐतिहासिक महाकाव्य की एक खण्डित प्रति प्राप्त हुई थी। पाण्डुलिपि, भोजपत्र पर शारदालिपि में अंकित है, इस काव्य की यही एकमात्र पाण्डुलिपि विश्व में उपलब्ध है। इसी के आधार पर बंगाल की रॉयल–एशियाटिक–सोसायटी ने इसे प्रथम बार मुद्रित कर प्रकाशित किया। ग्रन्थ के आरम्भ या पुष्पिका में प्रणेता का नाम नहीं मिलता। केवल सर्ग–समाप्ति की सूचना मात्र मिलती है, इसलिए इसके कर्तृत्व के विषय में विद्वानों ने अनेक अनुमान किये हैं।

इस खण्डित काव्य पर, द्वितीय राजतरंगिणी के रचयिता कश्मीरी कवि, राजानक जोनराज की लिखी हुई टीका प्राप्त होती है। सप्तम सर्ग के अन्त में टीकाकारकृत एक उपसंहार पद्य में इसको काव्यराज कहकर सम्बोधित किया है किन्तु वहाँ भी इसके रचनाकार का उल्लेख नहीं मिलता –

श्रीलोलराजसुतपण्डितभट्टनोनराजात्मजो विवरणेन स जोनराजः।

सर्ग सुखं व्यधित सप्तममत्रपृथ्वीराजाख्यराजविजयाभिधकाव्यराजे।।

VII, उप. पद्य. 2

पृथ्वीराजविजय में कश्मीरी कवि 'जयानक' की उपस्थिति दिखलाई गई है। इस काव्य का वर्ण्य विषय पृथ्वीराज चौहान की विजय गाथा है। इन्होंने गजनी के मुहम्मद गोरी को पराजित किया था। यह विजय अवश्य ही सन् 1191 ईस्वी में तिरौरी बाला विजय है। सन् 1193 ई. में पुनः गोरी से युद्ध करते समय पृथ्वीराज की मृत्यु हो गयी थी, फलतः इसकी रचना इन्हीं दोनों वर्षों के अन्तराल में अर्थात् सन् 1192 में हुई ऐसा अनुमान किया जा सकता है।

इस काव्य से यह भी पता चलता है कि पूर्व–मध्यकाल में इतिहास लिखने की परम्परा प्रचलित थी। इसमें पृथ्वीभट्ट का उल्लेख मिलता है और कहा गया है कि उसने सैकड़ों इतिहासों की रचना की थी।

भारतवर्ष के अन्तिम और स्वतन्त्र हिन्दु सम्राट का वर्णन करने वाले इस काव्य के केवल बारह सर्ग ही उपलब्ध हुए हैं। इनमें से चार सर्गो में चाहमान (चौहान) वंश की प्रशस्ति है। इसके पश्चात् पृथ्वीराज का वृत्त आरम्भ होता है किन्तु उपलब्ध अंश में चरित नायक के विवाह की भी कथा पूरी नहीं हो पाती है।

ऐतिहासिक दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण होने के साथ–साथ इसका साहित्यिक–वैशिष्ट्य भी उतना ही विवेचनीय है –

लालनाताऽनविदामनुरज्यन्ति योषितः।

अतो यशः प्रतापाभ्यां भूमिस्तेन वशीकृता।।

अर्थात् स्त्रियां उन्हीं पर अनुरक्त होती है, जो लालन करना भी जानें और ताडन करना भी। इसलिए उस राजा ने यश और प्रताप दोनों से लक्ष्मी को वश में कर लिया था।

10. बसन्तविलास महाकाव्य –

'बसन्तविलास' चौदह सर्गों का ऐतिहासिक महाकाव्य है। इसका रचनाकाल संवत् 1196 से 1334 के मध्य या 13वीं शती का पूर्वार्द्ध माना जाता है[15]। इसके रचयिता बालचन्द्रसूरि नामक एक जैन मुनि हैं। बालचन्द्रसूरि ने अपना वृतान्त 'बसन्तविलास' के प्रथम सर्ग में दिया है, तदनुसार ये चन्द्रगच्छीय हरिभद्सूरि के शिष्य थे। इनके माता–पिता गुजरात के मोढ़ेरक ग्राम के निवासी ब्राह्मण थे। इनका बाल्यावस्था का नाम मुजांल था। माता–पिता की आज्ञा से अल्पवय में ही इन्होंने जैनधर्म की दीक्षा ग्रहण कर ली थी। कवि ने किन्हीं उदयसूरि नामक आचार्य से 'सारस्वत–मन्त्र' ग्रहण किया था।

महाकाव्य में धौलका (गुजरात) के राजा वीरधवल के प्रसिद्ध अमात्य वस्तुपाल के जीवनचरित का (उनके मन्त्रित्वकाल से लेकर स्वर्गवास तक का) वर्णन किया गया है वस्तुपाल का दूसरा नाम 'वसन्तपाल' भी था। इस महाकाव्य का अभिधान इसी नाम पर रखा गया हैं।

अनुष्दुप–वृत्त के परिमाण से गणना करने पर इसके कुल पद्यों की संख्या 1516 है। [16]

सामान्यता वैदर्भी और पांचाली रीतियों का ही अनुसरण किया है, किन्तु कहीं–कहीं प्रसंगानुसार गौडी रीति का भी सुन्दर सन्निवेश दिखलाई पड़ता है। ऐसे स्थलों में भाषा भी कुछ कृत्रिम हो गई है, उदाहरणार्थ –

सञ्चच्चच्छकटसङ्कटीभवन्मार्गपद्धितिरनुद्धताकृतिः।

सङ्धपङ्कजमुखीमुखोच्चरच्चर्चरीवपरीतदिङ्मुखः।। (10/30)

मारवाड़ के राजा तथा लूणसाक के बीच के युद्ध में वीरधवल की सहायता तथा इसी समय भृगुकच्छ के राजा का उसके राज्य को अरक्षित समझकर उस पर आक्रमण तथा उसमें वस्तुपाल द्वारा अप्रतिम साहस के साथ अपने राज्य की रक्षा का वर्णन ऐतिहासिक दृष्टि से विशेष महत्वपूर्ण है।

11. वस्तुपालविषयक अन्य महाकाव्य –

वसन्तविलास के कथानायक वस्तुपाल से तत्कालीन अनके कविगण प्रभावित रहे हैं। इस गुणग्राही, दानशील तथा उदात्तचरित्र मन्त्री के चरित्र को विश्रुत करने के लिए अन्य कवियों ने भी प्रशस्ति–परक काव्यों की रचना की। इनमें से अणहिलपाटल के चालुक्य–राजवंश के कुल–पुरोहित सोमेश्वरदत्त या सोमेश्वरदेव अग्रणी कहे जा सकते है। सोमेश्वर, वस्तुपाल के मित्र और आश्रित कवि थे। ये प्रसिद्ध वैदिक तथा कर्मकाण्डी ब्राह्मण परिवार में उत्पन्न हुए थे। वस्तुपालविषयक इनके काव्यग्रन्थ का नाम 'कीर्तिकौमुदी'' है। उनका समय सन् 1179 से 1262 ई. के बीच माना गया है। इनका लिखा हुआ एक अन्य ऐतिहासिक काव्य 'सुरथोत्सव' भी प्रसिद्ध है, जिसमें बाणभट्ट के समान इन्होंने अपना वृत्त भी लिखा है। इसमें पन्द्रह सर्ग है।

'सुकृतसंकीर्तन' इस विषय की दूसरी रचना है। इसके रचयिता अरिसिंह (1225 ई.) अमरचन्द के समकालीन तथा बीसलदेव के सभापण्डित थे। इसमें ग्यारह सर्ग हैं जिनमें वस्तुपाल द्वारा बनवाये मंदिरों का तथा उसके धार्मिक कृत्यों का वर्णन किया गया है। ऐतिहासिक दृष्टि से इसकी उपयोगिता सोमेश्वरदेव के लेखों की परख में सहायक होने के कारण मानी गई है[17]। उदयप्रभसूरि नामक एक अन्य जैन कवि ने भी 'धर्माभ्युदय' नामक काव्य का प्रणयन करके इस प्रशस्ति–क्रम को आगे बढ़ाया। उदयप्रभसूरि, वस्तुपाल के धर्मगुरू आचार्य विजयसेनसूरि के पक्षधर थे। वस्तुपाल को जैनियों ने संघपति की विश्रुति दी थी। इस कारण काव्य का दूसरा नाम संघपतिचरित भी है। इसमें 15 सर्ग हैं इस काव्य में घटनाओं के वर्णन का ही प्राधान्य है।

12. साहित्यरत्नाकर –

'साहित्यरत्नाकर' सत्रहवीं शताब्दी के कवि यज्ञनारायण दीक्षित का महाकाव्य है। इनके पिता का नाम गोविन्द दीक्षित और माता का नाम नागाम्बा था। इनके पिता चिरकाल तक तञ्जौर के राजा के मंत्री रहे।

साहित्यरत्नाकर महाकाव्य में उन्होंने राजा रघुनाथ का चरित्र उपनिबद्ध किया है। इस महाकाव्य में सोलह सर्ग है। इसके अन्तर्गत चोलनरेश उनकी राजधानी तञ्जापुर तथा तञ्जौर के नायकवंशीय राजाओं का उनके युद्धों का विस्तृत वर्णन किया गया है।

13. रघुनाथाभ्युदय महाकाव्य –

साहित्यरत्नाकर की भांति इस महाकाव्य में भी तञ्जौर नरेश रघुनाथ का ऐतिहासिक वृत्त प्रस्तुत किया गया है। इसकी रचयित्री रामभद्राम्बा है। यह कवियत्री राजा रघुनाथ की ही साहित्यसभा को विभूषित करती थी – यह इनके महाकाव्य की पुष्पिका से विदित होता है।

रघुनाथभ्युदय महाकाव्य में बारह सर्ग तथा 900 श्लोक है। साहित्यरत्नाकर महाकाव्य के ही समान तञ्जापुरी के वैभव और यहाँ के निवासियों के आचार–विचार का चित्रण कवयित्री ने आरम्भ में किया है। रघुनाथ नायक के धर्मव्यवहार और राज्यप्रबन्ध का आँखो देखा विवरण इस महाकाव्य में किया गया है।

प्रशस्तिपरकता और ऐतिहासिकता के सामंजस्य के साथ–साथ यह महाकाव्य कवयित्री की साहित्यिक प्रतिभा, रमणीय शैली और अलंकृत भाषा के प्रयोग वैदग्धी का भी परिचायक है।

राजस्थान के राजवंशो से सम्बद्ध ऐतिहासिक महाकाव्य –

राजस्थान के जयपुर, जोधपुर, बूँदी, और मेवाड़ राजवंशो पर अनेक प्रशस्तियाँ, लघु–काव्य तथा पद्यबद्ध–वंशावलियों आदि प्राप्त होती है, जिनका तत्–तद् राजकुलों के ऐतिहासिक परिज्ञान हेतु अपना महत्व है।

14. अजितोदय महाकाव्य –

ऐतिहासिक महाकाव्य की परम्परा में यह महाकाव्य महत्वपूर्ण माना जाता है। इसके रचयिता श्री जगजीवनभट्ट है। 32 सर्गो में निबद्ध यह महाकाव्य ई. सन् 1674 से 1724 तक का काल वर्णित है। इस ग्रन्थ में जसवन्तसिंह से लेकर अभयसिंह के विवाह तक का वर्णन है। यद्यपि यह एक ऐतिहासिक ग्रन्थ है। तथापि कई मुद्दों पर

इसमें तत्कालीन इतिहास ग्रन्थों से मतभेद है। जसवन्तसिंह के निधनोपरान्त जोधपुर पर कब्जा करने हेतु बादशाह ने खांजहांबहादुर को भेजा था (मआसिरे आलमगीरी) किन्तु अजितोदय ने इसका नाम बहादुर खाँ दिया है। इस महाकाव्य में लिखा है कि चाँदावत मोहकमसिंह की स्त्री ने अपनी दूधपीती कन्या अजीतसिंह की धाय को सौंप दी थी, और खुद बालक अजीतसिंह को लेकर मारवाड़ की तरफ रवाना हो गई थी, किन्तु सर यदुनाथ सरकार इस मत से सहमत नहीं है। उनका कथन है कि दुर्गादास लड़ाई के बीच से ही शिशु अजीतसिंह को उठाकर ले गया था। कर्नल टॉड के अनुसार शिशु को मिठाई के टोकरे में छिपाकर ले जाया गया था।

इस महाकाव्य का संपादन जोधपुर के मूल निवासी स्वर्गीय पंडित नित्यानन्द दाधीच ने किया था। इसका सर्वप्रथम प्रकाशन उम्मेद ओरियन्टल सीरिज के द्वारा 1980 में प्रकाशित किया गया।

15. अभयोदय महाकाव्य –

महाकवि श्री जगजीवन भट्ट की द्वितीय रचना अभयोदय महाकाव्य है। संभवतः अजितसिंह के बाद महाकवि ने इस महाकाव्य की रचना की जो पूर्णता को प्राप्त नहीं हुआ तथा यह अप्रकाशित है।

16. अमर काव्य –

मेवाड़ राजवंश पर कवि रणछोड़भट्ट ने दो महाकाव्यो का संगुम्फन किया, प्रथम अमरकाव्य और द्वितीय राजप्रशस्ति महाकाव्य है। अमरकाव्य मेवाड़ के राजवंश का क्रमबद्ध इतिहास है। रणछोड़भट्ट मेवाड के महाराणा जगतसिंह, राजसिंह और जयसिंह के समकालिक और आश्रित कवि थे। इसमें प्रारम्भ से महाराणा जगतसिंह (प्रथम) के राज्याभिषेक (संवत् 1709) तक का विवरण दिया गया है। इसके बाद का विवरण कवि ने अपनी दूसरी कृति राजप्रशस्ति महाकाव्य में किया है –

राजप्रशस्तौलिखितो निखिलोऽस्य पराक्रमः

यशस्कारिचरित्रोऽयं तत्र पश्यन्तु तत्कथा।। (अमरकाव्य 20/95)

इसका रचनाकाल सं. 1740 से 1750 विक्रमी तदनुसार सन् 1673 से 1693 के आसपास माना गया है। [18]

17. राजप्रशस्ति–महाकाव्य –

राजस्थान के उदयपुर नगर से चालीस मील दूर उत्तर में महाराणा राजसिंह प्रथम द्वारा निर्मित 'राजसभद्र' नामक एक अत्यन्त सुन्दर सरोवर है। इसकी लम्बाई चार मील और चौड़ाई 1¼ मील बना हुआ है। इसका बाँध धनुषाकार है। बाँध का एक भाग जो संगमरमर से बना हुआ 'नौचाकी' कहलाता है। 'नौचाकी' घाट में पच्चीस काले पत्थर की शिलाओं में देवनागरी लिपि में यह काव्य उत्कीर्ण है। यह भारत का सबसे बड़ा शिलालेख और शिलाओं पर खुदे हुए ग्रन्थों में सबसे बड़ा है।[19]

कवि रणछोड़ ने इस राजप्रशस्ति संज्ञक महाकाव्य को महाराणा राजसिंह की आज्ञा से लिखा था। इसमें चौबीस सर्ग तथा 1109 पद्य है। इसकी रचना का प्रारम्भ सं. 1718 (सन् 1661ई.) में माघकृष्ण सप्तमी को हुआ था। [20] किन्तु इसमें इसकी समाप्ति का वर्ष नहीं दिया इसके २३वें सर्ग में राजसिंह के उत्तराधिकारी महाराणा जयसिंह और मुगल बादशाह के बीच हुई सन्धि का वर्णन है। [21] यह सन्धि संवत् 1738 (सन् 1681) में हुई थी। [22] इस आधार पर इसका रचनाकाल संवत् संवत् 1718 से 1738 अर्थात् 1661 ई. से 1681 के बीच माना जा सकता है।

18. ईश्वरविलास–महाकाव्य –

यह काव्य सवाई जयसिंह के द्वितीय पुत्र महाराजा ईश्वरसिंह के इत्तिवृत को लेकर उन्हीं के आदेश पर लिखा इसके रचयिता कवि कलानिधि श्री कृष्णभट्ट हैं। इसमें जयपुर के राजवंश, सवाई जयसिंह के पराक्रम तथा ईश्वरसिंह के इतिवृत्त का वर्णन प्रौढ़ शैली तथा प्रांजल भाषा में किया गया है। इनकी कविता पदशय्या, अलंकार और रसादि काव्य–तत्वों से अत्यन्त समृद्ध है। सरस कविता की नावोढ़ा नायिका से उपमा देते हुए ये कहते हैं –

आस्थानविन्यस्तपदापि गाढ़ं संश्लेषहीनाप्यनलङ्कृताऽपि।

अयुक्तवाक्यापि भता नवोढ़ा–नारीव विज्ञैः कविता रसार्द्रा।। (ईश्वरचरित 1/5)

14 सर्गो के इस महाकाव्य में ईश्वरीसिंह (1743–50 ई.) द्वारा किए गए राजसूय का वर्णन है। इस महाकाव्य की पाण्डुलिपि जयपुर में न मिलकर पूना (महाराष्ट्र) के संग्रहालय में प्राप्त हुई। कालान्तर में इस पाण्डुलिपि को जयपुर से मंगाकर मुनिजिनविजय ने राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान से प्रकाशित करवाया था।

19. जयवंश महाकाव्य –

महाकवि सीताराम भट्ट पर्वणीकर रचित इस महाकाव्य का प्रकाशन एवं सम्पादन महाराज संस्कृत कॉलेज, जयपुर के पूर्व प्राचार्य पद्भूषण महामनीषी श्री पट्टाभिराम शास्त्री द्वारा सन् 1952 ई. में किया गया। कछवाहा राजाओं की सम्पूर्ण पीढ़ियों को पौराणिक काल्पनिक और ऐतिहासिक, इन तीन भागों में विभक्त किया गया है प्रथम दो भागों में वर्णित 264 पीढ़ियों का वर्णन निश्चयात्मक नहीं है, किन्तु तृतीय भाग की नरेश वंशावली इतिहास द्वारा परिपुष्ट है। सम्पूर्ण महाकाव्य में 19 सर्ग तथा 1674 श्लोक है। महाकवि ने प्रारम्भ में कालिदास के समान विनम्र निवदेन किया है।

कासौ पदार्थो जयवंश नामा काहं विमूढोडल्यमतिः प्रकामम्।

तद्वर्णनेच्छा भुवि सेयमस्ति सिन्धोस्तितीर्षेव लघ्वुप्लवेन।।

महाकवि ने इसके अतिरिक्त नृपविलासम्, नलविलास, राद्यवचरित्रम् और लघ्वुरघ्वुकाव्यम्, शिव सूर्यभैरवहरेम्बविष्णुहनुमद् विषयक् स्त्रोत, साहित्य सार साहित्यसुधा, काव्यप्रकाशटीका छन्द आदि 40 ग्रन्थों की रचना की है। [23]

20. कच्छवंश महाकाव्यम् –

यह महाकाव्य राजवैद्य श्री कृष्णराम भट्ट द्वारा रचित एक अप्रकाशित कृति है। राजवैद्य श्री कुन्दनराम के ज्येष्ठपुत्र श्री कृष्णराम भट्ट का जन्म संवत् 1905 ई. में कृ ष्णजन्माष्टमी के दिन जयपुर में हुआ था। इस महाकाव्य की एक खण्डित प्रति प्राप्त हुई है, जिसके अन्तर्गत 17 सर्ग तथा 63 पद्य उपलब्ध है। इस महाकाव्य के प्रथम, द्वितीय और तृतीय सर्ग में, पौराणिक, काल्पनिक तथा प्रामाणिक पीढ़ीयों का वर्णन है। तदन्तर क्रमशः काकिल राजदेव, भारमल्ल, मानसिंह प्रथम, जयसिंह, विष्णुसिंह

ईश्वरीसिंह, माधवसिंह का ललितवर्णन किया गया है। अन्त में सवाई रामसिंह का विवाह वर्णित है। (23)

21. मानवंश महाकाव्यम् –

वैयाकरण मूर्धन्य श्री सूर्यनारायण शास्त्री द्वारा रचित प्रस्तुत महाकाव्य के 17 सर्ग मात्र ही संस्कृत रत्नाकर पत्रिका के 17 अंको में प्रकाशित हुए है। इसमें कछवाहा वंशीय शासकों का इतिहास वर्णित है। [23]

22. भीमप्रबन्ध महाकाव्य –

महाराजा भीमसिंह कालीन भीम प्रबन्ध नामक ऐतिहासिक महाकाव्य पं. द्वारका दत्त भट्ट ने अपने पठित आलेख में इसे एक अप्रकाशित एवं महत्वपूर्ण ऐतिहासिक काव्य अभिहित किया है। इसमें तत्कालीन बीकानेर, जयपुर, उदयपुर, रतलाम, सीतामऊ एवं किशनगढ़ के अधिपत्तियों एवं घटनाओं का वर्णन है। इस महाकाव्य के प्रधान नायक द्वितीय राजकुमार स्वर्गवासी भौमसिंह जी के पुत्र भीमसिंह जी थे। राजाओं का प्रजा के साथ फाग खेलना एवं अन्तपुर की गुप्तचर व्यवस्था आदि सैकड़ों सन्दर्भ इस काव्य को ऐतिहासिक के साथ–साथ सांस्कृतिक दृष्टि से भी महत्वपूर्ण बनाते हैं।

बूँदी के हाड़ा राजाओं से सम्बद्ध ऐतिहासिक महाकाव्य

संस्कृत ऐतिहासिक महाकाव्य–परम्परा में चौहान राजाओं पर पाँच महाकाव्य उपलब्ध हैं। इनमें प्रकाशित महाकाव्य जयानक कृत पृथ्वीराज विजय, नयचन्द्र सूरिकृत हम्मीर महाकाव्य तथा चन्द्रशेखर कवि कृत सुर्जनचरित है। विश्वनाथ कृत शत्रुशल्यचरित महाकाव्य का सम्पादन डॉ. भोलाशंकर व्यास ने राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर ने इसे सन् 1996 में प्रकाशित किया है। भवानीशंकर व्यास कृत रामविलास महाकाव्य वर्तमान में अप्रकाशित है।

23. पृथ्वीराज विजय महाकाव्य –

महाकवि जयानक द्वारा रचित 'पृथ्वीराज विजय महाकाव्य' 12 शताब्दी A. D. की रचना है। महाकवि पृथ्वीराजतृतीय के (दिल्ली और अजमेर) कश्मीरी दरबारी कवि थे। इस महाकाव्य की एक मात्र प्रति ताड़पत्र पर लिखी स्वर्गीय जार्ज बूलर

को कश्मीर प्रान्त से सन् 1876 में प्राप्त हुई जो वर्तमान में पूना के डेकन कॉलेज में संग्रहित है। इस महाकाव्य का संपादन एवं प्रकाशन इतिहासज्ञ डॉ. गौरीशंकर हीराचन्द ओझा तथा पं. चन्द्रधर शर्मा गुलेरी ने सन् 1941 में अजमेर से किया इस महाकाव्य की खण्डित प्रति प्राप्त हुई है। जिसमें 12 सर्ग है जो अचानक पृथ्वीराज की विजय समारोह मनाने के अवसर पर समाप्त हो जाते है। इसके अन्तर्गत पृथ्वीराज के पूर्वज व उसके बाल्यकाल का विस्तृत वर्णन है। पृथ्वीराज विजय महाकाव्य, पृथ्वीराज के वैभव और विजय के तथ्यों से परिपूर्ण है।

24. हम्मीर महाकाव्य –

'हम्मीर महाकाव्य' के रचियता नयचन्द्रसूरि है। इसकी रचना ग्वालियर में हम्मीर की मृत्यु के 100 वर्ष पश्चात् 14वीं शताब्दी A. D. के प्रथम चतुर्थांश में की गई। [24]

हम्मीर महाकाव्य के प्रथम तथा द्वितीय सर्ग में चाहमान या चौहानवंश के उद्भव तथा इस वंश के हम्मीर पूर्व राजाओं का वर्णन है। हम्मीर महाकाव्य एक उत्तम कोटि का महाकाव्य है। यह एक विशुद्ध ऐतिहासिक राष्ट्रवीर की पावनतम कथा द्वारा अत्यन्त उदात्त और प्रेरणा–परिपूर्ण भारतीय भावना को उद्दीपित करने वाला वीराङ्क महाकाव्य है। इस महाकाव्य में उस राष्ट्र–नरवीर का यशोवर्णन है जिसने अपने राष्ट्र, धर्म, कुल और उच्च संस्कृति की रक्षा के निमित्त केवल अपने समय के ही नहीं, अपितु संसार के इतिहास के एक बहुत बड़े शक्तिशाली, महाक्रूर, धर्म–ध्वंसक और नृंशसतम मुसलमान आक्रन्ता के दुष्टतम आक्रमण को और नीचतम आक्रमण को बल और वचन से दुत्कार दिया था। उस राष्ट्रवीर ने भारतीय संस्कृति के सुवर्णमय शरीर और धर्मपरायण हृदय को अपने क्रूरातिक्रूर डंक द्वारा विषाक्त कर, राष्ट्र को प्राण–शेष करने के लिए प्रबल वेग से धँसे आने वाले काल –भुजंगम को, कठोर लता प्रहार द्वारा उछाल कर, रणथम्मौर के दुर्ग से अपमान के गर्त में फेंक दिया था। भारत का भाग्य–विधाता उस विराट पुरूष हम्मीर ने राष्ट्र के गौरव और धर्म की रक्षा के लिए अपने सर्वस्व का उल्लास पूर्वक बलिदान किया। 14 सर्गो के इस महाकाव्य में 1476 कुल पद्य संख्या है। प्रत्येक सर्ग के अन्त में किसी न किसी रूप में 'वीर' शब्द का प्रयोग किया गया है।

25. सुर्जनचरित महाकाव्य –

राव सुर्जन के राजकवि अम्बष्ठ चन्द्रशेखर ने 16 वीं शताब्दी में सुर्जन रचित महाकाव्य की रचना काशी में की थी। डॉ. चन्द्रधर शर्मा द्वारा हिन्दी भूमिका तथा अनुवाद के साथ सन् 1953 में संपादित होकर प्रकाशित हुआ है। इसमें 20 सर्ग है, प्रथम 12 सर्ग हाड़ाओं के पूर्वजों से संबद्ध है, जिसमें चाहुमान तथा वासुदेव से लेकर रणथम्भौर के हम्मीर तक का वर्णन है। यहाँ द्शम सर्ग में पृथ्वीराज तथा गौरी के युद्ध तथा बारहवें सर्ग में हम्मीर तथा अलाउद्दीन खिलजी के युद्ध का वर्णन है। तेरहवें सर्ग से बीसवें सर्ग तक राव सुर्जन के पूर्वज बूँदी के शासकों, सुर्जन के जन्म, विवाह, विजय आदि के बाद सत्रहवें सर्ग में रणथम्भौर को हस्तगत करने के लिए अकबर के आक्रमण, राव सुर्जन के साथ युद्ध, अठारहवें सर्ग में सुर्जन तथा अकबर का सन्धि, उन्नीसवें सर्ग में सुर्जन द्वारा काशी में निवास तथा चुनार की सूबेदारी स्वीकार कर लेने का वर्णन है।

अन्तिम सर्ग में राव सुर्जन के स्वर्गवास तथा उसके पुत्र भोजराज के राज्याधिरोहण से काव्य परिसमाप्ति होती है।

26. शत्रुशल्यचरित महाकाव्य –

महाकवि विश्वनाथ कृत शत्रुशल्यचरित महाकाव्य 22 सर्गो में निबद्ध ऐतिहासिक दृष्टि से उच्च कोटि का महाकाव्य है। इसका संपादन संस्कृत टीका तथा अँग्रेजी अनुवाद सहित डॉ. भोलाशंकर व्यास ने सन् 1996 में किया है। इसका समीक्षात्मक अध्ययन अभी तक प्राप्त नहीं है। यह प्रस्तुत शोध का विषय है।

27. रामविलास महाकाव्य –

कवि भवानीशंकर व्यास (19वीं शती वि.) कृत 'रामविलास महाकाव्य' 25 सर्गो का अप्रकाशित महाकाव्य है। इन्होंने कल्हण की राजतरंगिणी की शैली पर प्रसादगुण युक्त वैदर्भी में काव्य रचना की है। इस महाकाव्य में ऐतिहासिक तथ्यों का सटीक वर्णन है, जिनका आधार फारसी तवारीखें और बूंदी राज्य के अपने रोजनामचे है। इसमें बूंदी के शासकों के साथ मेवाड़, दिल्ली, आगरा, जयपुर, जोधपुर, कोटा आदि के साथ राजनैतिक संबंधों का विस्तार से वर्णन है। काव्य राजस्थान मे अँग्रेजों के

प्रवेश के साथ समाप्त होता है। इसमें 1895 वि. तक की घटनाओं का वर्णन है। दिल्ली पर मुहम्मद शाह रंगीले के समय नादिरशाह के आक्रमण लूट का मार्मिक वर्णन काव्य में मिलता है –

आगान्नादिरशाहिरुग्रकटकः काष्ठत्सरूप्रोल्लसत् –

खड्गः शुद्धकुरानपुस्तकलसच्चक्षुर्महाशासनः ।

ईरानक्षितितः सिताम्बरधरो लाहोरतोर्वागिति

नुत्वा दिल्ल्ययधिपो त्यमन्त्रयदमात्यैः खानदोरादिभिः । (18, 319)

इस काव्य में प्रायः अरबी–फारसी नामों का यथावत् प्रयोग मिलता है। काव्य के हस्तक्षेप के प्रपोत्र डॉ. भोलाशंकर व्यास के पास है, जो इसे संपादित कर प्रकाशित करने जा रहे है।

अन्य ऐतिहासिक महाकाव्य –

28. मूषकवंश –

यह उत्तर केरल के राजवंश का काव्यात्मक इतिहास है। इसके रचयिता का नाम अतुल है। महाकवि अतुल, बारहवीं शताब्दी के उतरार्द्ध में इस वंश के श्री कण्ठ या राजधर्म नामक राजा के आश्रित थे, उनके इस महाकाव्य के केवल 15 सर्ग ही प्राप्त होते है। यह ग्रन्थ महाराज पैलेस लाईब्रेरी त्रिवेनद्रम में संग्रहीत है। मूषकवंश–महाकाव्य का उपक्रम पौराणिक शैली में किया गया है। क्षत्रिय–निहन्ता परशुराम के द्वारा पति का वध कर दिये जाने पर हैहयकुल की कोई गर्भवती रानी मूषक–पर्वत में शरण लेकर रहने लगती है। वहाँ उससे जो पुत्र उत्पन्न होता है उसी के द्वारा 'मूषकवंश' नाम से नवीनकुल परम्परा आरम्भ होती है। उस प्रथम राजा का नाम भी 'मूषक रामद्यट' ही प्रसिद्ध होता है। इस प्रकार राजा मूषक रामद्यट के सम्राट बनने से राज्य–प्राप्ति तथा अपने पुत्र को युवराज पद पर अधिष्ठित करता है।

29. जगडूचरित –

महाकवि सर्वानन्द द्वारा रचित इस महाकाव्य की कथावस्तु पारम्परिक राजचरितों से भिन्न है। इस काव्य में 'जगडूशाह' नामक एक धार्मिक गृहस्थ को महाकाव्य का नायक बनाया गया है, क्योंकि उसने गुजरात के 1225 ई. से 1258 ई. तक के भीषण दुर्भिक्ष में अपना कोष लुटाकर, अन्नसन खोलकर, अनेकों कूपों आदि का निर्माण कर सामान्य जनता की प्राणरक्षा की थी। महाकाव्य में सात सर्ग है, इसमें अनेक लोकोत्तर और अतिमानुष–व्यापारों की कल्पना करके ग्रन्थकार ने जगडूशाह को एक दिव्य पुरूष बना दिया है। इस काव्य में जगडू के चरित की महनीयता का गान बड़े मनोयोग के साथ किया गया है। तथा उसकी कीर्ति के वर्णन में सटीक विशेषणों और उपमानों का प्रयोग किया है यथा –

गङ्गातत्रङ्विमलेन यशोभरेण दानोद्रभवेन किल कल्पशतस्थिरेण।

एकस्त्रिलोकमखिलं धवलीचकार धिक्कारकृतकलिरिपोर्जगडूर्विवेकी।। (1/9)

30. मधुराविजय या वीरकम्परायचरित –

इसकी रचयित्री गंगा देवी है। यह विजय नगर के महाराज कम्पण या कम्पराय की रानी थी। इस काव्य में इन्होंने अपने पति को ही नायक बना कर उनके पराक्रमपूर्ण कार्यों का ओजस्वी चित्रण किया है। इस दृष्टि से इस काव्य की ऐतिहासिक प्रमाणिकता अत्यधिक बढ़ जाती है। वीर कम्पराय की मृत्यु सन् 1377 ई. में हुई थी। अतः इस काव्य की रचना, इससे 5 – 10 वर्ष पूर्व ही हुई होगी। यह काव्य कुछ अधूरा सा प्रतीत होता है। इसका प्रकाशन प. हरिहर शास्त्री एवं श्रीनिवास शास्त्री के सम्पादकत्व में सन् 1916 में त्रिवेन्द्रम से हुआ है। सम्प्रति इसके आठ सर्ग ही प्राप्त होते हैं। कवयित्री गंगा देवी की ऐतिहासिक यर्थाथपरता और ह्रदय की स्वभाविक सरसता का मणिकांचन संयोग इस काव्य में प्राप्त होता है।

31. महाचोलराजीय –

इसका दूसरा नाम कवि ''कर्णरसायन'' भी है। इसके रचयिता उद्धण्डदेव के शिष्य षडक्षरीदेव हैं जो पन्द्रहवीं शताब्दी के पूर्वाद्ध में हुए थे। इस महाकाव्य के 10 सर्ग माने गये हैं। जिसमें कवि ने चोल राजाओं का ऐतिहासिक वर्णन सरस शैली में

उपनिबद्ध किया है। सम्प्रति इस काव्य में केवल 2 सर्ग प्राप्त होते हैं। जो मैसूर के ग्रन्थागार में सुरक्षित है। [25]

32. सलुवाभ्युदय –

इस महाकाव्य का रचना काल पन्द्रहवीं शताब्दी का उत्तरार्ध है। महाकवि राजनाथ द्वारा रचित यह महाकाव्य 13 सर्ग युक्त है। इसके अन्तर्गत उक्त राजा का पराक्रम वर्णित है। साथ ही कवि ने अपने आश्रयदाता, राजा 'सलुव' के पूर्वजों की चरितावली भी इसमें उपनिबद्ध की है। इस महाकाव्य का प्रकाशन मद्रास से हो चुका है। [25]

33. विशाखविजय –

राजचरित प्रधान महाकाव्यों में केरलवर्म वलिय कोइतम्बूरान का विशाखविजय नामक महाकाव्य भी एक स्पृहणीय कृति है। इसका रचनाकाल सन् 1845 से 1915 के बीच माना गया है। काव्य में 20 सर्ग हैं। कवि ने अपने समकालिक नरेश विशाल –तिरूनाल के जीवनवृत्त को ललित शैली में प्रस्तुत किया है। रचना–पद्धति में महाकवि कालिदास तथा माघ का प्रभाव परिलक्षित होता है। यमक का एक उदाहरण द्रष्टव्य है –

जनमदारयदाशुगैरिहरसालरसालसकोकिले।

परभुदारमुदारमणीजुषोरसमये समये समनोभव।। [26]

34. शिवभारत महाकाव्य –

शिवाजी के समकालीन महाकवि कवीन्द्रपरमानन्द द्वारा रचित ''शिवभारत महाकाव्य'' प्रामाणिकता की दृष्टि से सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। दुर्भाग्य से यह महाकाव्य भी असम्पूर्ण ही उपलब्ध हुआ है। इसमें 32 अध्याय है जिसमें 31 पूर्ण और 32 वाँ त्रुटित है। इस 32 अध्यायों में शिवाजी के पूर्वपुरूष मालोजी के वर्णन से उपक्रान्त कर शिवाजी के द्वारा सूर्यराज के शृंगारपुर को अधिकृत कर वहां त्रयम्बक भास्कर राव को अधिकारी नियुक्त करने तक का वर्णन मिलता है। इसकी रचना शक संवत् 1583 (सन् 1661 ई.) के बाद तथा महाराज शिवाजी के राज्यारोहण से पूर्व हुई प्रतीत होती है। [27]

35. शम्भुराजचरितम् –

इस ऐतिहासिक महाकाव्य के रचियता 'हरिकवि' है। 'शम्भुराजचरितम्' में कवि ने शिवाजी के पुत्र शम्भाजी का चरित्र निरूपित किया है।

.....********.....

1. संस्कृत वाङ्मय का बृहद इतिहास–चतुर्थ खण्ड (काव्य)

   प्रधानसम्पादक – पद्मभूषण आचार्य श्री बलदेव उपाध्याय

   सम्पादक – प्रो. राधावल्लभ त्रिपाठी पृ.सं. 248

2. कीथ – संस्कृत साहित्य का इतिहास (अनुवादक –मंगलदेव शास्त्री)

   मोतीलाल, बनारसीदास, वाराणसी द्वितीय संस्करण 1967, पृ.सं. 180–188

3. कल्हण – राजतरंगिणी प्रथमतंरग 13, 17, 18, 19 आदि एवं पद्य (सं. रद्युनाथसिंह) हिन्दी प्रचारक संस्थान, वाराणसी प्रथम आवृत्ति 1970

4. दृग्गोचरं पूर्वसूरिग्रन्था राजकथाश्रयाः

   मम त्वेकादश गता मतं नीलमुनेरपि।। (राजतरंगिणी १/४)

5. छान्दोग्य उपनिषद् – 7। 1। 2

   ऋग्वेदं भगवोऽध्येमि ..... यजुर्वेदं सामवेदमाथर्वणं चतुर्थमितिहासपुराणं

   पञ्चमं वेदानां वेदम् .....।

6. गिरिनार शिलालेख (950 ई.) नासिक शिलालेख (149 ई.) हरिषेण की प्रयागप्रशस्ति (350 ई. से पूर्व.) स्कन्दगुप्त का गिरिनार शिलालेख (457 ई.) वत्सभट्टि की मन्दसौर प्रशस्ति (473 ई.) आदि।

7. श्री टी. गणपति ग्रन्थ ने सन् 1925 (1725) ई. में आर्यमंजुश्रीकल्प नामक एक बौद्ध ऐतिहासिक ग्रन्थ का पता लगाया था। इसके लेखक का नाम नहीं मिलता यह

महायान बौद्ध–समप्रदाय का ग्रन्थ है, इसमें लगभग 700 ईसवी पूर्व से लेकर 770 ई. तक के सम्राटों का इतिहास दिया गया है।

(कपिलदेव द्विवेदी – संस्कृत साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास, पृ.सं. 594)

8. चन्द्रशेखर पाण्डेय – संस्कृत साहित्य की रूपरेखा (चतुर्दश संस्करण) पृ.सं. 347

9. पं. उपाध्याय – संस्कृत साहित्य का इतिहास (दशम संस्करण), पृ.सं. 259

10. दिवं यियासुर्मम वाचि मुद्रामदत्त यां वाक्पतिराजदेवः।

तस्यानुजन्मा कविबान्धवस्य भिनत्ति तां सम्प्रति सिन्धुराजः।। (नवसाहसांकच १/८) एंशेटं हिस्टोरियंस आफ इण्डिया, पृ.सं. 150-52

11. इस समय के विषय में विद्वानों में थोड़ा अन्तर देखा जाता है। डॉ. कीथ इसका शासनकाल 1078 से 1127 ई. लिखते है जबकि मुरारीलाल नागर के अनुसार यह समय 1076 से 1127 ई. होना चाहिए। पं. विश्वनाथ भारद्वाज अपनी भूमिका में इस समय को 1026 से 1127 ई. स्वीकार करते है। (डॉ. कीथ का संस्कृत साहित्य का इतिहास अनुवादक – मंगलदेव शास्त्री पृ.सं. 191)

12. श्री मुरारीलाल नागर के संस्करण का परिशिष्ट ''व'' तथा पं. भारद्वाज के संस्करण प्रथम भाग (1956) की संस्कृत भूमिका, पृ.सं. 1 डॉ. विश्वम्भरसहाय पाठक के अनुसार विक्रमाङ्कदेवचरित की रचना 1083 से 1089 ई. के मध्य हुई।

(Ancient Historilcians of India p. 61)

13. (क) इति श्रीकाश्मीरकमहामात्य चम्पक प्रभुसनोः कल्हणस्य कृतौ राजतरङ्गिण्यां प्रथमस्तरंरग

(ख) इति श्रीकाश्मीरकचण्डकप्रभुसूनो चम्पक प्रभुसनोः कल्हणस्य द्वितीस्तरंगः।

14. भगवतशरण उपाध्याय – विश्वसाहित्य की रूपरेखा उद्धृति – मुसलगांवकर, आचार्य हेमचन्द्र, पृ.सं. 47

15. श्याम शंकर दीक्षित – तेरहवीं चौदहवीं शताब्दी के जैन महाकाव्य (प्र. मलिक एण्ड कम्पनी जयपुर सन् 1969) पृ.सं. 145 तथा 148 एवं पं. उपाध्याय – सं. सा. का इति. पृ.सं. – 278

16. श्याम शंकर दीक्षित – तेरहवीं चौदहवीं शताब्दी के जैन महाकाव्य (प्र. मलिक एण्ड कम्पनी जयपुर सन् 1969) पृ.सं. 149

17. कीथ – संस्कृत साहित्य का इतिहास (अनु. मंगल) पृ.सं. 218

18. डॉ. राजेन्द्र प्रसाद भटनागर की भूमिका, अमरकाव्य (सा. सं राजस्थान विद्यापीठ, उदयपुर) पृ.सं. 10

19. राजप्रशस्ति महाकाव्य – भूमिका पृ.सं. 9 (साहित्य संस्थान राजस्थान – विद्यापीठ, उदयपुर, सन् 1973)

20. राजप्रशस्ति – प्रथम सर्ग, पद्य 101

21. राजप्रशस्ति – सर्ग–7, 24 पद्य 32 से 56 तक

22. डॉ. ओझा – उदयपुर राज्य का इतिहास, दूसरा भाग पृ.सं. 586–589

23. संस्कृत साहित्य का इतिहास – डॉ. जगन्नारायण पाण्डेय पृ.सं. 102–104

24. शत्रुशल्यचरित – महाकवि विश्वनाथ पृ.सं. 13, 14 भूमिका

25. डॉ. रामजी उपाध्याय – संस्कृत साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास पृ.सं. 447

26. डॉ. हीरालाल शुक्ल – आधुनिक संस्कृत साहित्य।

(पादटिप्पणी) (रचना प्रकाशन, इलाहाबाद सन् 1970 पृ.सं. 21)

27. दे. शिवभारत (संस्कृत मूल और मराठी भाषान्तर) (सम्पादक सदाशिव महादेव दिवाकर) भारत इतिहास संशोधक मण्डल, पुणे, सन् 1927 में मराठी भूमिका 'उपोद्रद्यात' (पृ.सं. 20)

तृतीय अध्याय

ऐतिहासिक काव्यशास्त्रीय लक्षणों के आधार पर 'शत्रुशल्यचरित' का महाकाव्यत्व

संस्कृत काव्यशास्त्र में अनेक प्राचीन आचार्यों भरत, भामह, दण्डी, रूद्रट, आनन्दवर्धन, हेमचन्द्र, मम्मट आदि ने महाकाव्य के लक्षण निरूपित किए हैं, परन्तु सर्वाधिक सुसंगत एवं समीचीन लक्षण आचार्य विश्वनाथ का ही माना जाता है। इनके महाकाव्य लक्षण में प्रायः सभी आचार्यों की मान्यताओं का समाहार है अतः 'शत्रुशल्यचरित' के महाकाव्यत्व का विवेचन आचार्य विश्वनाथ के लक्षण के आधार पर निम्नांकित है –

1. महाकवि विश्वनाथ के अनुसार महाकाव्य की कथावस्तु सर्गों में विभाजित होनी चाहिए।[1] महाकवि विश्वनाथ प्रणीत 'शत्रुशल्यचरित' में 22 सर्ग हैं। यह दो भागों में विभक्त है। 1 से 12 प्रथम भाग और 13 से 22 द्वितीय भाग है।

2. महाकाव्य का नायक कोई देवता अथवा धीरोदात्त गुणों से युक्त कोई उच्च कुलोत्पन्न क्षत्रिय होना चाहिए। एक ही वंश में उत्पन्न एकाधिक राजा भी इसके नायक हो सकते है। [2]

'शत्रुशल्यचरित' में नायक उच्चकुलीन सूर्यवंशी क्षत्रिय है इसके अन्तर्गत चौहान वंश में उत्पन्न वासुदेव, अस्थिपाल चन्द्रराज, नारायणदास, सूर्यमल्ल, सुर्जन, महाराज श्री दुर्योधन, भोजदेव, रत्नराज आदि अनके नायकों का भी उल्लेख किया गया है। इसके कुछ उदाहरण निम्न है –

देवोरविः पद्मवनीवतंसः

परं समुल्लासित राजहंसः।

अर्थव्रजस्तेनतमोनृशंसः

कुर्याद्रद्रूतम्मे विमलां दृशं सः ।। शत्रु. 1/7

अर्थात् प्रकाशमान व देवताओं की आत्मा, भगवान भास्कर की भाँति सूर्योकुलोत्पन्न राजा शत्रुशल्य के आते ही, समस्त यवन आदि नृशंस व निष्कृप राजा समाप्त हो जाते हैं और कमल वाटिकाओं में राजहंस अत्यधिक समुल्लासित रहते हैं।

औदार्यशौर्यादिगुणैकभाण्डे

तस्यान्ववायेऽम्बुनिधाविवेन्द्रुः।

प्रसोष्ट सम्पूजित वासुदेव

श्री वासुदेवो वसुधादिदेवः ।। शत्रु. 2/1

उदारता, दानवीरता, शौर्यादि गुणों से युक्त चाहुवान वंश में उत्पन्न, चन्द्रमा के समान पृथ्वी का प्रधान राजा, जाति से ब्राह्मण, विष्णु के समान पूज्य 'श्री वासुदेव' नामक राजा हुआ।

हत्वा दैत्यं धोरमात्मंभरिं त –

मङ्गीकुर्वन् ब्राह्मरगाऽऽशीर्वचांसि।।

आशापुरां तां कुलस्यादिदेवीं

नत्वा प्रायात् स्वान् गृहाँश्चान्द्रसेनिः।। शत्रु. 3/41

आलिङ्गयाऽमुं भूपतिश्चन्द्रसेनो

विप्रौघेभ्यश्चाऽऽशु दत्वा वसूनि।।

देव्यादत्त तञ्च नाम्नाऽस्थिपालं

चक्रे पुत्रं सच्चरित्रं विचित्रम् ।। शत्रु. 3/42

वह चन्द्रसेन का पुत्र अस्थिपाल को मारकर देवी को प्रणाम कर स्वगृहे आगमन किया, वह राजा चन्द्रसेन अपने पुत्र को जीवित प्राप्त करके प्रसन्न हो

आलिंगन किया और शीघ्र ही ब्राह्मणों को अत्यधिक धन देकर देवी के वरदान के कारण उस दैत्य अस्थिपाल का वध करने में समर्थ होने के कारण उसका नाम अस्थिपाल रख दिया।

अस्थिपालनृपतेरथ तस्या –

च्चन्द्रराज उद्भूद्वनीशः।

पक्षयुग्ममहनीय सुमूर्ति

श्चन्द्रमप्यतिशयान उदैद्यः ।। शत्रु. 4/1

अस्थिपाल के पश्चात् चन्द्रराज नामक राजा हुआ। वह चन्द्रराज चन्द्रमा से भी अत्यधिक सुन्दर शत्रु एवं मित्र दोनों में ही आदरणीय, दानवीर शत्रुओं के लिए अत्यन्त क्रूर और सज्जनों के लिए दयावान था।

श्री देव भूपतिसुतोऽथ बभूव वीरो

धीरोद्धतः समरसिंह इति क्षितीशः।

पित्र्यं पदं समधिगम्य परं धुरीणः

क्षोणीमिमायभुनगेक पुरीमिवोच्चैः ।। शत्रु. 5/1

महाकवि विश्वनाथ कहते है कि राजा देव के पुत्र धीर, उद्वत, प्रचण्ड राजा समरसिंह ने पृथ्वी का राज्यभार संभाला। वह पिता के समान ही पराक्रमी वंश परम्परा से प्राप्त राज्यलक्ष्मी को प्राप्त कर एक चक्रवर्ती राजा के रूप में प्रतिष्ठित हुआ।

अथ तत्तनुऽद्रिमण्डले

नृपनारायणदास नामकः ।

पितुरेष निशम्य वैशसं

सुनृशंसाद्यवनाद्रुषं दधौ ।। शत्रु. 6/1

इसके बाद मण्डल पर्वत पर नारायणदास नामक राजा म्लेच्छों के द्वारा अपने पिता (भारमल्ल) की नृंशस हत्या को सुनकर अत्यधिक क्रोध युक्त हो जाता है और तरूणावस्था होने पर भी यवनों को जीतने के लिए निश्चय कर लेता है।

अथ सूर्यमल्ल इति तस्यसुता

जनतोषकृत् समभवन्नृपतिः।

कर तेजसा पर तमो निवहं

शमयन् परं विमलयन् हरितः ।। शत्रु. 7/1

महाकवि विश्वनाथ कहते है कि तदन्तर नारायण दास का पुत्र सूर्यमल्ल राजा हुआ जो अपने बाहुप्रताप से शत्रुरूपी अन्धकार समूह का नाश कर सम्पूर्ण दिशा को प्रकाशित करने वाला था।

अथाऽऽर्जुनिः सुर्जनदेवभूपः

स दुर्जनानां किल कालरात्रिः।

मही महेन्द्र कटकायमानां

परं स्वपाणौ दधदुच्चकाशे।। शत्रु. 8/1

महाकवि कहते है कि सुरताण के बाद वह सुर्जनदेव राजा हुआ, दुर्जनों का विनाश करने वाला, इन्द्र के समान था अपनी भुजाओं में पृथ्वी को धारण करता हुआ अत्यधिक ऊँचे आकाश में देदीप्यमान था।

अथ दुर्योधनो वीरो रोषोत्कर्षाऽरूणेक्षण ।

बाणवर्षानयं कुर्वन् समराङ्गणमामयौ ।। शत्रु. 9/24

दुर्योधन भी एक क्षत्रिय था युद्ध भूमि का वर्णन करते हुए महाकवि कहते है कि रक्त नेत्रों वाला, वह दुर्योधन क्रोधित होकर, बाणों की वृष्टि करता हुआ समर (युद्ध) भूमि में आ जाता है।

अथ स भोजनृपो गुरू सुर्जनात्

समधिगम्य महीं महती क्षणात्।

चिरतरं विरराज दिनात्यये

दिनभणर्वरभासमिवाऽनलः ।। शत्रु. 10/1

सुर्जन के ज्येष्ठ पुत्र दुर्योधन के पश्चात दुर्योधन का लघुभ्राता भोजदेव दीर्धकाल तक विस्तृत राज्य का उपभोग करता हुआ, प्रातः–काल सूर्य की आभा के समान सुशोभित हुआ।

परं गुर्वीमुर्वी दधदथ सुदुर्वीरदमन –

स्त्रिलोकीनिः शोकीकरणतिलकीभूतचरितः।

प्रजापुञ्जं भुञ्जन् स्वभुजयशसाऽञ्जन्

जनदृशोऽप्ययत्नं श्री रत्नो व्यजरत चिरत्नानपि नृपान।। शत्रु. 11/1

महान पृथ्वी को धारण किए हुए, दुष्टों का दमन करने के लिए, त्रिलोक शोक–निवारण हेतु तिलक रूपी अलंकार से सुशोभित, उन्नत चरित्र वाले श्री राम के समान, भोज के पुत्र रावरत्न ने अपनी भुजाओं से कीर्ति के लिए प्रजा का पालन किया।

3. साहित्यदर्पणकार महाकवि विश्वनाथ के अनुसार महाकाव्य में श्रृंगार, वीर, और करूण रसों में से कोई एक प्रधान तथा शेष रस गौण होने चाहिए।

''शत्रुशल्यचरित'' में प्रारम्भ से अन्त तक युद्धादि का वर्णन है अतः यह वीर रस प्रधान महाकाव्य है। श्रृंगार आदि रसों का अंगरूप से प्रयोग किया गया है।

वीर रस के चार भेद माने गए है– दानवीर, धर्मवीर, युद्धवीर एवं दयावीर ''शत्रुशल्यचरित' में इन चारों का बहुतायत वर्णन प्राप्त होता है।

दानवीर –

धनानि वसांसि गजास्तुरंग।

भुजार्जिता भूमिरिदं च राज्यम्।

प्रियस्तु देहोऽपि ममाऽस्ति देयो

यशस्तु दातुं कृपणोऽध्येकम् ।। शत्रु. 8/75

इति ब्रुवन्नेव स दानवीरो

दिनेशवंशदय मणिर्नपालः।

विधाय सदयोऽकबरस्य पूजां

गिरि रणस्तम्भमस्त तस्मै ।। शत्रु. 8/76

''शत्रुशल्यचरित'' में महाराजा सुर्जनदेव के वर्णन–प्रसंग में दानवीरता को प्रदर्शित किया है।

धन, वस्त्र, हाथी, घोड़े, जीते गए राज्य इतना ही नही, अपना शरीर भी मैं दान में दे सकता हुँ किन्तु मैं केवल अपना यश देने में अत्यधिक कृपण हुँ । इस प्रकार कहकर दानवीर सूर्यवंशी वह राजा सुर्जन अकबर का सम्मान करके उसे रणथम्भौर दुर्ग भी दे देता है।

धर्मवीर –

म्लेच्छक्षोणीपाल संवर्त कल्की

श्री गोपालो देव दुर्ग गृहीत्वा

आसेरीं संविश्य शंसन्नमन्द –

माशापूरां तत्र देवीं ववन्दे ।। शत्रु. 3/16

विधर्मी राजा को नष्ट करता हुआ, कल्कि अवतार स्वरूप वह राजा गोपाल देवगिरि को अपने अधीन कर और उस दुर्ग में प्रवेश कर आशापुरा नामक देवी की स्तुति करता है।

यह देवी चौहानवंश की कुलदेवी है।

युद्धवीर –

ग्रसति तदसाविशं युद्धे भटान् समरोत्कटा –

नथयुधि दधच्छस्त्रीं शस्त्री करेऽक्षयराजकः।

सपदि निकषा दन्तैरोष्ठं कषन्निकषात्मजो।

रघुपतिमिव प्रायाच्छत्रुक्षयमबुन्दिपम्।। शत्रु. 20/93

महाकवि कहते है कि युद्ध में शत्रुशल्य की तलवार ने अनेक शत्रुओं को मार दिया। शस्त्रवान मऊ राजा के सेनापति अक्षयराज के दन्त और औष्ठ कम्पित हो गए। वह शत्रुशल्य राम की तरह शत्रुओं का दमन करता हुआ बून्दी नगरी के पास आता है।

दयावीर –

कल्पयन्नतिवनीयककामान्

कल्पशाखिनमथाऽकृत सोऽल्पम्।

ईप्सितं बहु ददत् किल चिन्ता

रत्नेमेव स चकार सचिन्तम्।। शत्रु. 4/4

अतिविनय वह राजा चन्द्रराज कल्पवृक्ष से भी अत्यधिक याचकों की अभिलाषाओं की पूर्ति करता था। कल्पवृक्ष की शाखाएँ न्यून आकृति धारण कर, ईष्यावश बहुत देती है और यह चन्द्रराज दयावीर चिन्तारहित होकर चिंतामणि भी दे देता है।

अंगीरस श्रृंगार –

कुचौ कृशाङ्ग्याः कलशौ नु काञ्चनौ

तपः परार्धैः सुलभौ रसौम्भितौ ।

स्मरस्य यन्मेचकचूचूकच्छला –

न्मवीयमुद्राऽत्र रहस्यशंसिनी ।। शत्रु. 16/136

महाकवि विश्वनाथ ने महाकाव्य के अंगरूप में श्रृंगार रस सुस्पष्ट है। यहाँ नायिका श्यामा के अंगो का वर्णन करते हुए कहते है कि दूसरों की तपश्चर्या सुलभ होती है, राग के जल से पूर्ण कृशांगी श्यामा के स्तनों की स्वर्णमयी कलश की भाँति प्रशंसा करनी चाहिए, क्योंकि यहाँ काले स्तन इन्द्रनील रत्न, छलपूर्वक कामदेव की स्याही सम्बन्धिनी मुद्रा है।

4. महाकवि विश्वनाथ के अनुसार महाकाव्य में मुखप्रतिमुख आदि सभी नाट्य सन्धियाँ होनी चाहिए।

''शत्रुशल्यचरित'' में मुख – प्रतिमुख, गर्भ, सावमर्श और उपसंहति आदि सभी सन्धियों का यथा–स्थान प्रयोग किया गया है।

आरूढः सदुदयमन्वहं स भास्वान्

स्वीयोद्यत्करबिभवप्रकाशिताशः।

श्री रत्नक्षितिपनिषिक्त यौवराज्य

स्तेजांसि व्यजयत तत्क्षणात्परेवाम् ।। शत्रु. 13/1

महाकवि नाट्य सन्धि में बीज रूप का प्रयोग करते हुए कहते हैं कि जिस प्रकार सूर्य पर्वत पर आरूढ होकर किरणों को फैलाकर प्रकाशित होता है उसी प्रकार तेजस्वी रत्नसिंह से युवराज पद को प्राप्त कर अपने प्रताप से शत्रुओं के तेज को नष्ट करने लगा।

5. महाकाव्य का कथानक कोरी कल्पना प्रसूत न होकर ऐतिहासिक अथवा किसी महापुरूष के जीवन से सम्बद्ध होना चाहिए।

'शत्रुशल्यचरित' एक ऐतिहासिक महाकाव्य है, इसका कथानक कल्पना प्रसूत नहीं है तथा चौहानवंश में उत्पन्न राजाओं का तथा विशेष रूप से इतिहास प्रसिद्ध बून्दी के महाराजा 'शत्रुशल्य' के जीवन चरित्र का विशद वर्णन है।

कीर्तिशोभितकुलः शुभशीलः

शोषिताऽरिजलधी रणधीरः।

वाऽवायित लसद् गुरूकोपः

सोपमानमसविष्ट स रेणुम् ।। शत्रु. 4/7

वह आर्तिहरण रेणुसिंह नाम से इतिहास में देशीभाषा में 'रेणसी' इति उपमान से प्रसिद्ध पुत्र को उत्पन्न किया, जो यश से अलंकृत कुल वाला, शील चरित्र युक्त, युद्ध में धैर्यशाली स्थिर और गम्भीर व्यक्तित्व वाला था। ब्राह्मणों के समूह से युक्त, गुरू कोप से आविष्ट क्रोधित स्वभाव वाला था।

आक्रामन्निजभुज तेजसांऽजसाऽसौ

दुर्वीरान् विदधदपि प्रजासु नीतिम्।

स्वाधीनामपि वसुधामनीतियुक्ता

मश्रान्तं रचयति चित्रमुच्चकैस्तत्।। शत्रु. 13/2

महाकवि कहते है कि भुजाओं के पराक्रम से, दुष्टों पर आक्रमण कर वशीभूत करने वाला, वह शत्रुशल्य प्रजाओं में नीति का विस्तार करने लगा। अपने अधीन भी अश्रान्त भूमि की युक्ति–युक्त रचना करने लगा।

6. महाकाव्य में धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष इन चारों पुरूषार्थो का वर्णन होना चाहिए। परन्तु इनमें एक महाकाव्य का फल होना चाहिए।

ऐतिहासिक महाकाव्य शत्रुशल्यचरित में चाहुवान वंश के गुणों का बखान है तथापि यथावसर चारों पुरूषार्थो का तथा विशेष रूप से अर्थ नामक पुरूषार्थ का वर्णन किया गया है, क्योंकि इसमें वर्णित सभी राजाओं का प्रमुख उद्देश्य अपने शौर्य व पराक्रम द्वारा राज्य का विस्तार प्रजाजनों का पालन व शत्रुओं से युद्ध करना रहा है।

हासः कलानां प्रबभूवयस्मिन्

दोषाकरस्यैव न तु प्रजानाम्।

नीचानुगत्वं पयसां तथाऽऽसीत्

पङ्केरूहाणाञ्च जडैकसङ्गः।। शत्रु. 2/9

लोलत्वमक्ष्णोर्मदिरेक्षणाना –

मुच्चैः प्रसह्म श्रुतिलङ्धनञ्च।

जिह्मनुगत्वं भ्रुकुटिद्वयस्य

केलीषु गोत्रस्खलनं तथाऽऽसीत्।। शत्रु. 2/10

अर्थात् महाराजा वासुदेव कुल का पालन करने वाले पृथ्वी के स्वामी थे, जिसके राज्य से शिल्पादि कलाओं की उत्कृष्टता रही है । प्रजाओं में सज्जन प्रवृत्ति है, दुष्ट संगति नहीं है, बुद्धिमता पूर्ण बातें ही है, मूर्खता पूर्ण नहीं ।

जिस राज्य में दृष्टि की चंचलता केवल कामनियों (स्त्री) में ही थी प्रजाओं में नहीं। श्रुति का उल्लंघन केवल आँखों का ही था, प्रजा द्वारा वेद मार्ग का नहीं। वक्रता भी नेत्रों में ही थी प्रजा में नहीं। गोत्रस्स्बलन भी नायक–नायिका की क्रीडाओं में ही देखा जा सकता था, प्रजाओं में नहीं ।

तनुजनिहितराज्यः सर्वलाकैकपूज्य –

स्तर्राणकुलमहीयान् सुर्जनोऽसौगरीयान्।

हरिपदयुगभक्तिः प्राप्तवान ज्ञानसक्त –

स्त्रिदिवगतिमुदारां मोक्षरत्नैकसाराम् ।। शत्रु. 8/144

अपने पुत्र दुर्योधन को राज्यभार सौंपकर सभी लोको में पूज्य, सुर्योकुलोत्पन्न महान विष्णु के चरण कमलों का स्मरण करता हुआ उस सुर्जनदेव ने अपवर्ग का सार मोक्ष को प्राप्त किया।

7. साहित्यदर्पणकार महाकवि विश्वनाथ के अनुसार महाकाव्य के प्रारम्भ में मंगलाचरण (नान्दी) का विधान इस प्रकार हो जिसमें आशीर्वाद, नमस्कार, अथवा कथावस्तु का निर्देश हो।

इसमें कहीं पर दुर्जनों की निन्दा तथा सज्जनों का गुण कीर्तन भी किया जाता है।

''शत्रुशल्यचरित'' के प्रारम्भ में **आशीर्नमस्क्रियावस्तुनिर्देशो वापि** तीनों प्रकार से मगंलाचरण करते हुए अपने ईष्ट देवता भगवान श्रीकृष्ण और राधा के युगल स्वरूप की वन्दना की है। प्रारम्भिक चार पद्यों में विष्णुस्वरूप श्रीकृष्ण व राधा की श्रृंगारिक स्तुति के माध्यम से आशीर्वाद प्राप्त कर महाकाव्य के नायक व नायिका श्री शत्रुशल्य तथा श्यामा की कथावस्तु का भी निर्देश किया है।

श्रीराधाकुचकलशद्वयेऽतिगौरे

संसर्पी नवजलदोद्धुरो मुरारेः।

आश्लेषे जयपि वपुः प्रभासमूहः

कस्तुरीललितधनाङ्गरागमाली।। शत्रु. 1/1

राधा और कृष्ण की शोभा का वर्णन करते हुए महाकवि कहते हैं कि अत्यन्त गौरवर्णीय कुचकलशों वाली राधाजी का आलिंगन करते हुए मेघवर्ण वाले, और ललित अंगराग की माला धारण करने वाले, उज्ज्वल कान्तियुक्त देह वाले श्री कृष्ण की शोभा सर्वोत्कृष्ट है।

यहाँ कृष्ण को मेघ के समान व राधा जी को विधुत सादृश्य बताया है।

''शत्रुशल्यचरित'' में यवनों की निन्दा तथा बून्दी के राजाओं की प्रंशसा भी की गई है।

भटेनैष खींचीकुलीनेन पापं

रहः किञ्चिदामन्त्रय राणाकुलीनः।

मृगाखेटलक्ष्येण मन्दाक्षहीनों

ययौ कानकं श्वापदाकीर्णमुच्चैः ।। शत्रु. 7/35

लज्जा–रहित राणावंशजरत्नसिंह, खींची वंश क्षत्रिय सैनिकों के साथ एकान्त में, कुछ निन्दनीय कर्म का विचार कर, आखेट के बहाने हिंसक जन्तुओं से व्याप्त कानन में चला गया।

हम्मीर भूपतिरयं तिरयन् प्रतापै –

र्धूकानिनिवाऽरिनिकरान् रणावावदूकान्।

पद्माकरानिव निजावनिजातलोका –

नमोदयन् रविरिवाऽतितरां दिदीपे ।। शत्रु. 5/9

महाकवि कहते है कि राजा हम्मीर देव अत्यन्त पराक्रमी एवं युद्ध कौशल में निपुण था। इनकी प्रजाजन भी कमलवन के समान आमोद–प्रमोद से युक्त थी। यह राजा सूर्य के समान अत्यधिक प्रकाशमान था।

8. महाकाव्य में एक सर्ग में एक प्रकार का छन्द होता है तथा सर्ग के अन्त में अन्य छन्दों का प्रयोग किया जाता है। कोई सर्ग अनेक छन्दों वाला भी देखा जाता है।

सर्ग न तो अत्यधिक छोटे हो न बहुत बड़े हो।

''शत्रुशल्यचरित' में प्रत्येक सर्ग के अन्तर्गत एक–एक छन्द का प्रयोग किया गया है तथा सर्गो के अन्त में नियमानुसार छन्द परिवर्तन भी किया गया है अष्टादश सर्ग में अनेक छन्दों का प्रयोग हुआ है इस सर्ग में वन्दीजनों द्वारा राजा शत्रुशल्य की स्तुति की गई है। इस सर्ग में मालिनी, पृथिवी आदि 10 – 11 छन्दों का प्रयोग किया गया है। इसके सर्ग अत्यधिक छोटे या बड़े नहीं है।

उदञ्चिमृदुलस्मितोल्लसितलीलनीलोत्पल –

प्रहासधृतसाहसैरलसक्ष्मशिक्षाक्रमैः।

विराजिनिजदर्शनैः परमदर्शनीयाश्रियं

प्रभातसुषमामिमानुग्रहाण भोः साम्प्रतम्।। शत्रु. 18/4

महाकवि कहते है कि विबुधों के द्वारा राजा को जगाने के लिए स्तुति गीत गाया जा रहा था कि हे राजन्। उदयशील सूर्य से मृदुल कमल साहस को धारण कर उल्लासिता से युक्त होता है वैसे ही आपके जागने से शिक्षाक्रम एवं व्यापार उत्कर्ष प्रभात की शोभा से युक्त हो, सफलता को प्राप्त करते है। इसके अन्तर्गत पृथिवी छन्द का प्रयोग किया गया है।

9. महाकाव्य में सर्ग के अन्त में भावी सर्ग की सूचना होती है।

''शत्रुशल्यचरित'' में भी प्रत्येक सर्ग के अन्तिम पद्यों में भावी सर्ग की कथा की सूचना प्राप्त हो जाती है। प्रत्येक सर्ग पूर्व सर्ग के अन्त में दी गई सूचना अथवा वर्णन से ही सम्बन्ध है। सर्ग में वर्णित विषय वस्तु का निर्देश पूर्व सर्ग के अन्त में किसी न किसी रूप में अवश्य किया गया है।

योन्तर्वाणिशिरोमणेर्वरभिषग्वंशैमुक्तामणेः

साहित्योम्बरूहाकरैकतरणेः श्री वैधनारायरगात्।

रूक्मिण्यामुदभूतमुष्यसुकवेः श्री विश्वनाथस्य सत –

काव्ये श्री नृपशत्रुशल्य चरिते श्री चाहुवानोद्भवः ।। शत्रु. 1/60

इस प्रकार भगवती सरस्वती के शिरोमणि महाकवि विश्वनाथ, श्री वैधनारायण व रूकमणी के सुपुत्र ने काव्य के प्रथम सर्ग में प्रस्तावना रूप में सूर्यवंश में उत्पन्न राजाओं एवं अनेक पुरूषार्थों का वर्णन किया है।

10. महाकाव्य में सन्ध्या, सूर्य, चन्द्रमा, रात्रि, प्रदोषकाल, अन्धकार, दिन, प्रातः–काल, मध्याह्न, मृगया, पर्वत, ऋतु, वन, सागर, सम्भोग एवं विप्रलम्भ श्रृंगार, मुनि, स्वर्ग, पुर, अध्वर (यज्ञ), रण, प्रयाण (यात्रा) विजय यात्रा, विवाह, मन्त्र (मन्त्रणा) तथा पुत्रोत्पत्ति इन सभी का वर्णन होना चाहिए।

''शत्रुशल्यचरित'' उपर्युक्त लक्षणों से पूर्णतया सुशोभित है। इसमें सूर्यवंश से लेकर चौहान वंश तक के प्रमुख राजाओं के जन्म का, उनके द्वारा किए गए विविध युद्धों का तथा शौर्य, पराक्रम आदि का विशद चित्रण है। इन उपर्युक्त तत्वों का महाकवि विश्वनाथ ने वैदुष्यपूर्ण वर्णन किया है सोलहवें सर्ग में सूर्यास्त, चन्द्रोदय, प्रातः–काल आदि प्राकृतिक दृश्यों का मनोहारी चित्रण किया गया है। 17 वें सर्ग में शत्रुशल्य की पत्नी श्यामा का नख–शिख वर्णन श्रृंगार रस से परिपूर्ण है। इस सर्ग में श्यामा के विवाहोत्सव का विशद वर्णन है। 19 वें सर्ग का तो नाम ही ''षड्ऋतुवर्णन'' है। इसमें कामक्रीडा, वन–विहार, पर्वत, नदियों, कन्दराओं, वनों आदि का रमणीय वर्णन किया गया है। इसी प्रकार 15 वें सर्ग का नाम ''यात्रा वर्णन'' है जिसमें शत्रुशल्य की यात्रा का विशद वर्णन है। अन्य तत्वों का भी यथावसर सांगोपांग वर्णन 'शत्रुशल्यचरित' में सुन्दरता से किया गया है। यहाँ कुछ उदाहरण द्रष्द्रव्य है–

अथो स पाथोजसखो हरिद्वधू –

दृढं समालिङ्गय विसृत्वरैः करैः।

अनङ्गरङ्गश्रमभङ्. गुराङ्गको

जहद्विलम्ब प्रचुचुम्ब वारूणीम्।। शत्रु. 16/1

महाकवि कहते है कि इसके बाद वह प्रसिद्ध मार्गमित्र सूर्य ने दिशाओं की वधू के समान अपने हाथों से समालिंगन करने के कारण श्री कामदेव के स्थल में श्रम से शिथिल हुए अंगो को छोडकर मानो पश्चिम दिशा को प्राप्त कर लिया।

रसेन सम्भुज्य दिनं दिशों भ्रशं

रिंस्सयायान्तममुं रूषाऽरूणा।

सखीव सन्ध्या बत वारूणी दिशो

निनिन्द चञ्चद्रिद्वजनाद भङ्गिभिः ।। शत्रु. 16/6

पश्चिमी दिशा की सखी के समान, सन्ध्याकाल में रागयुक्त दिन में रमण करने वाला सूर्य के चले जाने पर, पक्षियों के गुंजन का स्वर प्रसारित हो रहा था।

हिताय लोकस्य परं दयालु

गौरीगुरूं पर्वतमाशु गत्वा।

शृङ्गं समानीय ततोऽर्बुदाह –

मपूरयत्तेन मुनिः स गर्तम् ।। शत्रु. 1/38

विश्व के कल्याण के लिए अत्यधिक कृपावान मुनि वशिष्ठ ने शीघ्र ही हिमालय जाकर अर्बुद पर्वत को ''आबु'' इति प्रसिद्ध नाम से अभिहित किया।

सवितुः कुलं स्वचरितेन पुनानं

निजसम्पदा सुरपति च धनानम्।

नृपशत्रुशल्यममुमद्य यथावद्

दुहितुः वंरं परिचरन्तु भवन्तः ।। शत्रु. 17/2

अपने चरित के द्वारा, सूर्यवंश की शोभा स्व–सम्पदा से सुरपति को भी तिरस्कृत करने वाला पुत्री श्यामा के वर इस शत्रुशल्य की आज यथायोग्य सेवा करो।

वसन्तऋतु वर्णन –

यदपि वसन्ते विरहिदुरन्ते

समधृत धन्यां रूचिमिह वन्या।

तदपि रसलावलिरलि मालां

मदयति चित्रा कुसुमविचित्रा ।। शत्रु. 19/22

यद्यपि वसन्त विरहणियों के दुःख को दूर करता है, वन समूह रूचियुक्त कान्ति को धारण करता है। तदपि विचित्र पुष्प और आम की पंक्ति भ्रवंरो को आनन्दित करती है।

ग्रीष्म ऋतु वर्णन –

पत्यामृतूणामिति तं जगत्याऽत्यादरेणाचितमेक्ष्य नाथम्।

स्फुटस्फुटत्पाटल हासभासा समुञ्जजृम्भेऽर्चयितुं तपेन।। शत्रु. 19/74

महाकवि ने ग्रीष्म काल का वर्णन बड़े ही रोचक ढंग से प्रस्तुत करते हुए कहा है, बसन्त के सत्कार को देखकर, पाटल–पुष्पों का हास, ग्रीष्म के तप से वह शत्रुशल्य जंभाई लेने लगा।

वर्षा ऋ़तु वर्णन –

विशन् स्ववेश्मप्रतिहारभूमि

समीपतः पीनपयोधरांसः।

चिरं वियोगान्मलिनाम्बरान्तां

कान्तामथ प्रावृषमैक्षतोच्चैः ।। शत्रु. 19/129

वर्षा काल में प्रतिहार भूमि में प्रवेश करके शत्रुशल्य ने जलयुक्त बादलों से आच्छादित आकाश, चिरकाल से वियोगिनी पृथ्वी के सदृश प्रिया को समीप से देखा।

शरद ऋतु वर्णन –

मदकलकलहंस चारूयाना

हसित सरोज विराजिदिङ्मुखश्रीः।

विमलविलसदम्बराभिरामा

शरदथ तस्य दृशं भृशं जहार।। शत्रु. 19/147

शरद ऋतु में मादकता से युक्त, मधुर गुंजन करने वाले जो कलहंस गति कर रहे थे। विकसित कमल की तरह निर्मल सुन्दर सफेद आकाश का शत्रुशल्य ने दर्शन किया।

हेमन्त ऋतु वर्णन –

तं विलाक्य लसदम्बुजमुख्या

वश्ययाशुशरदो बत सख्याः।

हैमनी ऋतुरूची रूरूचेऽथो

मानिनीव मलिनाननपद्मा ।। शत्रु. 19/178

महाकवि ने हेमन्त ऋतु का वर्णन करते हुए कहा कि सर्वत्र हैमनी की शोभायुक्त, उस शत्रुशल्य ने कमल की तरह मुख वाली, उसकी सखी को शरद के अधीन निष्प्रभ मानिनि स्त्री की तरह देखा।

शिशिर ऋतु वर्णन –

परिमलमिलदलिवृन्दं

जातानन्दं विभिन्दती कुन्दम्

शिशिर श्रीरथ भेजे

कान्तेवामुं महीकान्तम्।। शत्रु. 19/184

इस ऋतु में सुंगध प्राप्त भ्रंवरो का समूह यहाँ–वहाँ पुष्प के मध्य आनन्दित होकर उसका विकास कर रहे थे, शिशिर ऋतु की शोभा प्राप्त नायिका राजा की सेवा कर रही थी।

11. महाकवि विश्वनाथ के अनुसार कवि के नाम पर, चरित्र के नाम पर अथवा नायक या उपनायक के नाम के अनुसार होना चाहिए। सर्ग में वर्णित कथा के अनुसार ही सर्ग का नाम होना चाहिए।

इस लक्षण के अनुसार महाकवि विश्वनाथ ने भी अपने महाकाव्य का नाम महाकाव्य में प्रधान रूप से वर्णित नायक व चरित्र महाराजा शत्रुशल्य के नाम के आधार पर ''शत्रुशल्यचरित'' रखा है। इस महाकाव्य में कुल 22 सर्ग है, जिनमें से प्रारम्भिक दस सर्गों में राजा शत्रुशल्य के वंश का उसके पिता, पितामह आदि का विस्तृत वर्णन किया है, तत्पश्चात ग्यारहवें सर्ग से लेकर अन्तिम 22 वे सर्ग तक शत्रुशल्य के जन्म का, युवावस्था, विवाह का, शौर्य व पराक्रम का उसके द्वारा किए गये युद्धों का तथा उसके पुत्र जन्म आदि का वर्णन विस्तृत रूप से करते हुए उसके जीवन के घटना चक्र को प्रस्तुत किया है।

इसी प्रकार सर्ग में वर्णित कथा के आधार पर ही चाहुवाणोद्भवः, वासुदेवदीक्षितवर्णनम्, अस्थिपालोदभ्वः, मेदान्वयध्वंसः, बुन्दयांतुरूष्कोदयः, नारायणदास वर्णनम्, सुर्यमल्लवर्णनम्, सुर्जनवर्णनम्, महाराज श्री दुर्योधन वर्णनम्, भोजदेवर्णनम्, श्री रत्नराजवर्णनम्, श्री शत्रुशल्यस्यविवाह–प्रस्थान वर्णनम्, वरयात्रावर्णनम्, नायिकाङ्गवर्णनम्, वन्दिस्तुति वर्णनम्, वनविहार–षडऋतुवर्णनम्, खींचीदेशग्रहण वर्णनम्, शत्रुशल्यस्य, राज्याभिषेक वर्णनम्, शत्रुशल्यद्वारादेवगिरीग्रहण वर्णनम्, आदि सर्गो का इस महाकाव्य में नामोल्लेख किया गया है।

इस प्रकार ऐतिहासिक काव्य शास्त्रीय लक्षणों के आधार पर शत्रुशल्यचरित महाकाव्य के लक्षणों से परिपूर्ण एवं निर्दोष है। इसका महाकाव्यत्व उच्च कोटि का है।

.....********.....

1. सर्गबन्धों महाकाव्य तत्रैको नायकः सुरः ।। 315।। पूवार्ध

साहित्यदर्पण महाकवि विश्वनाथ पृ.सं. 604

2. सदृंशः क्षत्रियोवापि धीरोदात्तगुणान्वितः।

एकवंश भूपाः कुलजा बहवोऽपि वा ।। 316।।

सहित्यदर्पण महाकवि विश्वनाथ पृ.सं. 604

3. श्रृंगारवीरशान्तानामेंकोऽङ्गी रस इष्यतेः ।। 317।। पूवार्ध

सहित्यदर्पण महाकवि विश्वनाथ पृ.सं. 604

4. अङ्गनि सर्वेऽपि रसाः सर्वे नाटकसन्धयः ।। 317।। उतरार्ध

सहित्यदर्पण महाकवि विश्वनाथ पृ.सं. 604

5. इतिहासोभ्दवं वृतमन्यद्वा सज्जनाश्रयम् ।। 318।। पूवार्ध

सहित्यदर्पण महाकवि विश्वनाथ पृ.सं. 604

6. चत्वारस्तस्य वर्गाः स्युस्तेष्वेकं च फलं भवेत् ।। 318।। उतरार्ध

साहित्यदर्पण महाकवि विश्वनाथ पृ.सं. 605

7. आदौ नमस्क्रियाशीर्वा वस्तुनिर्देशएवः वा।

क्वचिन्निन्दा खलादीनां सतां च गुणकीर्तनम्।। 319।।

साहित्यदर्पण महाकवि विश्वनाथ पृ.सं. 605

8. एकवृत्तमयैः पद्यैरवसानेऽन्यवृतकैः।

नातिस्वल्पा नातिदीर्घाः सर्गा अष्टाधिका इह।। 320।।

साहित्यदर्पण महाकवि विश्वनाथ पृ.सं. 605

नानावृत्तमयः क्वापि सर्गः कश्चन दृश्चते।। 321।। पूर्वाध

साहित्यदर्पण महाकवि विश्वनाथ पृ.सं. 605

9. सर्गान्ते भाविसर्गस्य कथायाः सूचनं भवेत्।। 321।। उत्तरार्ध

10. संध्या सूर्येन्दुरजनी प्रदोषध्वान्तवासराः

प्रातर्मध्याहमृगयाशैलर्तु वनसागराः।। 322।।

संभोगविप्रलम्भौ च मुनिस्वर्ग पुराध्वराः।

रण प्रयाणोपय मन्त्रपुत्रोंदयादयः।। 323।।

साहित्यदर्पण महाकवि विश्वनाथ पृ.सं. 605

11. वर्णनीया यथायोगं सांगोपांग अभीइह।

कवेर्वृतस्य का नाम्ना नायकस्येतरस्य वा

नामास्य सर्गौपादेय कथया सर्गनाम तु।। 324।।

साहित्यदर्पण महाकवि विश्वनाथ पृ.सं. 606

प्रथम अध्याय

'शत्रुशल्यचरित' कथावस्तु की समीक्षा

महाकाव्य असाधारण एवं सर्वोत्कृष्ट काव्यरूप है। काव्य के साथ 'महा' विशेषण का वेष्टन काव्य की महत्ता को व्यक्त करने के लिए किया गया है। वह किसी भी देश–काल, जाति, राष्ट्र, भाषा अथवा व्यक्ति के जीवन की चरम उपलब्धि है। महाकाव्य सृजन का कलापक्ष ही केवल उसकी महत्ता का कारण नहीं हैं अपितु व्यापक जन–जीवन, समाज एवं जातीय संस्कृति का चित्रण तथा बलवती सृजन प्रेरणा भी उसके 'महा' होने को निमित्त है।

'शत्रुशल्यचरित' महाकाव्य भी 22 सर्गों से युक्त हैं, अत्यन्त विशाल यह महाकाव्य दो भागों में विभाजित हैं। जिसके अन्तर्गत लगभग 2500 श्लोक हैं। महाकवि विश्वनाथ इसके रचनाकार है। इसकी कथावस्तु ऐतिहासिक रूप से चौहान वंश का उल्लेख करती है।

महाकाव्य की परिभाषा –

महाकाव्य वह पद्यात्मक सर्गबद्ध कृति है, जिसमें जीवन्त कथानक तथा महान नायक हो। जो विराट कल्पनाशक्ति सम्पन्न और जीवन दर्शन बलवती प्रेरणा से प्रेरित कवि की लेखनी द्वारा महत् उद्देश्य की पूर्ति हेतु, गरिमामय उदात्त शैली में लिखित, समाज, जातीय संस्कृति एवं युग–जीवन के चित्रण के साथ–साथ गम्भीर अभिव्यंजना शक्ति तथा इस परिपाक से युक्त हो।[1] महाकाव्य की इस परिभाषा से शत्रुशल्यचरित महाकाव्य की कथावस्तु अत्यन्त सटीक है।

महाकाव्य रचना की दृष्टि से कथातत्व का स्थान अत्यधिक महत्वपूर्ण है। विद्वानों ने महाकाव्य को ही ''कथाकाव्य'' नाम से भी सम्बोधित किया है, इसी कथातत्व के महत्व का अनुमान लगाया जा सकता है ''कोकलेश्वर शास्त्री'' के अनुसार 'महाकाव्य का विकास' भी कथा प्रधान आख्यानों से ही माना गया है। [2]

पाश्चात्य महाकाव्यालोचकों ने भी सर्वत्र ही महाकाव्य को कथाकाव्य का पर्याय कहा है। [3] विश्व कोषकार के मतानुसार भी महाकाव्य का अर्थ एक 'कथात्मक कविता' से ही है। [4] बाबरा ने भी अपनी काव्य परिभाषा में महाकाव्य को 'वृहदाकार कथात्मक काव्यरूप' की संज्ञा दी है। [5] अतः यह कहा जा सकता है कि कथानक महाकाव्य एक कथाकाव्य है। सच तो यह है कि कथानक की व्यापकता प्रसिद्धि और उसका सुसंगठित स्वरूप ही ऐसे गुण है। जिनके कारण कोई काव्य, महाकाव्योचित गरिमा से युक्त तथा सुशोभित होता है।

शत्रुशल्यचरित महाकाव्य भी महान कथा से महाकाव्योचित गरिमा से युक्त है।

1. जीवन्त कथानक तथा विषय की व्यापकता :–

महाकाव्य की रचना में कथानक का महत्वपूर्ण स्थान है। कथावस्तु के अभाव में महाकाव्य का कोई अस्तित्व ही नहीं है। शत्रुशल्यचरित महाकाव्य 22 सर्गो से युक्त लोकविश्रुत व्यापक एवं प्रसिद्ध काव्य है, इसका कथानक स्वरूप से सुसंगठित है। इसकी कथावस्तु ऐतिहासिक होने से पाठक सहज ही हृदयागंम कर लेता है। संक्षिप्त रूप से यहाँ सर्गानुसार कथावस्तु उल्लेखित है –

प्रथम सर्ग–

इसके अन्तर्गत महाकवि विश्वनाथ ने महाकाव्य में प्रारम्भ में आशीर्वादात्मक, वस्तुनिर्देशात्मक, नमस्कारात्मक तीनों प्रकार के मंगलाचरण से निर्विध्न समाप्ति की प्रार्थना की हैं। तदुपरान्त चौहान वंश की उत्पत्ति का वर्णन किया है। महाकवि ने चाहुवान की उत्पत्ति अग्नि से बताई है। इसमें अनल के द्वारा बताया गया है। सामन्तसिंह से लौहराज नामक राजा की उत्पति का वर्णन किया गया है।

द्वितीय सर्ग –

इसमें इतिहास प्रसिद्ध राजा वासुदेव के उदारता, दानवीरता शौर्यादि गुणों का बखान किया गया है। राजा वासुदेव ने अपने पराक्रम से शत्रुओं का विनाश कर अनेक राज्य अधीनस्थ किये थे।

तृतीय सर्ग –

तृतीयसर्गान्तर्गत राजा अस्थिपाल के नामकरण तथा कथावस्तु का वर्णन हैं। प्रारम्भ में राजा गोपाल एवं उनके पुत्र चन्द्रसेन के उत्पन्न होने का वर्णन है।

चतुर्थ सर्ग –

इस सर्ग में चन्द्रराज नामक राजा को चन्द्रमा से भी अत्यधिक सुन्दर, शत्रु एवं मित्र दोनों में ही आदरणीय अत्यन्त दानवीर शत्रुओं के लिए अत्यन्त क्रूर तथा सज्जनों के लिए दयावान बताया गया हैं। इन राजा के आर्तिहरण नामक पुत्र हुआ इस आर्तिहरण के आदेश मात्र से ही अधीनस्थ राजा शीघ्र ही अपने सिरों का संस्थापित कर देते थे। इसमें रेणुसिंह, कोल्हन, आशुपाल, विजयपाल, बड़देव, देवीसिंह आदि चौहान वंश के राजाओं के शौर्य एवं पराक्रम का वर्णन किया है।

पंचम् सर्ग –

'बुन्दया तुरूष्कोदय' नामकरण से युक्त इस सर्ग में राजा देव के पुत्र समरसिंह के शौर्य एवं पराक्रम का वर्णन किया गया है। राजा समरसिंह के नार्पनाम नामक पुत्र उत्पन्न हुआ, जो राजा नाप जी नाम से इतिहास प्रसिद्ध हुआ। इस राजा के हम्मीर देव नामक शूरवीर पुत्र हुआ। इसमें राजा भारमल्ल के शासन काल का वर्णन किया गया है।

षष्ठसर्ग –

इसके बाद मण्डल पर्वत पर नारायण दास नामक राजा म्लेच्छों के द्वारा अपने पिता भारमल्ल की नृंशस हत्या को सुनकर अत्यधिक क्रोधयुक्त हो म्लेच्छों का संहार कर विजय प्राप्त करता है। इसके अन्तर्गत नारायण दास के युद्ध–कौशल का चित्रण किया गया है।

सप्तम् सर्ग –

महाकवि ने इस सर्ग के आरम्भ में नारायणदास के पुत्र सूर्यमल्ल राजा की वीरता एवं युद्ध–चित्रण प्रस्तुत किया हैं। सूर्यमल्ल के सुरताण नामक पुत्र हुआ जो

अत्यन्त उन्मादी था तथा समृद्ध राज्य का कार्यभार निर्वाह नहीं कर सका। इसका कार्यभार नारायण दास के छोटे भाई नर्बद राजा का पौत्र सुर्जनदेव ने संभाला।

अष्टम् सर्ग –

इसके बाद अष्टम् सर्ग के प्रारम्भ में राजा सुर्जन देव के शौर्य का वर्णन किया गया है। राजा सुर्जन देव दुर्जनों का विनाश करने वाला, इन्द्र के समान था। इनका विवाह ईडरराज जगमाल की पुत्री कनकावती से हुआ, जो अत्यन्त सौन्दर्य युक्त थी। राजा सुर्जनदेव का तुरूष्कनाथ अकबर से युद्ध में विजय प्राप्त कर अनेक दुर्गो को जीतता है। इसके बाद सुर्जनदेव, दुर्योधन एवं भोजराज नामक दो पुत्रों के पिता हुए।

नवम् सर्ग –

इसमें युवराज पद पर आसीन राजा सुर्जन के ज्येष्ठ पुत्र वीर दुर्योधन के शौर्य एवं पराक्रम का वर्णन किया गया है।

दशम् सर्ग –

महाकवि विश्वनाथ दसवें सर्ग के प्रारम्भ में सुर्जन के ज्येष्ठ पुत्र दुर्योधन के पश्चात् इनके लधुभ्राता भोजदेव के शासनकाल एवं पराक्रम का वर्णन किया है।

एकादश सर्ग –

इसमें राजा भोजदेव के पुत्र रत्नदेव के प्रशस्ति गाथा का वर्णन किया गया है। राजा रत्नदेव शारीरिक सौन्दर्य युक्त थे और अत्यन्त शूरवीर थे एवं बाल्यकाल में ही अपने पराक्रम से म्लेच्छ सेनाओं के लिए प्रज्ज्वलित अग्नि के समान था। इनका विवाह सागर मंथन से उत्पन्न लक्ष्मी के समान 'रामकुँवर' नामक स्त्री से हुआ तदुपरान्त इनके गोपीनाथ नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ। राजा गोपीनाथ भी अत्यन्त पराक्रमी थे, इनका विवाह महामेला नामक दुर्ग के राजा विजयनाथ की सुन्दर और मधुर 'मात्रा' नामक पुत्री से हुआ। इनके शत्रुशल्य नामक पुत्र हुआ, जो महाकाव्य के धीरोदत्त नायक के रूप में प्रतिष्ठित है।

द्वादश सर्ग –

इस सर्ग में राजा शत्रुशल्य के सामुद्रिक लक्षणों का वर्णन किया गया है। शत्रुशल्य महान पुरूष थे क्योंकि वे सामुद्रिक लक्षण से युक्त थे। महाकवि की यह महत्वपूर्ण विशेषता है कि उन्होंने नायक शत्रुशल्य के सामुद्रिक वर्णन को साहित्यक ढंग से प्रस्तुत किया हैं।

त्रयोदशः सर्ग –

महाकवि विश्वनाथ तेरहवें सर्ग के आरम्भ में शत्रुशल्य के युवराज पद पर आसीन होते ही शत्रुओं के तेज को नष्ट करने वाले, अपनी भुजाओं के पराक्रम से दुष्टों पर आक्रमण कर वशीभूत करने वाले महान तीरंदाजी से युक्त, शत्रुशल्य का वर्णन किया है। शत्रुशल्य के मन की अभिलाषाएँ प्रकट की गई है राजा दलपति की पुत्री को देखकर राजा शत्रुशल्य के मन में प्रेम–व्यथा प्रकट हो गई।

चतुदर्शः सर्ग –

इस सर्ग में शत्रुशल्य के विवाह–प्रस्थान का वर्णन किया गया है इसके अन्तर्गत शत्रुशल्य के मन की कल्पनाओं का संचार हुआ है। महाकवि ने सम्पूर्ण सर्ग में शत्रुशल्य की आसक्ति एवं कामाग्नि से पीड़ित अवस्था को रोचक ढंग से प्रस्तुत किया है।

पंचदश सर्ग –

इसके अन्तर्गत शत्रुशल्य की वर यात्रा का वर्णन किया गया है।

षोडश सर्ग –

इसमें नायिकांग वर्णन किया गया है। राजा दलपति की पुत्री श्यामा के नख–शिख सौन्दर्य का विस्तृत रूप से वर्णन किया गया है।

सप्तदश सर्ग –

इसमें नायक एवं नायिका के विवाह का वर्णन किया गया है। इसमें राजा दलपति के भवन की सज्जा, स्त्रियों के द्वारा गाए जाने वाले मंगलगीत का वर्णन किया गया है। श्यामा गुरूपदेश को ग्रहण कर सभी से आशीर्वाद ग्रहण करती है। इसके बाद दलपति विवाहोपरान्त तीन दिवस तक अपने घर में रखकर उन्हें विदा करते है।

अष्टादशः सर्ग –

इसमें वन्दिजनों के द्वारा स्तुति का वर्णन किया गया है। प्राचीन काल में विबुधों के द्वारा प्रातः काल विशेष महाशयों को जगाने के लिए स्तुति गीत सुनाया जाता था। इसके अन्तर्गत शत्रुशल्य राजा के अन्य पन्द्रह विवाह का भी वर्णन किया गया हैं।

एकोनविशः सर्ग –

इसके अन्तर्गत राजा शत्रुशल्य का उनकी रानियों के साथ वन–विहार का वर्णन किया गया है। महाकवि ने प्रकृति–चित्रण अत्यन्त व्यापक रूप में प्रस्तुत किया है। इन्होंने षड्ऋतुओं के समूह से प्रमुदित त्रिभुवन वीर राजा शत्रुशल्य के सेवित होने का वर्णन किया गया हैं।

विशः सर्ग –

इस सर्ग में राजा शत्रुशल्य के द्वारा खींची देश ग्रहण करने का वर्णन किया गया है। इसमें खींची कुलोत्पन्न श्री गोपाल को जीतने के लिए शत्रुशल्य की विजय यात्रा का वर्णन किया गया है। तदुपरान्त शत्रुशल्य का मऊ प्रदेश के राजा अक्षयराज से भंयकर युद्ध हुआ। तब उन्होनें अक्षयराज को मारकर युद्ध में विजय प्राप्त की।

एकविशः सर्ग –

इसमें राजा शत्रुशल्य ने उस मऊभूमि को जीतने के बाद गोपाल के अधीन उस भूमि के विषय में विचार करके कि इसकी रक्षा किस प्रकार करेगा, अथवा वहाँ की जनता को आश्वस्त करने हेतु कुछ दिन तक मऊ नगर में ही निवास किया। वहाँ के लोगों को आश्वस्त कर अन्तःपुर के वधू–जनों के साथ बून्दी आ गया। तदुपरान्त अपनी प्रिय पत्नी श्यामा के साथ एकान्त में विहार करते हुए एक पुत्ररत्न को प्राप्त किया, जिसका नाम भावसिंह था। इसके बाद भावसिंह एवं राजा शत्रुशल्य के पराक्रम का वर्णन किया गया है।

द्वाविंश सर्ग –

इसमें देवगिरी दुर्ग ग्रहण का वर्णन किया गया है। प्रारम्भ में तीनों लोकों को अभयदान देने में समर्थ राजाओं में श्रेष्ठ शत्रुशल्य ने अपने पितामह श्री रत्नसिंह द्वारा दिए गए राज्याश्रय पाने वाले खुर्रम राजा की रक्षा के लिए प्रस्थान का वर्णन किया गया है। तदुपरान्त संसार में प्रसिद्ध शत्रुशल्य ने बून्दी में चिरकाल तक अपना शासन कर यश का प्रसार किया। इसके बाद महाकवि ने मंगल–कामना करते हुए ग्रन्थ को पूर्ण किया है।

द्वाविंश सर्गों में इसकी कथावस्तु सुसंगठित स्वरूप वर्तमान है। कथानक के अनुरूप शत्रुशल्य का विषय भी भव्य एवं महान हैं। अनल से लेकर राजा भावसिंह तक चौहान वंश की शूरता एवं वीरता को प्रदर्शित करना, तथा म्लेच्छों का विनाश करना इस काव्य का प्रधान विषय है। राजा शत्रुशल्य एवं राजा दलपति की पुत्री श्यामा को आधार मानकर ही इस महाकाव्य का नामकरण 'शत्रुशल्यचरितम्' किया गया है।

2. **आधार ग्रन्थ** –

शत्रुशल्यचरित महाकाव्य 17वीं सदी (ईस्वीबाद) के प्रथम अर्द्ध से सम्बन्धित है यह एक साहित्यिक प्रामाणिकता की दृष्टि से भी परिपक्व कलाकृति है। ऐतिहासिक काव्य परम्परा का प्रारम्भ बाण के हर्षचरितम्, जो कि प्रसिद्ध वर्धन राजा हर्ष के जीवन, साहसिक यात्रा एवं उपलब्धियों से सम्बन्धित वाद्य काव्य है।

महाकवि ने भी इस काव्य को आधार मानकर शत्रुशल्य के गुणों का वर्णन किया है। इस महाकाव्य से पूर्व चौहानों के इतिहास से सम्बन्धित पाँच महाकाव्य ज्ञात हो चुके थे। जिनमें से तीन प्रकाशित हो चुके है।

1. जयानक रचित पृथ्वीराज विजय महाकाव्य (12 शताब्दी A.D.)
2. हम्मीर महाकाव्य विचरित नयनचन्द्रसूरि (14 वीं शताब्दी A.D. प्रथम चतुर्थाशं)
3. चन्द्रशेखर विरचित सुर्जन चरित (16 वीं शताब्दी A.D.)

शत्रुशल्यचरित महाकाव्य का चौथा स्थान हैं तथा पाँचवा स्थान रामविलास महाकाव्य यह एक अप्रकाशित ग्रन्थ है।

3. **महान उद्देश्य –**

महाकाव्य का निर्माण किसी महान उद्देश्य के लिए किया जाता है। इस महाकाव्य 'शत्रुशल्यचरित' का उद्देश्य भी महान है। इसकी कथावस्तु अत्यन्त व्यापक एवं चतुवर्ग की प्राप्ति करती है। इसकी रचना से ऐतिहासिक तथ्यों की पुष्टि होती है। महाकाव्य की रचना असत् प्रवृत्तियों पर सत् प्रवृत्तियों की विजय प्रदर्शित करती हैं।

4. **रस–व्यंजना –**

महाकाव्य की कथावस्तु में रसाभिव्यक्ति एवं भावोद्रेक प्रमुख तत्व है। महाकवि ने चौहान वंश के शूरवीरों के पराक्रम का वर्णन करने से मुख्य रस वीर रस को माना है। अंगीरस के रूप में श्रृंगार रस को माना है। कथातत्व में सभी प्रकार के रस का वर्णन किया गया हैं।

5. **रीति–गुण –**

इसकी कथावस्तु ओज गुण से युक्त गौडीरीति का महाकवि ने बाहुलता से प्रयोग किया है। माधुर्य एवं प्रसाद गुण का भी श्रृंगारिक रूप में चित्रण किया गया है।

6. **उदात्त भाषा शैली –**

इस महाकाव्य की भाषाशैली विशिष्ट एवं गरिमापूर्ण है। इसमें विषय की महानता के साथ–साथ उदात्त भावों का सन्निवेश किया गया है। इसीलिए महान विषय के प्रतिपादन तथा उदात्त भावों की व्यंजना हेतु महाकाव्य की भाषा तथा

शिल्प–विधान गरिमा पूर्ण है। महाकवि ने कहीं–कहीं अत्यन्त लम्बे श्लोकों की रचना कर जटिलता तथा कृत्रिमता का प्रवाह किया है लेकिन कथावस्तु सरल एवं सुबोध है। इसकी कथावस्तु भावानुसारिणी, सशक्त, प्रौढ़ और प्रवाहमयी है तथा इसकी शैली व्यंजना शक्ति तथा अलंकारों से समृद्ध एवं व्यापक है महाकवि ने नवीन एवं प्राचीन अनेक अलंकारो का प्रयोग इस महाकाव्य में किया है। भावानुरूप छन्दयोजना एवं अलंकारो का प्रयोग किया गया है।

7. **छन्दोबद्धता –**

शत्रुशल्यचरित महाकाव्य में महाकवि ने प्राचीन एवं नवीन अनेक छन्दों का प्रयोग किया है। महाकवि ने एक सर्ग में एक ही प्रकार के छन्द का प्रयोग किया है, सर्गान्त में छन्द परिवर्तन भी किया है। छन्द के प्रयोग में महाकवि सिद्धहस्त है। 19वें सर्ग में महाकवि ने विविध छन्दों का प्रयोग किया है।

महाकवि विश्वनाथ विरचित 'शत्रुशल्यचरित' महाकाव्य में 22 सर्ग हैं जो दो भागों में विभाजित है। इसका सम्पादन भोलाशंकर व्यास ने किया तथा 13 से 22 सर्ग का गंगा सहाय शिशु ने प्रकाशित टीका की है। इसकी कथावस्तु पूर्ण रूप से ऐतिहासिक है तथा महाकाव्य के लक्षणों से युक्त है।

.....********.....

1. संस्कृत के पौराणिक महाकाव्य – डॉ. राजेश कुमारी मिश्रा – पंचशील प्रकाशन – प्रथम संस्करण – 2007
2. कोकलेश्वर शास्त्री – ''ए ब्रीफ हिस्ट्री ऑफ संस्कृत लिटरेचर'' पृ.सं. 191
3. I.T. Myers, " A Study in Epic Development", Introduction, पृ.सं. 32
4. Cassell's Encyclopdia of Literatuire, Vol, I, P. 195
5. C.M. Bowra From viragil to Milton; P. I

द्वितीय अध्याय

भाषा शैली

कविता में भावनाओं की प्रमुखता हुआ करती है। भावना विहीन काव्य सुन्दर से सुन्दर भाषा होते हुये भी ह्रदयस्पर्शी नहीं हो पाता, परन्तु भावों की इतनी महत्ता होते हुये भी स्वीकार करना पड़ता हैं कि कलापक्ष अथवा भाषा जो भावों को अभिव्यक्त करने के साधन है, का अभाव भावों को प्रेषणीय नहीं बना सकता। जब हमारे पास अपनी बात कहने के लिए कोई साधन या वाणी नहीं है, तो हमारे भावों का मूल्य ही क्या है ? इसीलिए विद्वानों ने प्राचीन काल से लेकर आज तक भाषा शैली को अति महत्वपूर्ण स्थान प्रदान किया है।

'शत्रुशल्यचरित' महाकाव्य के अनुशीलन से महाकवि विश्वनाथ का संस्कृत भाषा पर असमान्य अधिकार प्रकट होता है। प्रकृत महाकाव्य में महाकवि ने 'ओजपूर्ण' शब्दावली का प्रयोग किया है। इनकी भाषा शैली विषयानुकूल, ओजमयी, और वीर रस की व्यंजना के लिए सर्वथा उपयुक्त है। अतः इनकी शैली को वीर रस की ओज पूर्ण शैली कहा जा सकता है। इनकी शैली नैसर्गिक, सह्रदयों के ह्रदय को आकृष्ट करने वाली है। इन्होंने उदात्त एवं मधुर पदावली का प्रयोग किया है।

महाकवि के युद्ध वर्णन प्रसंगो में परूषवर्णों का प्रयोग किया गया है। एवमेव शान्त एवं वात्सल्यरस के चित्र माधुर्य गुण युक्त कोमलकान्त पदावली में चित्रित कर महाकवि ने अपने भाषागत सौष्ठव का प्रदर्शन किया है। उदात्त तथा मधुर शैली के साथ ही यत्र–तत्र आपकी भाषा में कुछ क्लिष्टता का भाव अवश्य आ गया है तथापि आपकी शैली उत्कृष्ट रही है इसमें महाकवि की विद्धता एवं पाण्डित्य के दर्शन होते है।

भाषा में शब्दों का चयन विशेष वीररस युक्त 'समर' उपपद से 'कन्दक' के द्वारा लक्षणा का स्वीकार्यता सर्वोपरि है –

अथवीररसो नु मुर्त्तिमा –

नवतीर्णो बत कोऽपि साम्प्रतम्।

इति संशयमुग्धमानसं

तमवैक्षिष्ट जनः स नागरः ।। शत्रु. 6/46

अथ राजगृहं विशन् रिपुं

मृगयँस्तं मृगयागतं नृपः।

समरोपपदं स कन्दकं

भटगोपं प्रददर्शयावनम्।। शत्रु. 6/47

चित्रात्मकता –

प्रकृति के वर्णन में कवि ने चित्रात्मक शैली का उपयोग किया है यह शैली द्विविध है – प्रथम वह, जिसमें मनोरम वस्तुओं का अभिनिवेश–मात्र करके पाठक को रमणीयता की अनुभूति कराई गई है और दूसरी वह, जिसमें कल्पना – प्रसंग से रमणीय वस्तुओं को उपमान रूप में संकलित लिया गया है। [1]

प्रथम शैली का उदाहरण –

अर्बुद पर्वत का वर्णन –

विन्ध्योऽपि वन्ध्योऽजनि तृङ्गतायां

सीमानमुल्लंध्य दिवं गतायाम्।

स्तवे गिरेरर्बुदनामकस्य

न कुण्ठिता गीरपि नाम कस्य।। शत्रु. 1/39

यः प्रस्थवानप्यतिमानकायः।

सद्वंशलक्ष्मीरपि नो कुलीनः।

प्रवृद्धगुल्मोऽपि धृतोरूधातु –

र्भयं करोत्युल्लसिताभयौघः।। शत्रु. 1/40

उपर्युक्त श्लोक में सुन्दर वस्तुओं की गणना तथा औषधियों की उपयोगिता मात्र से अर्बुद पर्वत की रमणीयता निष्पन्न की गई है।

दूसरे का उदाहरण है शिशिर ऋतु का वर्णन –

विलसत्सुचरित्रे मनसिजमित्रे

बयसि विचित्रे रचितरूचः

पृथुजघनसमेताः शिशिर सुभीताः

सविधमुपेता मानमुचः।

विपुलस्तनभारा मुखजिततारा –

धिपमदसारा मुहुरबलाः

भेजे सुखरङ्ंग विलसदनङ्ंग

दृढ़मालिंगन्नयमबलाः।। शत्रु. 19/190

उपर्युक्त श्लोक में महाकवि ने शिशिर ऋतु के माध्यम से शत्रुशल्य की कामोपीडिता से उत्तेजित हो कामदेव की भाँति स्त्रियों के अलिंगन से उत्पन्न सुख की प्राप्ति करना चाहते हैं।

महाकवि ने स्व–कल्पनाओं से षड्ऋतु वर्णन कर शत्रुशल्य को अनेक उपमानों से प्रणय–प्रसंग को दर्शाया है। महाकवि का आलंकारिक कल्पना का उच्चस्तर दर्शनीय है।

महाकवि प्रसंगानुकूल भाषा के प्रयोग में सिद्धहस्त है, इसी कारण उनकी यमकमय कोमलकान्त पदावली से युक्त है, अन्य युद्ध वर्णन प्रसंग में तथा ऐतिहासिक राजाओं की प्रशस्ति गान में सिद्धहस्त है। [2]

अयं सुजानद्वयलम्बबाहुः

प्रतप्तचामीकर चारूकान्तिः।

सुपीनवक्षाः कमलायताक्षो

बभूव विक्षोभकरोरिपूणाम् ।। शत्रु. 8/2

उपमा अलंकार से राजा सुर्जन का चित्रण किया गया है। महाकवि ने वीर रस के साथ श्रृंगार का भी विशिष्ट वर्णन किया है। मूलतः शत्रुशल्यचरित वीर काव्य है और इसमें प्रमुख वीरों की कार्य परम्परा पदे–पदे विस्मयोत्पादक होने के कारण अद्‌भुत है। युद्ध के प्रकरण प्रायशः अद्‌भुत–रस पर निर्भर है।

महाकवि ने नायिका श्यामा के अंग–प्रत्यंग का वर्णन, उनके कामुकता सम्बन्धी हाव–भाव विलासों का सांगोपांग कल्पनात्मक वर्णन कर ऋतुओं, वन – विहार और जल विहार का वर्णन वास्तविक एवं उत्तेजनापूर्ण किया हैं।

महाकवि ने छन्दों का भी सांगोपांग चित्रण किया है।

भामह के अनुसार महाकाव्य में शब्द और अर्थ का संयोजन अग्राम्य अर्थात् उदात्त और असाधारण होना चाहिए तथा भाषा अलंकारमयी होनी चाहिए।

भवभूति का कथन है कि – ''भाषा का प्रौढ़त्व, व्यंजना प्रणाली का औदार्य तथा अर्थ गौरव ही पाण्डित्य और वैदग्ध्य (कलात्मक प्रतिभा) के परिचायक है।''

इस महाकाव्य 'शत्रुशल्यचरित' में भाषा की प्रौढ़ता, शब्द विन्यास की प्रांजुलता, भावों की गरिमा में सभीगुण परिलक्षित होते हैं। भाषा शैली में पाण्डित्य और प्रतिभा दोनों का मणिकांचन संयोग हुआ है। इस महाकाव्य की भाषा शैली सहज प्रवाह में वर्णित विषय का सुन्दर चित्रण अंकित करती है। ओजस्विता, एवं

मधुरता के साथ ध्वन्यात्मकता तथा वर्णन कुशलता भी दृष्टि गोचर होती है। श्लेष परिपुष्ट शब्दों और अर्थो का सामंजस्य करने में कवि सिद्धहस्त है –

चिंत्र नृसिंहः प्रियसद्विपेन्द्रः

सत्यं स जिष्णुर्बलदत्तमुद्रः।

ईशोध्रुवं कामदसच्चरित्रः

श्रीशः सपद्मायतचारूनेत्रः।। शत्रु. 2/6

महाकवि की भाषा शैली कहीं–कहीं क्लिष्ट होते हुए भी कहीं–कहीं अत्यन्त सरल, सरस तथा प्रभावमयी है। भाषा की सरलता और भावों की उत्कृष्टता का समन्वय ही कवि की प्रमुख विशेषता है अवसरानुकूल दीर्घ समास बहुल पदावली तथा लघु सरस, सरल पदावली का प्रयोग किया है।

यहाँ कवि की कल्पना का रूपान्तरण, तकनीकी रूप से उच्च है वह भारतीय तर्को से न्यायोचित है जैसे **''यत्र यत्र धूमस्तत्र तत्र वह्निः''** अर्थात् जहाँ–जहाँ धुआँ हैं, वहाँ–वहाँ आग।

'शत्रुशल्यचरित' महाकाव्य रस, छन्द, अलंकार पदलालित्य, वस्तुवर्णन रीति, गुण आदि से सुसज्जित एवं भाषा शैली से अलंकृत से युक्त मानव मन में सुख का संचार करता है। वीर रस का काव्य होने के कारण गौडी रीति का अवलम्बन किया है, किन्तु यत्र–तत्र वैदर्भी की मनोहारी दृश्य भी है, जिससे काव्य में मनोहारी सरस तथा हृदयग्राही झांकी भी प्रस्तुत की गयी है।

इस प्रकार महाकवि की भाषा शैली में वैदर्भी एवं गौडी का स्वाभाविक प्रयोग है तथा भाषा का साहित्यिक, सौष्ठ्व दर्शनीय, अविस्मरणीय एवं हृदयग्राही है। भाषा की सरलता, पदों की सुन्दरता, समासों का समान रूपेण प्रयोग, गाढ़ बन्धनों की विकटता, कवि के भावों से अनुस्युत होकर काव्यकला में चमत्कार प्रस्तुत करते है।

.....********.....

(1) संस्कृत साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, रामजी उपाध्याय। पृ.सं. –102 – 105 – 1993

(2) संस्कृत के पौराणिक काव्य – डॉ. राजेश कुमारी मिश्रा – प्रथम संस्करण 2007

तृतीय अध्याय

छन्द एवं अलंकार

छन्द–शास्त्र की परम्परा –

छन्द–शास्त्र भारतीय वाङ्मय की अद्वितीय विशेषताओं में अन्यत्तम हैं। ब्राह्मणों के उपलब्ध छन्द सम्बन्धी विचारों का क्रमबद्ध सर्वप्राचीन विवरण ऋक् प्रातिशाख्य के छन्द प्रकरण में मिलता है, जो कात्यायनकृत ऋक् सर्वानुक्रमणी से प्राचीन है। छन्दों का स्फुट उल्लेख शांखायन श्रौतसूत्र में ही हैं।

ऋक् प्रातिशाख्य के इस प्रकरण से प्रतीत होता है कि इसके पूर्व भी अनेक आचार्यो ने छन्दों पर अपने विचार व्यक्त किये थे। पिंगल छन्द सूत्र में निम्न लिखित आचार्यो का नामतः उल्लेख किया गया है : तण्डी (३/३४) क्रौष्टुकि (३/२६) यास्क (३/३0) सैतव (५/८) काश्यप (७/६) रात (७/३३) माण्डव्य (७/३४) [1]

पिंगल छन्दः सूत्र के टीकाकार यादव प्रकाश ने अपनी टीका के अन्त में छन्द शास्त्र के आचार्यो की परम्परा इस श्लोक में प्रस्तुत की है –

छन्दोज्ञानमिदं भवाद् भगवतो लेभे सुराणां गुरूः

तस्माद् दुश्च्यवनस्ततो ऽसुरगुरूमण्डिव्यनामा ततः।

माण्डव्यादपि सैतवस्तत ऋषिर्यास्कस्ततः पिंगल,

स्तस्येदं यशसा गुरोर्भुवि धृतं प्राप्यास्मदाद्यैः क्रमात्।। [2]

छन्द शब्द का अर्थ –

छन्द स्वरूप के परिशीलन के सन्दर्भ में प्राचीन काल से ही दो सिद्धान्त प्रचलित है। (1) नैरूक्त सिद्धान्त और (2) वैयाकरण सिद्धान्त। निरूक्तकार छन्द

शब्द की व्युत्पत्ति **''छाद्यते छन्द्यते वा अनेन''** करते हैं। वैयाकरणों ने **''चन्द्यते अनेन''** इस प्रकार की व्युत्पत्ति की है। इन दोनों सिद्वान्तों में शब्दगत प्रकृति वैशिष्ट्य ही विचार वैभिन्य का मूल है। निरूक्तकारों ने अपौरूषेय वेद–शब्दराशि को लक्षित करके छन्द शब्द की व्युत्पत्ति की है। किन्तु व्याकरणशास्त्रकारों ने लौकिक शब्द संघात के आधार पर छन्द शब्द की व्युत्पत्ति की है। वैयाकरणों के सिद्धान्त के अनुसार भ्वादि गण में पठित **'चदि अहलादे दीप्तौ च'** परस्मैपदी सेट् धातु से नुम् होकर 'चन्द' शब्द बनता है। अतः **'चन्दन चन्द्यते् अनेन वा'** इस प्रकार विग्रह में **'चन्देरादेश्च छः'** १.(४/२१६ उ.) इस औणादिक सूत्र से असुन् प्रत्यय करके आदिवर्ण चकार का छकार होकर छन्द शब्द निष्पन्न होता है। जिसका अर्थ आह्लादन या प्रसन्न करना है।

वैयाकरण–सिद्धान्त को ही आधार मानकर मेदिनी तथा अमरकोषकारों ने भी पद्य और छन्द को पर्यायवाची शब्द के रूप में ग्रहण किया है। अमरकोषकार छन्द शब्द को अनुष्टुप् आदि पद्यार्थक मानते है।[3] इसी तरह मेदिनी कोष में पद्यार्थक छन्द शब्द वेदवाचक भी है।

छन्दः पद्ये च वेदे च स्वैराचाराभिलाषयोः।

साहित्यदर्पणकार आचार्य विश्वनाथ **'छन्दोबद्धमिदं् पद्यम्'** यह लक्षण करके पद्य और छन्द में भेद करते हैं इस लक्षण के अनुसार पद्यकाव्यों में छन्दों का होना अनिवार्य है। किन्तु वस्तुतः यहाँ पद्य और छन्द का अभेद उपदिष्ट नहीं है। उक्त लक्षण में छन्दों का व्यापकत्व और पद्य का एकदेश वर्तित्व तथा सभी गद्यों में छन्दों का अभाव न होना ही ध्वनित होता है।

आचार्य राजशेखर ने भी **'सारस्वतेयः काव्यपुरूषः'** इस प्रसंग में **'तस्य रोमाणि छन्दांसि'** यह कहकर काव्यरूपी शरीर में लोमरूप छन्दों की अपरिह्यार्यता मानते है। उन्होंने भी **'त्वतः पूर्वेविद्वांसो गद्यं ददृशुर्न पद्यम्'** [4] इस उक्ति के द्वारा गद्यपद्योभयात्मक छन्द के नैरूक्त सिद्धान्त को पोषण किया है।

निरूक्तकार यास्क के अनुसार विविध अर्थ में प्रयुक्त होने वाला छन्द आवरणार्थक छदिर धातु से निष्पन्न होता है।[5] अक्षर संख्या विशिष्टात्मक यजुमंत्र

भी अपने नियम अक्षर संख्याओं से आवृत्त होते हुए मन्त्र और पदगत अर्थ–विशेष के प्रच्छादक होने के कारण छन्दः शब्द से अभिहित होते है।

ब्राह्मण ग्रन्थों में छन्द शब्द के निर्वचन के प्रसंग में एक आख्यायिका उपदिष्ट है।[6]

किसी काल में देवता मृत्यु से त्रस्त होकर अपनी भय–निवृत्ति तथा स्वसरंक्षण के लिए छन्दों के द्वारा आवृत्त होकर मृत्यु के भय से मुक्त हो गये। इस आख्यायिका के आधार पर आङ् पूर्वक छद् धातु के अर्थ के छन्द शब्द का प्रयोग होता हैं। अतः मन्त्र बाह्यणरूप ऋग्यजुः सामात्मक सम्पूर्ण वेद राशि में छन्द व्याप्त हैं।

छन्दों का विभाग –

वैदिक और लौकिक भेद से छन्द दो प्रकार के है।[7] उपनिदान सूत्र में कहा है – **'छन्दसाभार्षं लौकिकं च'** [8] यहाँ आर्ष का अर्थ वैदिक है। वैदिक छन्दों में सात मुख्य छन्द और चौदह अतिच्छन्द इस प्रकार कुल इक्कीस छन्द है। उपनिदान सूत्र के अनुसार नाम इस प्रकार हैं –

(क) **मुख्य वैदिक छन्द** [9] –

(1) गायत्री (2) उष्णिक (3) अनुष्टुप् (4) बृहती (5) पंक्ति (6) त्रिष्टुप् और (7) जगती।

(ख) **अतिच्छन्द** [10] –

(1) अतिजगती (2) शक्वरी (3) अतिशक्वरी (4) अष्टि (5) अत्यष्टि (6) धृति (7) अतिधृति (8) कृति (9) प्रकृति (10) आकृति (11) विकृत्ति (12) संकृति (13) अभिकृ –ति (14) उत्कृति।

(ग) **लौकिक छन्द** –

लौकिक छन्द लघु, गुरू, मात्रा और वर्णादि का नियामक होता है। इसके भी मात्रा और वर्ण दो विभाग है।

वृत्तरत्नाकार में भी मात्रा और वर्ण के भेद से लौकिक छन्दों के दो विभाग किये हैं –

पिङ्गलादिभिराचार्यैर्यदुक्तं लौकिकं द्विधा।

मात्रावर्णविभेदेन छन्दस्तदिह कथ्यते।। (१/४)

इसी प्रकार छन्दोमञ्जरी में वृत्त और जाति के रूप में छन्दों के दो विभाग ही है –

पद्यं चतुष्पदी तच्च वृत्तं जातिरिति द्विधा।

वृत्तमक्षरसंख्यातं जातिर्मात्रा कृता भवेत्।।

इस प्रकार मात्रा और वर्ण के रूप में छन्दों का विभाग करने से मात्रा छन्द में ही गण छन्दों का भी संग्रह होता है। अतः मात्रा और वर्ण के भेद से लौकिक छन्दों का दो विभाग युक्त हैं।

'शत्रुशल्यचरित' महाकाव्य में महाकवि विश्वनाथ ने विविध छन्दों का प्रयोग किया है। बाईस सर्गो में विभक्त इस विशालकाय महाकाव्य में लगभग 2500 श्लोक हैं, जिनमें महाकवि ने अनेकानेक नवीन छन्दों का प्रयोग किया है। इनमें संगीतमय छन्द रेखांकित करने योग्य है। महाकवि विश्वनाथ लम्बे, लय, ताल युक्त छन्दों की रचना करने में प्रवीण है। इन्होंने जहाँ हरिणी, शिखरिणी, शार्दूलविक्रीडित, स्त्रग्धरा, दण्डक आदि बड़े–बड़े छन्दों का प्रयोग किया हैं और अनुष्टुप्, इन्द्रवज्रा, उपेन्द्रवज्रा, उपजाति वंशस्थ, द्रुतविलम्बित आदि छोटे–छोटे छन्दों का भी अत्यधिक प्रयोग किया है। महाकवि ने छन्दों का प्रयोग वर्ण्य–विषय के अनुरूप करने में दक्षता प्रकट की है। युद्धादि के दृश्य वर्णन में दीर्ध छन्दों का और राजा के सौदंर्य का, यात्रा वर्णन, वन–विहार तथा प्रकृति के श्रृंगारिक चित्रण में संगीत मय छन्दों का प्रयोग किया है।

अतः महाकवि विश्वनाथ विषयानुकूल एवं भावानुकूल छन्दों के उपयोग करने में सिद्धहस्त प्रामाणिक हैं। महाकवि ने महाकाव्य के लक्षणानुसार ही एक सर्ग में

एक तरह का ही छन्द प्रयुक्त किया है तथा सर्ग के अन्तिम पद्यों में छन्द परिवर्तन किया है। कुछ सर्गों में इन्होंने भिन्न–भिन्न छन्दों का प्रयोग किया है।

महाकवि ने महाकाव्य के 22 सर्गों में भिन्न–भिन्न छन्दों का प्रयोग किया है मुख्यतः इन सर्गों में प्रयुक्त छन्द निम्न है –

प्रथम सर्ग–उपजाति, द्वितीय सर्ग–इन्द्रवज्रा, तृतीय सर्ग–शालिनी, चतुर्थ सर्ग–स्वागता, पंचम सर्ग–वसन्ततिलका, छठे सर्ग–वियोगिनी, सातवें सर्ग–प्रमिताक्षरा, आठवें सर्ग–उपेन्द्रवज्रा, नवें सर्ग–अनुष्दुप्, दसवें सर्ग–दुताविलम्बित, ग्यारहवें सर्ग–शिखरिणी, बारहवें सर्ग–वातोर्भी, तेरहवें सर्ग–प्रहर्षिणी, चौदहवें सर्ग–मालिनी, पन्द्रहवें सर्ग–रथोद्धता, सोलहवें सर्ग–वंशस्थ, सत्रहवें सर्ग–कलहंस, अठारहवें–पृथ्वी, उन्नीसवें सर्ग–शार्दुलविक्रीडित, वसन्ततिलका, मन्द्राकान्ता, आर्या, शिखरिणी विविध छन्दों का बीसवें सर्ग–हरिणी, इक्कीसवें सर्ग –मन्दाक्रान्ता तथा बाईसवें सर्ग–पुष्पिताग्रा छन्दों का प्रयोग किया है।

1. **अनुष्दुप् छन्द –**

श्लोके षष्ठं गुरू ज्ञेयं सर्वत्र लद्यु पञ्चमं।

द्विचतुष्पादयोर्ह्रस्वं सप्तमं दीर्घमन्ययोः।।

इसके चारों चरणों में पाँचवा लद्यु, दुसरे चौथे चरण में सातवाँ अक्षर लद्यु और प्रत्येक चरण में छठा अक्षर गुरू होता है।

उदा. –

अथ दुर्योधनो वीरो, युवराजपदस्थितः।

जीवत्येव गुरौ बुन्दीं वशयामास तत्क्षणात्।। शत्रु. 9/1

इस श्लोक के प्रत्येक चरण में अनुष्दुप् छन्द घटित है। प्रत्येक चरण में आठ अक्षरों की एक जाति है।

2. **आर्या छन्द –**

यस्याः पादे प्रथमा द्वादशमात्रास्तथा तृतीयेऽपि।

अष्टादश द्वितीये चतुर्थके पञ्चदश साऽऽर्या।।

आर्या छन्द वह है जिसके प्रथम तथा द्वितीय चरण में 12 और 18 मात्रायें होती हैं, तृतीय तथा चतुर्थ चरण में 12, 15 मात्राएँ होती हैं।

उदा. –

दीने न दीनेतरि देव युष्मद् – 12 मात्राएँ

दानीय पानीय चयव्ययेन। – 18 मात्राएँ

लंका सशंकायितयातुधाना – 12 मात्राएँ

भूयो भवित्री नरसुग्रहा किम्।। (15 मात्राएँ) शत्रु. 18/81

3. **इन्द्रवज्रा –**

स्यादिन्द्रवज्रा यदि तौ जगौ गः।

इसके प्रत्येक चरण में ग्यारह वर्ण होने से सम्पूर्ण छन्द 44 वर्णों का होता हैं, इसके प्रत्येक चरण में क्रमशः तगण, तगण, जगण तथा दो गुरू होते हैं।

उदा. –(तगण) (तगण) जगण (ग – ग)

(1) **अस्त्रीयमानां स्त्रियमप्यजस्त्रं**

युद्धेषु तां चन्द्रमुखीं स भूपः ।

चण्डांशुचण्डोरूकरप्रताप –

श्चक्रे सतन्द्रां विलसद्बलो द्राक् ।। शत्रु. 10/50

(2) **स नृपतिरिति दक्षिणां दिशं तां**

निजसुनिदेशवशंवदां विधाय।

अकबरनृपकामकल्पवृक्षः

सुमगधगीतगुणो ययौ पूरीं स्वाम् ।। शत्रु. 10/51

4. **उपेन्द्रवज्रा –**

उपेन्द्रवज्रा जतजास्ततो गौ।

इसमें जगण तगण जगण तत दो गुरू से संयुक्त होकर 11 वर्णों से युक्त उपेन्द्रवज्रा है। पाद के अन्त में यति होती है।

उदा. –(जगण) (तगण) जगण (ग – ग)

(1) **अथाऽऽर्जुनिः सुर्जनदेवभूपः**

स दुर्जनानां किल कालरात्रिः।

महीं महेन्द्रः कटकाय मानां

परं स्वपाणौ दधदुच्चकाशे ।। शत्रु. 8/1

(2) **अयं सुजानुद्वय लम्बबाहुः**

प्रतप्त चामीकर चारूकान्तिः।

सुपीनवक्षाः कमलायताक्षो

बभूव विक्षोभकरो रिपूणाम् ।। शत्रु. 8/2

5. **उपजाति छन्द –**

अनन्त रोदीरित लक्ष्मभाजौ,

पादौ यदीयावुप जातयस्ताः।

इन्द्रवज्रा व उपेन्द्रवज्रा से मिश्रित लक्षणों से युक्त छन्द उपजाति है। इसके अनेक प्रकार हैं।

(1) इसके प्रथम चरण में – इन्द्रवज्रा, दूसरे, तीसरे और चौथे में उपेन्द्रवज्रा।

(2) पहले दूसरे में – इन्द्रवज्रा, तीसरे चौथे में – उपेन्द्रवज्रा

(3) पहले, दूसरे और चौथे में – इन्द्रवज्रा, तीसरे में – उपेन्द्रवज्रा

उदा. –

वन्दारूवृन्दारकसत्किरीट – इन्द्रवज्रा

रत्नप्रभारञ्जितपादपीठः। – इन्द्रवज्रा

श्रीरूक्मिणीकेलिकलानिधानं – इन्द्रवज्रा

सदा स जीयात् पुरूषः पुराणः – उपेन्द्रवज्रा ।। शत्रु. 1/2

6. **वंशस्थ –**

जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ।

जतौ अर्थात् जगण तथा तगण, जरौ अर्थात् जगण और रगण। क्रमशः जगण तगण जगण तथा रगण इन चारों की समानुभूति को वंशस्थ कहते हैं। यह वर्णिक छन्द है।

उदा. –जगण तगण जगण रगण

गतोऽपिमूर्च्छां स भटो जघान यद् –

द्विषन्तमेकोऽत्र किमद्भुतं नवम्।

दिनेशवंशस्थमहीभूतामसौ

स्वभावसिद्धा ननु वृत्तिरीदृशी ।। शत्रु. 7/46

7. **द्रतविलम्बित छन्द –**

द्रतविलम्बितमाह नभौ भरौ।

नभौ अर्थात् नगण तथा भगण, भरौ अर्थात् भगण और रगण को द्रुतविलम्बित कहते है, यह एक वर्णिक छन्द है इसमें 12 वर्ण होते हैं।

उदा. —नगण भगण भगण रगण

सशतकोटिविराजिकराम्बुजो

द्विजवितीर्णसुवर्णमहीधरैः।

अकृत मूढमतेर्भ्रमतो रवे –

र्द्रुतविलम्बितचारूतरां गतिम् ।। शत्रु. 8/140.

अवनिभारधुरन्धरमुच्चकैः

समरभूमिकरालतरौजसम्।

अकृत भोजमयं प्रियमात्मनो

द्रुततरं निजदेशपतिं नृपः ।। शत्रु. 8/142

8. **भुजंगप्रयात –**

भुजंगप्रयातं चतुर्भिर्यकारैः।

जिस छन्द में चार यगण होते है उसे भुजंगप्रयात कहते हैं। इस छन्द में कुल 12 वर्ण तथा यति पद के अन्त में होती है।

उदा. –

भुजङ्गप्रयाताऽतिजिह्मः स राणा – चार यगण

कुले पांसनः पापकृद्रत्नसिंह:।

स्वकर्मानुरूपाद्रुतंसिद्धिभश्नँ –

स्तुरंगादरंगामयासीत् क्षणेन ।। शत्रु. 7/43

9. **वसन्ततिलका छन्द –**

उक्ता वसन्ततिलका तभजा जगौ गः।

इसमें तगण, भगण, जगण, जगण और दो गुरू युक्त छन्द वसन्ततिलका है।

उदा. –जगण भगण जगण जगण ग – ग

मूर्त्तां प्रसत्तिमिव तां विनिधाम कण्ठे

कंसद्विषो भगवतो नृपतेर्द्विजः सः।।

नक्षत्रयोगसकलग्रहसंक्रमाणा

मुक्तिच्छलादादित सन्ततमाशिषोऽस्मै ।। शत्रु. 14/110

श्रीदेवभूपतिसुतोऽथ बभूव वीरो

धीरोद्धतः समरसिंह इति क्षितीशः।

पित्र्यं पदं समधिगम्य परं धुरीणः

क्षोणीमिमायभुनगेक पुरीमिवोच्चैः ।। शत्रु. 5/1

10. **मालिनी छन्द –**

ननमययुतेयं मालिनी भोगिलोकैः।

क्रमशः नगण, नगण, मगण, यगण, यगण इन 5 गणों से युक्त आठ और सात वर्णों पर यति होती हैं, उसे मालिनी छन्द कहते हैं।

उदा. —नगण नगण मगण यगण यगण

दिनकरकुलहीरः सर्वलोकैकवीरः

स जितधरणि चक्रस्तेजसाऽऽक्रान्तशक्रः।

द्रुतमकृतचतुर्णा छद्मना सागराणां

चतसृषु जययूपान् दिक्षु हत्वाऽरिभूपान ।। शत्रु. 2/97

11. **मन्दाक्रान्ता छन्द –**

मन्दाक्रान्ताम्बुधिरसनगैर्मो भनौ तौ गयुग्मम्।

इसमें मगण, भगण, नगण, तगण, तगण और दो गुरू वर्ण हों, तथा क्रम से 4, 6, 7 वर्णों पर यति होती है। इसमें 17 वर्ण होते है।

उदा. – मगण भगण नगण तगण तगण ग – ग

यस्यामर्थान् दिशति चतुरोऽपि त्रिवेणीयमुच्चैः

सान्तर्वेदिर्भुवि विजयते मुक्तिसङ्केतभूमिः।

भूमिग्रामं निजभुजयशः स्तम्भमत्राधितिष्ठन्

मन्दाक्रान्तः स किल जरसा निर्जरौघानियाज ।। शत्रु. 1/58

12. **शिखरिणी छन्द –**

रसै रूद्रैश्छिन्ना यमन सभलागः शिखरिणी।

इसमें यगण, मगण, नगण, सगण, भगण लघु गुरू होने पर नियम से शिखरिणी छन्द होता है। इसमें 6 तथा 11 पर यति होती है।

उदा. —यगण मगण नगण सगण भगण लघु गुरू

(1) **इदानीं दानीयद्विजनिकरदारिद्रयदलने**

सदाऽनल्पं कल्पद्रुममपि सुमन्दं विरचयन्।

असौ वीरो धैर्य धरणिधरधौरयमपि तं

लघूकुर्वन् मेरूं प्रवरतरबुन्दयां विजयते ।। शत्रु. 12/81

(2) **प्रतिष्ठासौ स्वर्गं द्रुतमकबरे माननृपतो,**

प्रदातुं तन्नप्त्रे गुरूधरणिभारं समुदिते।

प्रसह्य श्री भोजस्त्रिभुवनविजैत्रोऽकबरजं,

शचीशानप्रस्थाधिपतिमकरोच्छाहशिलिमम् ।। शत्रु. 10/52

13. **शार्दुलविक्रीडितम् –**

सूर्याश्वैर्मसजस्ताताः सगुरवः शार्दुलविक्रीडितम्।

सूर्य = बारह, अश्वैः = सात, पर जहाँ यति होती है, मगण, सगण, जगण, सगण, तगण, तगण, सगुरवः = गुरू से युक्त कुल 19 वर्ण हों तो यह शार्दुलविक्रीडित छन्द है।

उदा. –

यो भञ्जन् दशम – ध्वजारिनवमं तत्तु र्यशं सद्विग –

च्छात्रस्याष्टमवेदनां विरचनन्षष्ठ्या भुवोऽसप्तमः।

चञ्चत्पञ्चममध्यमा स विलसद्हष्ट्या तृतीयो ह्यभूद –

आद्यार्याप्त शुभः शुभं सदिशतादेकादशश्रोत्रह्य।। शत्रु. 14/114

14. **स्त्रग्धरा छन्द –**

म्रभ्नैर्यानां त्रयेण त्रिमुनियतियुता स्त्रग्धरा कीर्तितेयम्।

इसमें मगण, रगण, भगण, नगण, तीन यगणों से, 7 – 7 तीन बार यति होती हो वहाँ स्त्रग्धरा होता है इसमें 21 वर्ण होते है।

उदा. –

अध्वानं शंस शीघ्रं वचनविरहितं को नुशंसेदनुद्धे

बन्धो पृच्छामि मार्गं हरिणकृलमहो तजितं त्वद्हशैव।

निःशङ्क वाग्धि मुग्धायनमिह सुभगे दक्षिणं वोत्तरंवा

वक्त्रोक्त्या विद्वन्त्यस्त्वदहितसुद्दशो विप्रलभ्यन्त इत्थम।। शत्रु. 18/50

15. **हरिणी –**

न समरसलागः षड्वेदैर्ह्रयैह्नरिणी मता।

इस छन्द में क्रम से नगण, सगण, मगण, रगण, सगण एवं लघु गुरू होते हैं। इस प्रकार कुल 17 वर्ण होते हैं। 6, 4, 7 पर यति होती है।

उदा. –

लसदुपवनीदेव्या भव्यामतीव वचः सुधा –

मिति नरपतिः पायं (श्र) बोऽञ्जलिना स्वयम्।

विदितमपि तां पृच्छन्नच्छं प्रियागुणवर्णनं

ह्रदि च सुहशं ध्यायं निनाय स यामिनीम् ।। शत्रु. 16/156

16. **शालिनी –**

मात्तौ गौ चेच्छालिनी वेदलोकैः।

जिस छन्द में मगण, तगण, तगण और दो गुरू वर्ण होते हैं वह शालिनी छन्द होता है। इस छन्द में 11 वर्ण होते हैं तथा चार एवं सात पर यति होती है।

उदा. –

वंशेऽथाऽस्मिन् सर्वलोकावतंसे

श्री गोपालः सप्रसूतो नृपालः।

मुष्णन् दस्यून धर्मकर्माणि पुष्णन्

गुवीमुर्वीं गामिवोच्चैर्जुगोप ।। शत्रु. 3/1

17. **वियोगिनी छन्द –**

विषमे स सजा गुरूः समे सभरा लोऽथ गुरूवियोगिनी

विषमे = प्रथम तथा तृतीय चरण में, ससजा = सगण, सगण जगण और एक गुरू हो, समे = द्वितीय तथा चतुर्थ चरणों में सभरा = सगण, भगण रगण, लः = लघु, अथ = और गुरू होने पर वियोगिनी छन्द होता है।

उदा. –

अथ तत्तनुजोऽद्रिमण्डले

नृप नारायणदासनामकः

पितुरेष निशम्य वैशसं

सुनृशंसाद्यवनाद्रुषं दधौ ।। शत्रु. 6/1

18. **पुष्पिताग्रा छन्द –**

अयुजि नयुगरेफतोयकारो, युजि च नजौ जरगाश्च पुष्पिताग्रा (11)

अर्थात् जिस श्लोक में अयुज (विषम) चरणों में अर्थात् प्रथम एवं तृतीय चरणों में क्रमशः नगण के दो जोड़े, एक रगण तथा फिर यगण होता है तथा (समचरणों) युज चरणों में नगण, जगण, जगण, रगण एवं एक गुरू हो वहाँ पुष्पिताग्रा छन्द होता है।

उदा. –

अहमहमिकया कृतप्रहारा = 12

यवनचमूनृपभारमल्ल बाणैः। = 13

सुचिरमनुचकार किंशुकालीं

क्षतविगलद्रुधिराऽथ पुष्पिताग्राम् ।। शत्रु. 5/71

19. **रथोद्धता छन्द –**

रात्परैर्नरलवै रथोद्धता'' अथवा ''राभराविह रथोद्धता लगौ

यह 11 वर्णों का वर्णिक समछन्द है। इसमें क्रमशः रगण, नगण, रगण एवं लघु – गुरू होता है।

उदा. –

शलैपातपृथगम्बुविभ्रमा

नाशु नाकसरितो भुवि भ्रमान्।

सन्दिशद्भिरतिचारूचामरै

नन्विहारि स नृपोरूचाऽमरैः ।। शत्रु. 15/3

तत्र चित्रचरिते स्वमन्दिर –

द्वारदेशमधितिष्ठति प्रभौ।

सज्जितं बहुविधं विधानती

यानमन्तिकमनायि मानवैः ।। शत्रु. 15/4

20. **स्त्रग्विणी छन्द –**

''कीर्तितैषां चतद्रेफिका स्त्रग्विणी''

इसके प्रत्येक चरण में 12 वर्ण होते है, और चार प्रकार होते है।

उदा. –

तौ नृवीरावुभौ सूर्यराणान्वयौ = 12

यद्यपि स्वर्गतौ सार्धमेव क्षणात्।

अप्सरोभिः कृतां स्त्रग्विणीं स्वां तनू

सूर्यमल्लो दधे किन्तु रेजेतराम् ।। शत्रु. 7/45

21. **तोटकम् –**

लक्षण :– **" इह तोटक–मम्बुधिसैः प्रथितम्।"**

इसके प्रत्येक पाद में 12 अक्षर विशिष्ट है। इसमें चार सगण होते हैं।

उदा. –

अवरोधवधूर्मधुराः स धरा – 12 वर्ण

धिपतिर्धृतमध्यविदग्धवयाः।

रतिकेलिकलाकुशला रमयन्

शममन्दमविन्दत बन्धुमुदः ।। शत्रु. 19/1

22. **प्रहर्षिणी छन्द –**

म्नौ ज्रौ ग–स्त्रिदशयतिः प्रहर्षिणीयम्

इसके प्रत्येक चरण में 13 अक्षर होते हैं, प्रत्येक चरण में – मगण, नगण, जगण, रगण, गुरू होते है यहाँ तृतीय और दसवें वर्ण पर यति होती हैं।

उदा. –

आलिंगन् भुजविटपं लताबलानां

सौत्कम्पं सदधरपल्लवञ्च चुम्बन्।

किञ्चासां स्तबककुचं स्पृशन्नशंकः

कामीवालसनिलोऽथ दक्षिणात्यः ।। शत्रु. 19/12

23. **पृथ्वी छन्द –**

जसौ जसयला वसु–ग्रह–यतिश्च पृथ्वी गुरूः।

इसके प्रत्येक चरण में 17 वर्ण होते हैं प्रतिपादञ्च – जगण, सगण, जगण, सगण, यगण, लघु गुरू। प्रत्येक पाद में आठ व नौ वर्णों पर यति होती है।

उदा. –

अथ प्रथमविभ्रमानुमसम्मदाभ्भोनिधि –

प्रगाहनविधिस्फुरन्निरवधिश्रमस्यादगत्।

चिरंकृतशयः महाशयममुं प्रियासंयुतं

प्रभात उदबूबुधन बिबुधमागधश्रेणयः ।। शत्रु. 18/1

24. **स्वागता छन्द –**

लक्षण :– **स्वागतेति रनभाद् गुरूयुग्मम्।। (वृतरत्नाकार 3/93)**

जिस छन्द के चारों पादों में क्रमशः रगण, नगण, भगण और 2 गुरू वर्ण होते हैं, पादान्त में यति होती है।

उदा. –

मन्महे स किल सन्महनीयः

शक्र एवं वरविक्रमबन्धुः।

पाणिराजिशतकोटिरजस्त्रं

कालकृत् परबलस्य नृपालः ।। शत्रु. 4/3

25. **विद्युन्माला छन्द –**

लक्षण :– **विद्युन्माला मौ गौ ।।** (11)

जिस छन्द के चारों पादों में क्रमशः 2 मगण और 2 गुरू होते हैं, उसे विद्युन्माला छन्द कहते है। इस समवृत के प्रत्येक चरण में 8 वर्ण तथा प्रत्येक चार वर्ण पर यति होती है।

उदा. –

धारावर्षं वर्षत्युच्चैः – 8 वर्ण

सैन्याम्भोदे तौरूष्केऽस्मिन्ः।

शस्त्रज्वाला विद्युन्माला

प्रादुर्भूता रेजे सद्यः ।। शत्रु. 5/69

26. **वातोर्मी छन्द –**

लक्षण : – **वातोर्मी म्भौ त्गौ ग् च।।**

जिस छन्द के चारों पादों में क्रमशः 1 मगण, 1 भगण, 1 तगण, और 2 गुरू वर्ण होते हैं और 4, 7 पर यति होती है।

उदा. –

श्रीमद्रत्नक्षितिपालस्य नप्ता, गोपरनाथादथ लब्धावतारः।

सम्प्रत्युच्चैः प्रथित सर्वलोक मुख्यो वीरो जयताच्छत्रुशल्यः ।। शत्रु. 12/1

27. **कुसुमविचित्रा छन्द –**

लक्षण : – **"कुसुमविचित्रा न्यौ न्यौ"।।**

जिस छन्द के चारों पादों में क्रमशः 1 नगण, 1 यगण, 1 नगण, यगण होते हैं, तथा 6, 6 पर यति होती हैं।

उदा. –

यदपि वसन्ते विरहिद्रुरन्ते

समधृत धन्यां रूचिमिह वन्या।

तदपि रसलावलिरलिमालां

मदयति चित्रा कुसुमविचित्रा ।। शत्रु. 19/22

28. **प्रमिताक्षरा –**

लक्षण : – **''प्रतिमाक्षरा स्जौ सौ''।**

जिस छन्द के चारों पादों में क्रमशः 1 सगण, 1 जगण, 2 सगण होते हैं, यति पदान्त में होती हैं, उसे प्रमिताक्षरा छन्द कहते हैं।

उदा. –

ततस्तद्गिरा जातकोपः स पापो

नृपो रत्नसिंहः परावर्तिताश्वः।

विधुन्वन् स्वपाणौ कृपाणीं

विकोषां हठादभ्यधावद्भटं तं निहन्तुम ।। शत्रु. 7/41

29. **मत्ताक्रीडा छन्द –**

लक्षण : – **''मत्ताक्रीडा मौ त्नौ नौ न्लौग् वसु–पञ्चदशकौ''।।**

जिस छन्द के चारों पादों में क्रमशः 2 मगण, 1 तगण, 4 नगण, 1 लघु, 1 गुरू होते हैं, 8, 15 पर यति होती है उसे मत्ताक्रीडा छन्द कहते है।

उदा. –

धारावर्षं वर्षद्वर्षासमयघनघनबहलजलमदया

क्रीडन्त्योच्चैर्मत्ताक्रीडं विकटतटयुगलकषनिपुणया।

ताप्या नदया रूद्धं भीतं खुरूमयमथ सकलजनशरणभुजः

श्रीमान् जिष्णू रत्नोऽगौप्सीत्वरिततरबहुतरतरिवितरणैः ।। शत्रु. 11/167

30. **दण्डक छन्द –**

लक्षण : – **"दण्डको नौ रः"।**

जिस छन्द के चारों पादों में क्रमशः 2 नगण, और 7 रगण होते हैं, उसे 'दण्डक' छन्द कहते है। यति पादान्त में।

उदा. –

युगविलयविराजमानाऽसमानाक्षकुण्ड –

प्रचण्डोल्लसज्ज्वालजालेऽनले लेलिहाने क्षणात् –

ज्जगदिदमखिलं वषट् कुर्वतः (ऽ।ऽ)[1] सर्व ते

पर्वतशात्मजामर्धगात्रे निजे बिभ्रतः।

द्रुतमुपदिशतः सुखासारसंसारदुःसागरे

मज्जतः सज्जनस्योच्चकैस्तारकं व्रह्म तत्

त्रिभुवनमहितं महादेव वन्दे सदा

वेदवृन्देन गीतं श्रितं नाकिभिः पादपङ्केरूहम् ।। शत्रु. 8/124

One word (ऽ।ऽ) is missing here as demanded by the metre.

31. **नाराचक छन्द –**

लक्षण : – **नाराचक्रं नौ रौ रौ।।**

जिस छन्द के चारों पादों में क्रमशः 2 नगण, 4 रगण होते हैं, यति 10, 8 पर होती हैं, उसे नाराचक छन्द कहते हैं।

उदा. –

आलोक्य यावनं बलं

वृन्दावतीसमीपतः।

आकृष्य चापमुच्चकै –

र्नाराचकं ववर्ष सः ।। शत्रु. 5/70

32. **गीति छन्द –**

आर्या प्रथमदलोक्तं यदि कथमपि लक्षणं भवेद्रुभयोः।

दलयोः कृतयतिशोभां तां गीतिं गीतवान् भुजङ्गेशः।।

गीति छन्द आर्या का ही एक–भेद विशेष है। इसके प्रथम एवं तृतीय चरण में 12 तथा द्वितीय चरण में 18 मात्रायें होती हैं।

यथा –

क्षुत्क्षुभितकुटुम्बा नतमुखबिम्बा

लसदविलम्बा मृतिविषये

तव कीर्तिसुगङ्गास्वधिधृतभंगा

द्रुततरमङ्गान्यदधत ये।

करकलितकपालं परिधृतशूलं

शिरसि जटालंकृतचिरं

दधतो वपुरेते सपदि परेते –

शमनुहरन्ते मदनहरम् ।। शत्रु. 18/72

33. **पञ्चचामरम् छन्द –**

जभौ जरौ वदति पञ्चचामरम्। (15)

जिस छन्द के प्रत्येक चरण में क्रमशः जगण, भगण, जगण तथा रगण होते हों वहाँ पञ्चचामर नामक छन्द होता है। इस छन्द के पादान्त पर विराम होता है।

उदा. –

किरीटकोटिसन्नटद्धरिन्मणिप्रभाभरैः

शिखण्डिपिच्छमण्डनश्रियं विडम्बयन्निव।

सुकुण्डलीयरत्नभाविराजिगण्डमडण्लः

प्रफुल्लपुण्डरीकवद्विराजमानलोचनः ।। शत्रु. 14/93

34. **पादाकुलकवृत्तम् –**

यदतीतकृतविविधलक्ष्मयुतैर्मात्रासमपादिपादैः कलितम्।

अनियतवृत्तपरिमाणयुक्तं प्रथितं जगत्सु पादाकुलम।। 37।। (13)

जो छन्द मात्रासमक आदि वृतों के लक्षणों से युक्त हों, जिसके चारों चरणों में भिन्न–भिन्न छन्दों के लक्षण हों, किन्तु 16 मात्राएँ अवश्य हों, तो उसे पादाकुलक कहते है।

उदा. –

सोऽथ विभावसुभास्वरवंश्यः

सुर्जनदेवः सुन्दरवेषः।

वन्दितसुविन्दुमाधवमगमत्

पदाकुलकं भक्तिरसार्द्रः ।। शत्रु. 8/125

35. **प्रमाणिका छन्द –**

प्रमाणिका जरौ लगौ।। 17।। वृतरत्नाकरः।

जिस छन्द के पाद में जगण रगण तथा लघु और गुरू हों उसे प्रमाणिका छन्द कहते हैं।

उदा. –

अथ प्रचण्डमण्डपप्रभुः सुभूरिरोषणः।।

नृपं तमाययौ चमूं दधत् किलाऽप्रभाणिकाम् ।। शत्रु. 5/68

36. **क्षमा छन्द –**

तुरगरसयतिर्नौ ततौ गः क्षमा।। 69 ।। वृतरत्नाकरः

जिस छन्द में दो नगण और दो तगण तथा अन्त में एक गुरू हों, उसे क्षमा नामक वृत्त कहते हैं। इसमें सात और छः अक्षरों के बाद विराम होता है।

उदा. –

अथ यवननृपः संगरेनिष्कृपः

प्रहतपरबलः समदेनोत्कटः।

दधदतिमहतीं हन्त वृन्दावतीं

निजकरवशगां स क्षमां स्वामगात् ।। शत्रु. 5/75

37. **कोकिलक छन्द –**

मुनिगुहकार्णवैः कृतयति वद कोकिलकम्।। 99 ।। वृतरत्नाकर

नर्कुटक छन्द को ही कोकिलक नामक छन्द कहते हैं। इसमें मुनि–सात, स्कन्द के मुख अर्थात् छः और अर्णवः–चार इन अक्षरों के बाद यति होती है। केवल यतिभेद से ही छन्द में नामभेद हो गया है।

उदा. –

उचितपरस्परप्रथमसंगमसम्प्रसरत् –

पुलककुलोल्लसद्रूचिकोर चारूरूचोः।

सरसरसालकस्मितलसन्नवमल्लिकयोः

परिणयमंगलं पठति किं मृदुकोकिलकः ।। शत्रु. 19/42

38. **कलहंसः –**

सजगा सगौ च कथितः कलहंस।।

जिसके प्रत्येक चरण में क्रमशः सगण, जगण, सगण, सगण और एक गुरू वर्ण हों उसको कलहंस नामक छन्द कहते हैं।

उदा. –

अथ सम्मदासवमदाह्वतचेता

निजसम्पदा शिथिलयन् स दिगीशान्।

धरणीपतिर्दलपतिः स्थितिविज्ञः

श्चतुरानवोचदचिरात् सचिवान् स्वान् ।। शत्रु. 17/1

39. **चम्पकमाला वृत्तम –**

लक्षण : – **चम्पकमाला चेदभमसादग।**

इसके चारों चरणों में क्रमशः भगण, मगण, सगण और एक वर्ण गुरू हों, उसे चम्पकमाला नामक वृत्त कहते हैं।

उदा. –

वन्दनपूर्वं तेन गृहीता भूमिभुजा सा चम्पकमाला

मण्डितकण्ठाऽशोभत भव्या जैत्ररमाया बाहुलतेव।। शत्रु. 14/109

इत्थममुष्य प्रेक्ष्यसुभक्तिं फुल्लहगन्तं वीक्ष्य मुरारिम्।

सिद्धिमिवोच्चैरर्वकवर्यश्चम्पकमालार्पयदस्मै ।। शत्रु. 8/108

40. **धृतिः –**

स्याद् भूतर्त्वश्वैः कुसुमितलतावेल्लिता म्तौ नयौ यौ।।

जिसके चारों चरणों में मगण, तगण, नगण, यगण, यगण, यगण, हो, उसको कुसुमितलतावेल्लिता नामक वृत्त कहते हैं इसमें पाँच छः सात वर्णों पर यति होती है। धृतिः के अन्तर्गत एक ही वृत्त आता है।

उदा. –

उन्मीलल्लीलं छदकरशिफाकोरकोरोजराजि –

न्युच्चैश्चञ्चत्सत्सरसिजमुखी बन्धुजीवाधरश्रीः।

त्याजात्पुष्पाणां कुसुमितलतावल्लिताकेलिवाटी

कामार्तेवोच्चैरूरू परिवृढालोकतः सिष्मिये सा ।। शत्रु. 19/10

41. **वैश्वदेवी छन्द –**

लक्षण : – **पंचाश्वैश्छिन्ना वैश्वदेवी ममौ यौ।**

जिसके चारों चरणों में दो मगण और दो यगण हों, पाँचवें तथा सातवें वर्ण पर यति हो, उसको वैश्वदेवी वृत्त कहते हैं।

उदा. –

तैरन्योन्येषामानने क्षिप्यमाणाः

सारा आसारा वारिणः स्वच्छभासः

सम्फुल्लाभ्भोजश्रेणिजैत्रश्रियोच्चै –

मुक्ता मुक्तानां राजयः किं विरेजुः ।। शत्रु. 19/121

उपर्युक्त विवेचन से महाकवि का छन्द योजना में परम वैदुष्य प्रकट होता हैं, इन्होंने महाकाव्य के 22 सर्गों में प्रचलित एवं अप्रचलित छन्दों का प्रयोग किया है। महाकवि का छन्दों के प्रयोग में विपुल शब्द भण्डार, कल्पनाशक्ति का चमत्कार तथा पाण्डित्य प्रकट होता है।

.....********.....

1. संस्कृत वाङ्मय का वृहद इतिहास अष्टम खण्ड (काव्यशास्त्र)
प्रधान सम्पादक – पद्मभूषण आचार्य बलदेव उपाध्याय

सम्पादक – स्व. आचार्य करूणापति त्रिपाठी

सह सम्पादक – आचार्य वायुनन्दन पाण्डेय पृ.सं. 651 – 652

2. द्र. वै. छ. मी. पृ.सं. 57 – 59 छन्दः शास्त्रमिदं पुरा त्रिनयनाल्लेभे गुह्होऽनादितः स्तस्मात् प्राप सनत्कुमारकमुनिस्तस्मात् सुराणां गुरूः।

तस्माद् देवपतिस्ततः फणिपतिस्तस्माच्च सत्पिङ्मल–स्तंच्छि ष्यैर्बहुभिर्महात्मभिरथो मह्हयां प्रतिष्ठापितम्।।

यह पद्य ग्रन्थाकार की रचना नहीं है, यह प्रतीत होता है क्योंकि किसी हस्तलेख में भाष्य के अन्त में उद्धत है।

3. छन्दः पद्येऽभिलाषे च (अ. को. ३/३/२३२)
4. का. मी. अ. ३
5. छन्दांसि छादनात् (नि. ६/२)
6. देवावै मृत्योर्बिभ्यतस्त्रर्यी विद्यां प्राविशँस्ते छन्दोभिरच्छादन्, यदेभिरच्छादयँस्तच्छन्दसां छन्दस्त्वम्।। छा. उ. १/४/२
7. वैदिक छन्दों का तात्पर्य है अपौरूषेय वैदिक साहित्य में अधिकत्तम प्रयुक्त छन्द तथा लौकिक छन्दों का भाव है लौकिक साहित्य में अधिक रूप से प्रयुक्त

छन्द। वस्तुतः गायत्री आदि छन्द मूलभूत है तथा इनसे अन्य मात्रावृत्तों का विकास हुआ है।

8. उ. सू. – 1/5

9. उ. सू. – 1/2

10. उ. सू. – 2/14/12

11. संस्कृत व्याकरणमञ्जु–मञ्जूषा – मंजु गौतम / चन्द्रालय–प्रकाशन

12. पिंगलकृत छन्दः सूत्रम् – डॉ. कपिल देव द्विवेदी, डॉ. श्यामलाल सिंह पृ.सं. 164 – 165

13. वृत्तरत्नाकरः – आचार्य बलदेव उपाध्याय चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन – 2012

14. छन्दोमञ्जरी – डॉ. ब्रह्मानन्द त्रिपाठी –चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन – 2012

15. वृत्तरत्नाकरः – प्रो. ताराशंकर शर्मा हंसा प्रकाशन–प्रथम – 2012

अलंकार –

उपकुर्वन्ति तं सन्तं येऽङ्गद्वारेणजातुचिद् ।।

हारादिवदलंकारास्ते ऽनुप्रासोपमादयः ।। का. प्र. 8/6

अर्थात् काव्य के अंग शब्द और अर्थ में रहते हुए शब्द और अर्थ को उत्कृ –ष्ट बनाते हुए परम्परया अंगी (रसादि) के भी उत्कर्षक को अलंकार कहते है।

अलंकारों से काव्य की सुषमा अत्यधिक बढ़ती है। जैसे अलंकारों को जिस अंग में धारण किये जाते हैं उस अंग की शोभा को बढ़ाते हुए आत्मा को भी सुशोभित करते हैं, उसी प्रकार काव्य के अलंकार भी काव्य के अंगों शब्द और अर्थ को सुशोभित करते हुए काव्यात्मा का भी उत्कर्ष करते हैं। [1]

अलंकार सम्प्रदाय के प्रवर्तक आचार्य भामह को माना जाता है। आचार्य भामह ने रस, भाव आदि का समावेश भी अलंकारों में करके काव्य में अलंकारो का अंगित्व तथा रस का अंगत्व प्रतिपादित किया था।

अलंकारवादी आचार्यों ने अलंकार का व्यापक अर्थ माना है। इन्होंने काव्य का सर्वस्व अलंकार को ही माना है। अलंकारवादी रूय्यक का मत है कि प्राचीन अलंकारवादी आचार्य भामह, उद्भट आदि प्रतीयमान (व्यङ्गय) अर्थ को वाच्य का सहायक अलंकार के अन्तर्गत मानते हैं। इन आचार्यों के अनुसार रसादि अलंकार के ही उपकारक तत्व हैं अलंकारवादी आचार्यों के कथनानुसार अलंकारों की प्रधानता के कारण रसादि के वर्णन होते हुए भी काव्यमीमांसा के ग्रंथ ''अलंकारशास्त्र'' के नाम से प्रसिद्ध हुए हैं।

काव्यप्रकाशकार मम्मट के अलंकार को काव्यत्व का प्रयोजक माना है, किन्तु सर्वत्र अलंकार की स्पष्ट प्रीति को काव्यतत्व के लिये अनिवार्य नहीं माना है – ''अनलंकृति पुनः क्वापि'' से यही प्रकट होता है, किन्तु मम्मट के इस कथन से 'चन्द्रालोक' के रचयिता जयदेव अति प्रसन्न हुए और अलंकार का महत्व निम्न प्रकार प्रतिपादित किया –

अंगीकरोति यः काव्यं शब्दार्थावनलंकृति।

असौ न मन्यते कष्मादनुष्णमनलंकृती ।। चन्द्रालोक

अर्थात् जो अलंकार से रहित शब्द अर्थ को काव्य स्वीकार कर सकता है, वह अग्नि को उष्णता से रहित क्यों नहीं मान लेता।

आचार्य दण्डी ने काव्य के शोभाकारक धर्मों को अलंकार कहा –

काव्यशोभाकरान् धर्मानलंकारान् प्रचक्षते।

आचार्य वामन ने सौंदर्य को अलंकार मानकर उसी के द्वारा काव्य की महानता प्रतिपादित की थी –

काव्यं ग्राह्यमलंकारात् सौंदर्यमलंकारः।

अलंकार शब्द की व्युत्पत्ति एवं लक्षण –

अलंकार शब्द अलम् + कृ + घञ् से बना है जिसका तात्पर्य–सजावट । अलंकार में अलं और कार दो शब्द से निर्मित हुआ है। अलं का अर्थ–भूषण । जो अलंकृत करे, वह अलंकार है। जिस पदार्थ या तत्व के द्वारा कोई वस्तु सुशोभित की जाए, उसके सौंदर्य में वृद्धि हो, वह पदार्थ या तत्व अलंकार कहलाता है। यह अलंकार जिस वस्तु को पहनाए जाते हैं, उसको अलंकृत करते है।

'अलंकारोतीति अलंकार' अथवा **'अलंकियते अनेन इति अलंकारः'**।

इस प्रकार अलंकार गुणों का उत्कर्ष करते हैं और सौंदर्य को बढ़ाते है। अलंकार स्वयं काव्य के साध्य न होकर साधनमात्र है।

अलंकारो का वर्गीकरण –

सर्वप्रथम रूद्रट ने अलंकारो का दो वर्गों में विभाजित किया–शब्दालंकार तथा अर्थालंकार। शब्दालंकारों में वक्रोति, अनुप्रास, यमक, श्लेष तथा चित्र को माना है। अर्थालंकारों को मुख्यःत चार वर्गों में विभक्त किया है– 1 वास्तववर्ग 2 औपम्यवर्ग 3 अतिशयवर्ग तथा 4 श्लेषवर्ग।

श्लेष को उभयालंकार (शब्दार्थालंकार) के रूप में प्रतिपादित करने का श्रेय रूद्रट को ही देना चाहिए।

अर्थालंकार के उपवर्ग 'वास्तव' में वस्तु के आधार पर अलंकारो की स्थापना की गई है जैसे सहोक्ति में दो वस्तुओं का एक साथ वर्णन किया जाता है औपम्यवर्ग का आधार उपमा (सादृश्य) है।

भोजराज एवं आचार्य मम्मट ने स्पष्टतः तीन वर्गों का विभाजन किया है– शब्दालंकार, अर्थालंकार तथा उभयालंकार। अलंकारों का यह वर्गीकरण वैज्ञानिक है।

अलंकार सर्वस्वकार रूय्यक ने अंलकारो के वर्गीकरण में एक नयी क्रान्ति ला दी। इन्होंने अलंकारों को प्रथमतः दो वर्गों में रखा है 1. शुद्धवर्ग तथा 2. मिश्रवर्ग। शुद्धवर्ग को भी (1) पौनरूक्त्य वर्ग (शब्दालंकार) तथा अर्थालंकार वर्ग में विभाजित किया है पौनरूक्त्य वर्ग के कई भेद किए है– शब्द, अर्थ, उभय तथा पाठ शब्दपौनरूक्त्य भी व्यंजनमात्र पौनरूक्त्य तथा स्वरव्यंजनसमुदाय पौनरूक्त्य।

अर्थालंकारों का वर्गीकरण आचार्य रूय्यक ने सादृश्य, विरोध, श्रृंखलाबन्ध, तर्कन्याय, वाक्यन्याय, लोकन्याय, गूढ़ार्थप्रतीति तथा चित्रवृत्ति के आधार पर किया है। [2]

'शत्रुशल्यचरित' महाकाव्य में शब्दालंकारों तथा अर्थालंकारों का स्वाभाविक व चमत्कार पूर्ण प्रयोग हुआ है। महाकवि अलंकारो के प्रयोग में सिद्धहस्त है।

1 अनुप्रास अलंकार –

अनुप्रासः शब्दसाम्यं वैषम्येऽपि स्वरस्य यत्।। सा. द. 10/2

स्वरों के असमान होने पर भी व्यंजनों की समानता रस (भाव) आदि के अनुकूल (व्यंजनों की) बहुत व्यवधान से रहित चमत्कार जनक (प्रकृष्ट) योजना ही अनुप्रास है। [3]

उदा.

वन्दारूवृन्दारकसत्किरीट –

रत्नप्रभारञ्जितपादपीठः।

श्रीरूक्मिणीकेलिकलानिधानं

स्दा स जीयात् पुरूषः पुराण ।। शत्रु. 1/2

प्रौढ़प्रतापाऽऽहितवैरिदण्डः

सुतो बभूवाडस्य स वीरदण्डः।

असूत पुत्रं किल योऽरिमन्त्रं

प्रत्यर्थिसंहारकनायमन्त्रम् ।। शत्रु. 1/55

महाकवि ने अनुप्रास के सभी प्रकारों का प्रयोग किया है यहाँ प्रथम श्लोक में छेकानुप्रास द्वितीय में अन्त्यानुप्रास अलंकार है। वन्दारू एवं वृन्दार दोनों शब्दों का अर्थ भिन्न है इसी प्रकार वैरिदण्ड, वीरदण्ड, योऽरिमन्त्रं एवं मन्त्रं सभी में व्यंजनों की समानता होने पर रस आदि भावों के अनुकूल होने से चमत्कार पूर्ण अनुप्रास अलंकार का प्रयोग हुआ है। रसभावदि के अनुकूल वर्ण तथा शब्दों की इस प्रकार की योजना से इनके बीच अधिक व्यवधान न होने के कारण अनुप्रास अलंकार है।

2 यमक अलंकार –

सत्यर्थे प्रथगर्थायाः स्वरव्यञ्जनसंहतेः।

क्रमणे तैनैवावृत्तिर्यमकं विनिगद्यते ।। सा. द. 10/8

अर्थात् अर्थ होने पर, भिन्न–भिन्न अर्थ वाले वर्ण समुदाय का पूर्वक्रम से ही (सा) आवृत्ति (पुनः श्रृतिः) यमक अलंकार कहलाता है।

उदा.

तेन भूपरिवृढेन दृढेन

कार्मुकेन वसुधा वसुधाम्ना।

शासता विलसता गुणवृन्दै –

र्वश्वमाशु सुयशोभिरशोभि।। शत्रु. 4/26

महाकवि की शब्दालंकार प्रियता उनकी वैदुष्यता को प्रकट करता है। यहाँ महाकवि ने अत्यन्त सुन्दर ढंग से यमक अलंकार का प्रयोग किया है। शब्दों के भिन्न–भिन्न अर्थ होने पर भी वर्गों की पुनरावृति यमक अलंकार को निर्दिष्ट करती है। महाकवि ने सम्पूर्ण दशम् सर्ग में यमक अलंकार का ही प्रयोग किया है।

3 रूपक अलंकार –

रूपकं रूपितारोपो विषये निरपह्नवे।

तत्परम्परिंत साङ्गं निरङ्गमिति च त्रिधा।। सा. द. 10/28

जो उपमान तथा उपमेय का अभेदारोप (आरोपित या कल्पित अभेद) है, वह रूपक अलंकार कहलाता है अर्थात् जिन उपमान तथा अपमेय का भेद (वैधर्म्य) प्रकट है उनमें अत्यन्त साम्य के कारण अभेद का आरोप करना (रूपक) है। मूल रूप से यह तीन प्रकार परम्परित, सांगम्, निरंगं है।

उदा.

चित्रं नृसिंहः प्रियसद्विपेन्द्रः

सत्यं स जिष्णुर्बलदत्तमुद्रः।

ईशो ध्रुवं कामदसच्चरित्रः

श्रीशः सपद्रभायतचारूनेत्रः ।। शत्रु. 2/6

महाकवि ने रूपक अलंकार का प्रयोग महाकाव्य के प्रत्येक सर्ग में अत्यधिक रूप से किया है। यहाँ सिंह के समान राजा वासुदेव के गुणों को प्रदर्शित करने के लिए उन पर इन्द्र, शिव आदि महान देवता आदि का आरोप कर रूपक के द्वारा वैशिष्ट्य प्रकट किया है।

4 उपमा अलंकार –

साम्यं वाच्यमवैधर्म्यं वाक्यैक्य उपमा द्वयोः ।। सा. द. 10/14

(उपमान तथा उपमेय का) का भेद होने पर (दोनों के गुण, क्रिया) धर्म की समानता का वर्णन उपमालंकार है।

उदा.

न्यस्य पुत्रशिरसि क्षितिभारं

दुर्धरं फणभृताऽपि चिरेण।

स्वर्भरं सं मघवेव जयन्ते

वङ्गदेवनृपतिः क्लम मौज्झत् ।। शत्रु. 4/61

इन्दुनेव गगनाङ्गणमुच्चै –

भुनिनेव सकलं ग्रहजालम्।

भासुरेण मणिनेव ग्रहजालम्।

तेन भूमिवलयं बहु रेजे ।। शत्रु. 4/62

यहाँ वंगदेव अपने पुत्र को शासन कार्य सौंपता हुआ उसकी तुलना सुर्य, चन्द्रमा तथा अपने शासन को इन्द्र के शासन के समान बताने से उपमा अलंकार है।

5 उत्प्रेक्षा अलंकार –

भवेत्संभावनोत्प्रेक्षा प्रकृतस्य परात्मना।

वाच्या प्रतीयमाना सा प्रथमं द्विविधा मता ।। सा. द. 10/40

जो प्रकृत (वर्णनीय) वस्तु की सम अर्थात् उपमान के साथ सम्भावना करना है, वही उत्प्रेक्षा अलंकार है। इसके वाच्य और प्रतीयमान मूलतः दो रूप है, यथा –

दिवसनायक कार्यविधित्सया

किमु निशास्वपि यद्धरसौधजा।

कमलरागमणि प्रकरोल्लस –

च्छविरलं विरलं विदधे तमः ।। शत्रु. 10/39

महाकवि विश्वनाथ का अभिप्राय यह है कि जिस नगरी के श्रेष्ठ महलों में पद्यराग मणियों की कान्ति के समुह से रात्री में भी सूर्य के समान कार्य कर अंधकार को नष्ट कर रही है। यहाँ पर पद्यराग की कान्ति सूर्य से सम्भावना कर अन्धकार को कम करने के कारण उत्प्रेक्षा अलंकार है।

6 श्लेष अलंकार –

वाच्यभेदेन भिन्ना यद् युगपदभाषणस्पृशः।

श्लिषान्ति शब्दाः, श्लेषोऽसावक्षरादिभिरष्टधा।। का. प्र.(नवम उल्लास/84)

अर्थ भेद के कारण भिन्न – भिन्न होकर भी जहाँ शब्द एक उच्चारण के विषय होते हुए श्लिष्ट (एकरूप) प्रतीत होते है, वह श्लेष अलंकार है। वह श्लेष अक्षर आदि के भेद से आठ प्रकार का होता है।

धर्मः स नूनं न कठोर दण्डो

नृपः स भीमो न तु मागधारिः।

वीरः किरीरी न कृपादिशत्रु

र्नाम्नाऽनलो नैष कलेस्तु वश्यः ।। शत्रु. 1/30

वह राजा चाहुवान निश्चय ही धर्मात्मा और कठोर दण्ड देने वाला नहीं था। यह राजा शत्रुओं में भयंकर भीमसेन किन्तु मगध राजाओं का शत्रु नहीं था। भीमसेन ने तो जरासन्ध की हत्या की थी, यह वीर राजचिन्ह युक्त महाभारत के तृतीय पाण्डव अर्जुन है। जो दयावान है, अर्जुन ने भी महाभारत युद्ध में दुर्योधन पक्ष पर कृपा की थी। यह चाहुवान नाम से अभिहित 'अ' लोप इति पक्ष में राजा

नल व दमयन्ती का पुत्र हैं। भिन्न – भिन्न अर्थो से राजा नल की विशेषताओं का वर्णन करने से यहाँ श्लेष अलंकार है।

7 अपहनुति अलंकार –

प्रकृतं यन्निषिध्यान्यत्साध्यते सा त्वपह्नुतिः। का. प्र. 146

जहाँ प्रकृत अर्थात् वर्णनीय (उपमेय) का निषेध करके अन्य अर्थात् उपमान की सिद्धि की जाती है, वह अ अपहनुति अलंकार है। अर्थात् जो उपमेय को असत्य बतलाकर उपमान को सत्य रूप में स्थापित किया जाता हैं, वह अपहनुति अलंकार है।

दिनकरकुलहीरः सर्वलौकैकवीरः

स जितधरणिचक्रस्तेजसाऽऽक्रान्तशक्रः।

द्रुतमकृतचतुर्णां छद्भना सागराणां

चतुसृषु जययूपान दिक्षु हत्वाऽरिभूपान्।। शत्रु. 2/97

सूर्यकुलोत्पन्न, व्रजमणि की तरह प्रकाशवान, सभी लोकों में एकमात्र वीर उस राजा (वासुदेव) ने शत्रु राजाओं को मारकर, अपने तेज से इन्द्र को भी जीत लिया था। ऐसे वासुदेव ने मानों चारों दिशाओं में विजय स्तम्भ रूपी चार समुद्र बनवाए और शीघ्र ही यज्ञ करके तीनों लोकों में यश का प्रसार किया। यहाँ प्रकृति का निषेध करके राजा वासुदेव की कीर्ति की सिद्धि के कारण अपहनुति अलंकार है।

8 समासोक्ति अलंकार –

परोक्तिर्भेदकैः श्लिष्टैः समासोक्तिः।। का. प्र. 10/148

श्लिष्ट विशेषणों के द्वारा (भेदकैः) पर अर्थात् अप्रकृत अर्थ का बोधन समासोक्ति अलंकार है।

उदा.

नाम्नाऽनलोऽप्युग्रकराभितप्तां

क्षोणीमिमां दुर्नयदावदग्धाम्।

मुहुर्वितीणमिलजीवनौधैः

सञ्जातमूर्च्छामिवसिञ्चति स्म।। शत्रु. 1/31

राजा अनल अग्नि का पर्याय होने से दाहकत्व से युक्त है दुराचार के प्रति सदाचारी, वन में दावानल के समान ज्वलित, जजिया कर से तृप्त, प्रचण्ड अग्नि की ज्वाला से तापित किरण, मूर्छित की तरह संज्ञाहीन, इस प्रकार की भारत भूमि को पुण्य रूपी प्राणियों के आधार भूत जल से सिंचित किया। जिस प्रकार दाहक गुण युक्त होने पर भी अनल राजा ने जल से पृथ्वी को सिंचित किया यहां कवि ने– 'वह्निना सिञ्चति' इत्यादि वाक्य से सेंचन क्रिया की योग्यता के भाव को दर्शाया है। अतः यहाँ समासोक्ति अलंकार है। सूर्य तप की ज्वाला से तप्त मूर्च्छित को शीतल जल के सेंचन के प्रस्तुत राजव्यवहार में अप्रस्तुत नायक का यश समारोप करने से समासोक्ति अलंकार है।

9 निदर्शना अलंकार –

अभवन् वस्तुसम्बन्ध उपमापरिकल्पकः।।

निदर्शन दृष्टान्तकरणम्।। का. प्र. 10/97

जहाँ पदार्थों या वाक्यार्थों (वस्तु) का अनुपद्यमान (अभवन् = असम्भवन्, उपयुक्त न होता हुआ) सम्बन्ध उपमा की कल्पना (आपेक्ष) कर लेता है वह निदर्शना अलंकार है।

सन्ताड्यमानानकघोरगर्जि –

शस्त्राचिरूिद्यत्तडितं वहन्तम्।

वर्षन्तमुच्चैस्तरवारिधारा –

स्तं पर्यकार्षीद्घनमङ्गभूभृत ।। शत्रु. 2/50

महाकवि विश्वनाथ ने चाहुवान वंश के शिरोमणि राजा वासुदेव के पराक्रम का वर्णन करते हुए निर्दिष्ट किया है कि राजा वासुदेव ने अंग देश के राजा से कुशलता पूर्वक युद्ध किया जिस प्रकार घने मेघों से जलधारा निकलती है, उसी प्रकार महाराजा वासुदेव ने बाणों एवं तलवारों की बौछार की और परस्पर आयुधों की टकराहट से बिजली उत्पन्न हो रही थी। दुन्दुभियों एवं वाद्यों से घोर गर्जना हो रही थी। यहाँ मेघों के समान तलवारों की बौछार करने एवं गर्जना के कारण निदर्शना अलंकार है।

10 स्वाभावोक्ति अलंकार –

स्वभावोक्तिस्तु डिम्भादेः स्वक्रियारूपवर्णनम् ।। का. प्र. 10/168

स्वाभावोक्ति वह अलंकार है जहाँ बालक आदि (पदार्थो) की स्व–आश्रित क्रिया तथा रूप आदि का वर्णन किया जाता है।

मेदिनीपतिसमाहितावीर्या,

बिभ्रती द्विगुणदौर्ह्रदलक्ष्मीम्।

कीकसानि वलिवस्तिकुचेषु

क्षोरिगपालमहिषी परिदध्रे ।। शत्रु. 4/46

राजा वंगदेव के वीर्य को समाहित किए हुए उस रानी ने गर्भावस्था मे दुगुनी शोभा को धारण किया। उस पृथ्वीपालक राजा की पटरानी के उदर के ऊपरी भाग, स्तन एवं जाँघ वसा युक्त हो गए। यहाँ रानी की गर्भावस्था का स्वाभाविक वर्णन से स्वाभावोक्ति अलंकार है।

11 काव्यलिंग अलंकार –

काव्यलिंग हेतोर्वाक्यपदार्थता ।। का. प्र. 10/174

काव्यलिंग वह अलंकार है जहाँ वाक्यार्थ या पदार्थ के रूप में (किसी अनुपपन्न अर्थ का उपपादक) हेतु कहा जाता है।

उदा.

धियं सुमन्दां निपुणं निरूप्य

वाचंयमीय नियमं व्यधास्यम्।

नाधास्यदुच्चैर्यदि सत्प्रशस्ति –

र्वाचालतां में स दिनेशवंश ।। शत्रु. 1/13

महाकवि कहते है कि सूर्यवंशी राजाओं की प्रशस्ति गान में यदि मैंने वाचालता की है तो मैं अत्यन्त अल्पबुद्धि श्रेष्ठ रूप सें मौनरूप का पालन करूंगा। यहाँ राजाओं की प्रशस्ति हेतु कवि की शालीनता के कारण काव्यलिंग अलंकार है।

12 पर्यायोक्त अलंकार –

पर्यायोक्तं विना वाच्यवाचकत्वेन यद्वचः।। का. प्र. 10/175

पर्यायोक्ति वह अलंकार है जहाँ वाच्यवाचक भाव सम्बन्ध के बिना ही (वाच्यार्थ का) प्रतिपादन (वचः) होता है।

उदा.

प्रौढं प्रतापं दधताऽमुनाजा –

वासञ्जिरागः स्वदृशोर्न यावत्।

तावद्विषद्वीर –नितम्बिनीनां

बिम्बोष्ठरागः सहसा व्यलुम्पत्।। शत्रु. 2/74

महाकवि राजा वासुदेव के पराक्रम का वर्णन करते हुए कहते है कि जैसे ही युद्ध में राजा वासुदेव के पराक्रम को धारण कर क्रोध से नेत्र लाल हो गए वैसे ही शत्रुओं की स्त्रियों होठों की लालिमा अचानक लुप्त हो गई। राजा वासुदेव के शौर्य से स्त्रियों का भय व्याप्त होने से पर्यायोक्त अलंकार है।

13 उदात्त अलंकार –

उदात्तं वस्तुनः सम्पत्। का. प्र. 10/176

महतां चोपलक्षणम् । का. प्र. 10/177

(प्रथम)– उदात्त अलंकार वह है जहाँ किसी वस्तु (धन शौर्य आदि) की (असम्भावित) समृद्धि का वर्णन होता है। (द्वितीय) और (उदात्त अलंकार वह भी है) जहाँ (किसी वर्णनीय अर्थ में) उदार चरितों का अगंरूप से वर्णन किया जाता है।

उदा.

यतुङ्गशृङ्गाऽसित रत्नकान्ति –

दूवभ्रिमान्न्यञ्चदुदारवक्त्रः।

चान्द्रः कुरंगो भटशावकानां

मृगव्यकेलीषु शरव्यमासीत्।। शत्रु. 1/41

महाकवि अर्बुद पर्वत की शोभातिशय प्रसंग पूर्वक कहते है कि इस पर्वत के उच्च शिखर पर गर्दन झुकाकर घास चरता हुआ हिरण, चन्द्रमा के नीले प्रकाश से नीलमणि के समान आभास प्रकट कर रहा था, जो कि क्षत्रिय पुत्रों के आखेट का केन्द्र बन रहा था। पर्वत पर रत्नों के वर्णन से युक्त समृद्धि से उदात्त अलंकार है।

14 अनुमान अलंकार –

अनुमानं तदुक्तं यत् साध्यसाधनयोर्वचः ।। का. प्र. 10/182

अनुमान वह अलंकार है जहाँ साध्य (सिद्ध करने योग्य अग्नि आदि) और साधन (हेतु–धूम आदि) भाव का कथन किया जाता है।

उदा.

अभिधावदिभार्वसैनिकोद्धत –

धूलीभरधूम दर्शनात्।

रविवंशजसैन्यपावकं

पुरतः सोऽनुममे समागतम् ।। शत्रु. 6/91

उस षट्पुर राजा अक्षयराज पर आक्रमण करने के लिए, चारों ओर से द्रुतगति से हाथी, घोड़ो से युक्त सैनिकों के पैरो से उड़ी धुल में, सुर्यकुलोत्पन्न नारायण दास सैनिक बल से युक्त अग्नि के समान प्रत्यक्ष उपस्थित होकर षट्पुर को प्राप्त करने का अनुमान किया।

यहाँ कवि प्रतिभा द्वारा कल्पित सैनिक बल से युक्त नारायण दास ने राजा द्वारा षट्पुर को जीतने का अनुमोदन करने से अनुमान अलंकार है। "जहाँ–जहाँ धुआँ होता हैं वहाँ अग्नि होती है" इसका प्रतिपादन किया गया है।

15 परिकर अलंकार –

विशेषणैर्यत्साकूतैरूक्तिः परिकरस्तु सः। का. प्र. 10/183

परिकर वह अलंकार है जहाँ अभिप्राय युक्त विशेषणों के द्वारा (विशेष्य अर्थात् वर्णनीय अर्थ की) परिपुष्टि (उक्ति) होती है।

कुरङ्गीदृग्भङ्गीसुभगसदपागेंक्षणभरै –

रनङ्ग पूर्णांग जगति विदधत्याद्रुततरम्।

तया रूक्मिण्येव श्रिय इव पतिः साधु विहरन्

स शत्रुणांशल्य तनुजमसविष्टस्मरमिव।। शत्रु. 11/24

महाकवि शत्रुशल्य की उत्पत्ति का वर्णन करते हुए कहते है कि हिरणी के समान सुन्दर शीघ्र ही पति गोपीनाथ के साथ रमण करते हुए सभी अंगो से युक्त गर्भ को धारण किया। जिस प्रकार रूकमणि ने लक्ष्मीपति विष्णु से रमण करके प्रधुम्न को उत्पन्न किया, उसी प्रकार गोपीनाथ ने शत्रुओं का घातक शत्रुशल्य को पुत्र रूप में उत्पन्न किया। यहाँ शत्रुशल्य की वर्णनीय अर्थ में परिपुष्टि से परिकर अलंकार है।

16 परिसंख्या अलंकार –

किञ्चित्पृष्टं मपृष्टं वा कथितं यत्प्रकल्पते।

ताद्वगन्यव्यपोहाय परिसंख्या तु सा स्मृता ।। का. प्र. 10/185

परिसंख्या वह अलंकार है जहाँ पूछी गई अथवा न पूछी गई वस्तु (शब्द के द्वारा) कही जाकर अपने जैसी किसी अन्य वस्तु के व्यवच्छेद (निराकरण) में पर्यवसित हो जाती है।

ह्रासः कलानां प्रबभूव यस्मिन्

दोषाकरस्यैव न तु प्रजानाम्।

नीचानुगत्वं पयसां तथाऽऽसीत्

पंकेरूहाणाञ्च जडैकसंगः ।। शत्रु. 2/9

जिस राजा के राज्य की प्रजाओं में शिल्पादि कलाओं का हास नहीं है, किन्तु चन्द्रमा में ही कलाओं का हास है। प्रजाओं में सज्जन प्रवृति है दुष्ट संगति नहीं है। जहाँ प्रजाओं में मुर्ख संगति नहीं है केवल कीचड़ में खिले हुए कमलों के जल में संगति दिखाई देती है। ऐसे महाराजा वासुदेव कुल का पालन करने वाले पृथ्वी के स्वामी थे, जिस प्रकार देवभूमि के स्वामी गोत्रभिद् इन्द्र है।

यहाँ कवि प्रतिभा कल्पित इन्द्र के समान एकमात्र राजा वासुदेव, प्रजाओं में सज्जन प्रवृत्ति आदि की अन्य वस्तु से की गई व्यावृत्ति परिसंख्या अलंकार है।

17 असंगति अलंकार –

भिन्नदेशतयात्यन्तं कार्यकारणभूतयोः।

युगपद्धर्मयोर्यत्र ख्यातिः सा स्यादसंगतिः।। का. प्र. 10/191

असंगति वह अलंकार है जहाँ कार्य–कारण रूप धर्मो के अत्यन्त भिन्न स्थानों में एक साथ रहने का कथन (ख्यातिः) किया जाता है।

गर्जन्ति स्माऽञ्जसाऽऽजौ पदुतरपटहोद्दामगम्भीरमेघाः

क्रूरा नाराचधारा रविकुलजधनुर्वर्षति स्म प्रकर्षात्।।

सिक्ता रक्तैः क्षरद्भिः परभटवपुषां भूमिरामूलमेषा

दिव्यानां कामुकीनां मनसिजसुलताः साङ्कुराश्चित्रमासन्।। शत्रु. 11/139

महाकवि राजा रत्न के शौर्य की गाथा का चारित्रिक वर्णन करते हुए कहते है कि इस संग्राम में ढोल/नगाड़ो की गर्जना मेघों के समान हो रही थी। सूर्यकूलोत्पन्न राजा रावरत्न क्रूर बाणों की वर्षा कर रहे थे और पृथ्वी शत्रुओं के शरीर से निकले रक्त से युक्त थी। जिससे दिव्य अप्सराओं के मन में काम भावना अंकुरित हो रही थी, यह आश्चर्य युक्त चित्र था। यहाँ कार्य कारण का भिन्न होना युद्ध के दौरान अप्सराओं का कामुक्त होना असंगति अलंकार है।

18 विषम अलंकार –

क्वचिद्यदतिवैद्यर्म्यान्न श्लेषो घटनामियात्।

कर्तुः क्रियाफलावाप्तिर्नैवानर्थश्ययद्भवेत्।। 126 ।।

गुणक्रियाभ्यां कार्यस्त कारणस्य गुणक्रिये।

क्रमेण च विरूद्धे यत्स एष विषयो मतः।। 127 ।। का.प्र. 10/194

विषम वह अलंकार माना गया है (1) जहाँ कहीं (दो सम्बन्धियों का) सम्बन्ध (श्लेषः) अतिवैधर्म्य (विलक्षणता) के कारण उत्पन्न न हो सके (घटनाम् = उपपन्नताम् इयात्) (2) कर्ता को क्रिया के फल की प्राप्ति न हो प्रत्युत अनर्थ हो जाये (3,4), जहाँ कार्य के गुण तथा क्रिया क्रमशः विरूद्ध हों।

उदा.

तमालकाली करवालवल्ली

रणे द्विषच्छोणितशोणकान्तिः।

तवाऽधुना शारदशर्वरीश –

विशारदां कीर्तिमहो प्रसूते ।। शत्रु. 8/38

अहो ! हे राजा ! वर्तमान में आपकी तमाल पुष्प के समान काली, शत्रुओं के रक्त से शोणित तलवार की वल्ली, शरद्ऋतु के गौरवर्ण चन्द्रमा के समान

कान्ति का प्रसार कर रही है। रक्त से लाल तलवार की लता कीर्ति का प्रसार करने से, कार्य कारण के भिन्न गुण से विषम अलंकार है।

19 अतिशयोक्ति अलंकार –

निगीयध्यिवसानन्तु प्रकृत्तस्य प्ररेण यत्।

प्रस्तुतस्य यदन्यत्वं यद्यर्थोक्तौ च कल्पनत्।। 100 ।।

र्यकारणयोर्यश्च पौर्वापर्यविपर्ययः।

विज्ञेयाऽतिशयोक्तिः सा।। का. प्र. 10 /153

(1) जहाँ– 'पर' अर्थात् उपमान के द्वारा 'प्रकृत' अर्थात् उपमेय का निगरण (पृथक् अनिर्देश) करके उसके साथ कल्पित अभेद का निश्चय (अध्यवसान) (2) वर्णनीय का अन्य रूप से वर्णन (3) 'यदि' अर्थ वाले शब्दों का कथन करके (असम्भव अर्थ की) कल्पना और (4) कार्य तथा कारण के पूर्व अपर–भाव का विपरीत होना– वर्णित किया जाता है; वह अतिशयोक्ति जाननी चाहिये।

उदा.

जगत्त्रयीवामविलोचनाना –

मुपज्ञरूपा कमनीयतायाः।

मनः समाकर्षणमन्त्रसिद्धि –

मनोमुवः सा नव एव सर्गः ।। शत्रु. 8/14

तीनों लोको के सौन्दर्य युक्त, अपने कुटिल नेत्रों की कमनीयता से युवाओं के चित्त को वशीभूत करने में सफल, उस कनकावती ने कामदेव के मनाभिलाषी से अभिनव सृष्टि की। कनकावती की उत्पति, कामदेव से सम्बन्धित, इन दोनों के सम्बन्ध रूप से अतिशयोक्ति अलंकार है।

20 दीपक अलंकार –

सकृद्वृत्तिस्तु धर्मस्य प्रकृताप्रकृतात्मनाम्।।

सैव क्रियासु बह्विषु कारकस्येति दीपकम्।। का.प्र. 10/256

दीपक अलंकार वह है, जहाँ (क) उपमेय (प्रकृत) और उपमान (अप्रकृत) रूप (क्रियादिरूप) धर्म का एक बार ग्रहण (सकृद्वृत्तिः) किया जाता है, या (ख) बहुत सी क्रियाओं के होने पर किसी कारक का एक बार ग्रहण (सैव–सकृ द्दवृत्तिरेव) किया जाता है।

उदा.

वत्सं सत्सम्पूज्यमात्मप्रतापं

कृत्वा सुत्वा कामधेनुं महीञ्च।

दोग्धा दग्धारिव्रजोऽसौ नृपालो

द्रव्य भव्यं भव्यतेजा अदुग्ध ।। शत्रु. 3/5

इस राजा गोपाल ने अपने व्रज से शत्रुओं को जला दिया, अपने प्रतापरूपी बछड़े का कामधेनु ने महान पीड़ा में दोहनकर्ता की भाँति (राजा गोपाल ने) भव्य द्रव्य का दोहन किया। जिस प्रकार राजा पृथु अपने राज्य में अकाल पड़ने पर पृथ्वी पर कृषि करने लगा तब भय युक्त पृथ्वी ने गाय का रूप धारण किया। यहाँ राजा गोपाल को राजा पृथु के सादृश्य बताया गया है। यहाँ अप्रस्तुत का प्रस्तुत पर आरोपित धर्म से एक बार ग्रहण करने से दीपक अलंकार है।

21 तुल्ययोगिता अलंकार –

नियतानां सकृद्धर्मः सा पुनस्तुल्ययोगिता का.प्र. 10/158

तुल्ययोगिता (अलंकार) तो वह है जहाँ (केवल) प्रकृत अथवा अप्रकृत वस्तुओं के (नियतानाम्) साधारण धर्म का एक बार ही ग्रहण किया जाता है।

उदा.

प्रोद्यत्सद्यः सद्यशः सञ्चितानां

शौर्योदार्याद्यैरगण्यैर्गुणैः स्वैः।

प्राज्यं राज्यं प्राप्यं सिहांसनेऽसौ

राजा राज्ञां मूर्ध्नि चाङ्घ्रिञ्चकार।। शत्रु. 3/3

महाकवि का अभिप्राय है कि यह राजा गोपाल अपने शौर्यादि गुणों से प्रचुर सत्तायुक्त सिंहासन को प्राप्त कर चक्रवर्ती सम्राट था और अन्य राजाओं के मस्तक पर चरण रखा। यहाँ राजा गोपाल का सत्ता प्राप्त कर अन्य राजाओं के मस्तक पर पाद (चरण) रखने से तुल्ययोगिता अलंकार है।

22 व्यतिरेक अलंकार –

उपमानाद्यदन्यस्य व्यतिरेकः स एव सः । का. प्र. 10/159

व्यतिरेक वह अलंकार है जहाँ उपमान की अपेक्षा अन्य अर्थात् उपमेय का व्यतिरेक (गुण–विशेष के द्वारा उत्कर्ष) वर्णित किया जाता है।

उदा.

वृन्दावतीमधिवसन् जनवन्दनीयां

वृन्दारकेशमपि मन्दमयञ्चकार।

आनन्दितोद्धतबलैरचिरेण चित्रै –

र्गोत्रव्रजस्य सुभगङ्करणैश्चरित्रैः।। शत्रु. 5/4

प्रजाजन प्रंशसनीय राजा समर सिंह वृन्दावत्ती (बून्दी) नगरी में निवास कर रहे थे। इस राजा ने देवताओं के ईश इन्द्र के चरित्र को भी शीघ्र ही अपने चरित्र से तुच्छ कर गौत्र (कुल) की शोभा को बढ़ाया। जिस प्रकार इन्द्र ने बलनामक दैत्य का संहार करके आनन्द का प्रसार किया उसी प्रकार राजा समर सिंह ने पृथ्वी, गाय, पर्वत आदि सभी समूह को भय रहित किया।

यहाँ उपमान (इन्द्र) की उपेक्षा कर राजा समर सिंह के शौर्य का बखान करने से व्यतिरेक अलंकार है।

23 विशेषोक्ति अलंकार –

विशेषोक्तिरखण्डेषु कारणेषु फलावचः। का. प्र. 10/163

विशेषोक्ति वह (अलंकार) है जहाँ (प्रसिद्ध) कारणों के मिलने पर (अखण्डेषु = मिलितेषु) भी कार्य (उत्पत्ति) का कथन नहीं किया जाता।

उदा.

वर्षत्युच्चैश्चिरेण प्रवरतरपृषत्कोत्करानस्य चापे

किञ्च प्रत्यर्थिसार्थे विकिरति परितः सन्ततं जीवनौघान्।

विद्वेषिस्त्रैणनेत्रे स्त्रवति च बहुशः सान्द्रवाष्पोदपूरान्

हा हन्तोच्चैरशुष्यन् कथमरिवनितापत्रवल्लीसमूहाः।। शत्रु. 11/143

हाय ! इसके बाद राजा ने धनुष से अत्यधिक चिरकाल तक वर्षा–बिन्दुओं के समान बाणों की वर्षा की और शत्रु–समूह जलरूपी प्राणों का संचयन करने लगा। शत्रु–स्त्रियाँ नेत्रों से अतिशय घनों के वाष्प से पूरित वर्षाजल के समान रुदन कर रही थी; शत्रु–पत्रवल्ली समूह के समान शुष्क हो रहे थे। यहाँ तो शत्रुस्त्रीयों के पत्रवल्ली की निरन्तर धारा भी शुष्क होने से विशेषोक्ति अलंकार है।

24 अर्थान्तरन्यास अलंकार –

समान्यं वा विशेषो वा तदन्येन समर्थ्यते।

यत्तु सोऽर्थान्तरन्यासः साधर्म्येणेतरेण वा।। का. प्र. 10/165

अर्थान्तरन्यास वह अलंकार है जहाँ साधर्म्य या वैधर्म्य (तदितरेण वा) के विचार से समान्य या विशेष वस्तु का उससे भिन्न (विशेष या सामान्य) के द्वारा समर्थन किया जाता है।

उदा.

गोस्तनी–मधु–सुधा–सहकारान्

सा विसृज्य मधुरान् मधुराङ्गी।

अम्लमेव चकमे रसमेकं

दौर्हृदं बहुविधं हि वधूनाम् ।। शत्रु. 4/48

शोभन अंगो से युक्त वह रानी अम्ल युक्त (खट्टे) रस वाले फल की अभिलाषा कर रही है तथा मीठे स्वाद युक्त शहद्, आम, अँगूर अमृत आदि का त्याग कर रही है। स्त्रियों को गर्भावस्था मे अनेक तरह की अभिलाषा होती है। यहाँ स्त्रियों के गर्भावस्था में सामान्य खान – पान से समर्थन करने से अर्थान्तरन्यास है। यहाँ गर्भावस्था ने भिन्न (विशेष) भ्रुण जन्म विशेष समर्थन किया गया है।

25 विरोध या विरोधाभास अलंकार –

विरोधः सोऽविरोधेऽपि विरूद्धत्वेन यद्वचः । का. प्र. 10/166

विरोध वह अलंकार है; जहाँ विरोध न होने पर भी (दो वस्तुओं का) विरूद्धों के समान वर्णन किया जाता है।

अर्थात् वास्तव में (वस्तुवृत्तेन = यथार्थ में) विरोध न होने पर भी जो दो वस्तुओं का विरूद्धों के समान वर्णन होता है वह विरोध (विरोधाभास) है।

उदा.

ईशोऽप्ययं परभटान् विदधात्यनङ्गान्

भास्वानसावपि चिरं परचक्रभीमः।

देवः कलानिधिरपि क्षपितोरूदोषो

भूभृद्वरोऽपि शतकोटि–विराजिपक्ष ।। शत्रु. 5/14

महाकवि वरसिंह नामक राजा के शौर्य का बखान विरोधाभास अलंकार से प्रस्तुत करते हैं कि यह राजा शिव के समान शत्रु सैनिकों को अंग रहित करता है। यह सूर्य के समान देदीप्यामान, दूसरे शत्रुओं के समूह में भीषण, चन्द्रमा की

भाँति षोङश कला युक्त, पर्वतों से श्रेष्ठ होने पर भी करोड़ द्रव्य विशेषणों से यह राजा शोभायमान है। शिव आदि भी इसके समान नहीं है, कामदेव को शिव ने ही अंग रहित किया किन्तु यह राजा कामदेव को उत्पन्न करने वाला है। चन्द्रमा रात्रि के दोष को दूर नहीं करता, यह रात्रि कि भाँति शत्रुओं का नाश करने वाला है। पर्वतश्रेष्ठ हिमालय आदि को इन्द्र के व्रज सुशोभित नहीं करते लेकिन इस राजा को मित्र देशों को पुरूस्कार और दान आदि से शोभायमान है।

26 सहोक्ति अलंकार –

सा सहोक्तिः सहार्थस्य बलादेकं द्विवाचकम्।। का. प्र. 10/170

सहोक्ति वह अलंकार है जहाँ एक पद 'सह' (साथ) अर्थ के सामर्थ्य से दो अर्थों का वाचक होता है।

अर्थात् जहाँ एक अर्थ का वाचक पद 'सह' शब्द के अर्थ–सामर्थ्य से दोनों अर्थों का बोधक होता है वह सहोक्ति है।

उदा.

अनल्पप्रावकल्पार्जितसुकृतसङ्घात सुफला –

द्विवर्ते मूर्तेऽस्मिन्नवतरति रत्नोदवसिते।

अमन्दं मन्दारद्रुमकुसुमवर्षेण मरूतां

सहाऽभूत् पौरीणां कुवलयद्वशां मंगलरवः ।। शत्रु. 11/26

महाकवि शत्रुशल्य के जन्मोत्सव का बखान करते हुए कहते हैं कि राजा रत्न के घर पर, पूर्व जन्म के अर्जित पुण्य कर्मों के समूह से सफल मूर्ति के समान यह पौत्र (शत्रुशल्य) अवतरित हुआ। देवता आदि कल्पवृक्ष के पुष्पों की वर्षा के साथ कमल के समान नयनों वाली नगर की रमणीयों के द्वारा मंगलगीतों की ध्वनि गुंजायमान थी। यहाँ देवताओं की पुष्पवृष्टि के साथ मंगलगीतों का गायन से सहोक्ति अलंकार है।

27 अधिक अलंकार –

महतोर्यन्महीयांसावाश्रिताश्रययोः क्रमात्।

आश्रयाश्रयिणौ स्यातां तनुत्वेऽप्यधिकं तु तत्।।

अधिक वह अलंकार है जहाँ बड़े आश्रित अर्थात् आधेय और आश्रय अर्थात् आधार में क्रमशः आधार और आधेय (आश्रयी) छोटे होने पर भी अधिक बड़े वर्णित किये जायें।

उदा.

अनल्पे कल्पान्ते जठरपिठरे यस्य लसति

त्रिलोकी कृत्स्नेयं कलितललिताऽमेयवपुषः।

निजे चित्ते नित्यं तमपि दनुजारि कलयतो –

ऽप्यमुष्याऽहो हर्षो न सतु सुतजन्मा हृदि ममौ।। शत्रु. 11/28

महाकवि राजा रावरत्न के पौत्र जन्म के हर्षोल्लास का बखान अधिक अलंकार से करते हुए कहते है कि सुन्दर शरीर युक्त उस परमपुरूष विष्णु को अपने हृदय में धारण करने वाले इस त्रिलोक के महाप्रलय के समय समग्र को अपने उदर में धारण करने वाले, देत्यों के शत्रु भगवान विष्णु को अपने मन में धारण करने वाले यह राजा रत्न अपने हृदय में पौत्र जनित आनन्द को समाहित नहीं कर पा रहे है। यह आश्चर्य है।

28 प्रत्यनीक अलंकार –

प्रतिपक्षमशक्तेन प्रतिकर्तुतिरस्क्रिया।

या तदीयस्य तत्स्तुस्यैं प्रत्यनीकं तदुच्यते।। का. प्र. 10/196

'प्रत्यनीक' अलंकार वह कहा जाता है जहाँ प्रतिपक्ष का प्रतिकार करने में असमर्थ (किसी) व्यक्ति के द्वारा उससे सम्बन्ध रखने वाले (तदीयस्य) पदार्थ का उस (प्रतिपक्षी) के उत्कर्ष को प्रकट करने वाला तिरस्कार किया जाता है।

उदा.

एतस्याहो धनधम्मिल्लवेल्लल्लक्ष्म्या क्षिपं निकृतः सैहिकेयः।

एतद्वक्त्रच्छविलेशेन तुल्यं नूनं मन्ये मुहुरिन्दुर्दुनोति।। शत्रु. 12/14

इस प्रकार आश्चर्यजनक प्रसन्नता का विषय है कि इस शत्रुशल्य के घने बालों में उसकी स्फुरित कान्ति राहु का तिरस्कार कर रही थी। इसीलिए वह इसके मुख्य कान्ति का स्वल्प अंश तुल्य चन्द्रमा को बार–बार पीडित कर रहा था। यहाँ शत्रुशल्य के द्वारा सम्बन्धित केशों की कान्ति से राहु का तिरस्कार तथा चन्द्रमा के पीडित करने से प्रत्यनीक अलंकार है।

29 मीलित अलंकार –

समेन लक्ष्मणा वस्तु वस्तुना यन्निगूह्यते।

निजेनागन्तुतना वापि तन्मीलितमिति स्मृतम्।। का. प्र. 10/197

मीलित अलंकार वह कहा गया है जहाँ अपने स्वाभाविक अथवा कारण विशेष के द्वारा उत्पन्न किसी साधारण चिह्न (लक्ष्य) से एक वस्तु अन्य वस्तु द्वारा तिरोहित कर दी जाती है।

उदा.

उन्मुक्तकञ्चुकविशेषविशेषकार्य –

शोभां क्षणेन तिरयन् यशसां समूहैः।

सिंहोद्धतोऽपि समरेष्वमरेशतुल्यो

दानाम्बुराजितकरः स करीव रेजे ।। शत्रु. 5/3

उन्मुक्त जो चोलक प्रकार 'जामेति' भाषा के अन्तर्गत प्रसिद्ध वस्त्र, उससे भी अत्यधिक शरीर की कान्ति से युक्त कीर्ति के समूह से आच्छादित वह राजा इन्द्र के तुल्य था। युद्ध में प्रचण्ड सिंह के समान, विप्रो को दानादि देने के लिए संकल्प जल से युक्त हाथी के समान सुशोभित हुआ, जिस प्रकार हाथी अपनी सूंड से

जल बिखेर देता है। यहाँ देह कान्ति से वस्त्र, युद्ध में सिंह समान होने से मीलित अलंकार है।

30 एकावली अलंकार –

स्थाप्यतेऽपोह्मते वापि यथापूर्व परं परम्।

विशेषणतया यत्र वस्तु सैकावली द्विधा।। का. प्र. 10/198

जहाँ पूर्व वस्तु (यथापूर्वम) के प्रति उत्तरोत्तर (वर्णित) वस्तु विशेषण रूप में (क) स्थापित की जाती है अथवा (ख) निषिद्ध की जाती है वह दो प्रकार का एकावली नामक अलंकार होता है।

उदा.

नासीत्परं तस्य स दृष्टिपात्तो

यो न प्रसादं दिशत्ति प्रजानाम्।

ता न प्रजा वा न हि याः समृद्धा

नासौ समृद्धिर्न परार्थकृद्या।। शत्रु. 2/19

उस राजा की कृपाकटाक्ष प्रजाजनों पर नहीं हो और न हीं प्रजाजनों को प्रसाद (उपहार) प्रदान किया हो, इस राजा की प्रजा समृद्धिशाली न हो, और प्रजाजनों की समृद्धि (धन–धान्य) परोपकारिता के लिए उपयोग न हुआ हो। अर्थात् राजा की प्रजाजन धन–धान्य से युक्त थी यह विशेषण रूप में स्थापित कर दुःख का निषिद्ध करने से एकावली अलंकार है।

31 भ्रान्तिमान अलंकार –

भ्रान्तिमानन्यसंवित् तत्तुल्यदर्शने।। का. प्र. 10/200

भ्रान्तिमान वह अलंकार है जहाँ उस (अप्राकरणिक या अप्रस्तुत) के तुल्य पदार्थ अर्थात् प्राकरणिक (प्रस्तुत) का दर्शन होने पर अन्य अर्थात् अप्रस्तुत (अप्राकरणिक) की प्रतीति (की वर्णना) होती है।

उदा.

शिरोगसानूरूदरीविराजि –

प्रचण्डसिंहीसतुजातशङ्कम्।

कुरङ्गमालोक्य कलाधरोऽस्य

जवादधः सानुगतो निरेति।। शत्रु. 8/23

महाकवि कहते है कि शिखाओं पर विचरण करता हुआ चन्द्रमा पर्वत के मध्य गुफाओं में शोभायमान है। जो प्रचण्ड असंख्य सिंह पुत्र की दैत्य राक्षस राहु के समान भ्रान्ति उत्पन्न कर रहा था। जो अपने वाहन मृग को देखते हुए इस पर्वत स्तम्भ से नीचे की ओर वेग पूर्वक प्रस्थान कर रहा था। यहाँ अप्रस्तुत गुफाओं में विद्यमान सिंह शावक के तुल्य प्रस्तुत चन्द्रमा की उपस्थिति में राहु की प्रतीति से भ्रान्तिमान अलंकार है।

32 प्रतीप अलंकार –

आक्षेप उपमानस्य प्रतीपमुपमेयता।

तस्यैव यदि वा कल्प्या तिरस्कार निबन्धनम्।। का. प्र. 10/201

प्रतीप वह अलंकार है जहाँ (क) उपमान का आक्षेप (निन्दा या निषेध) किया जाये अथवा (ख) उस (उपमान) का तिस्कार करने के लिये उसकी उपभेय रूप में कल्पना की जाये।

उदा.

अलंकरिष्णौ सदसं नृपेऽस्मिन्

दृढाऽऽहतानां वरदुन्दुभीनाम्।

सुमन्दरक्षुब्धसमुद्रमन्द्र–

ध्वनिं विजिग्ये सुगभीर नादः।। शत्रु. 8/28

इस राजा सुर्जन की सभा अलंकृत हो रही थी, जैसे प्रचण्ड दुन्दुभीयों और श्रेष्ठ मानकों की ध्वनि, समुद्र मन्थन के समय पर्वत के गम्भीर ध्वनि को भी जीत रही थी। यहाँ समुद्र के गम्भीर नाद का तिरस्कार कर, राजा की शोभा से प्रचण्ड दुन्दुभीयों के स्वर की उपमेय रूप में कल्पना करने से प्रतीप अलंकार है।

33 तद्गुण अलंकार –

स्वमुत्सृज्य गुणं योगादत्ययुज्ज्वलगुणस्य यत्।

वस्तु तद्गुणतामेति भण्यते स तु तद्गुणः।। का. प्र. 10/204

तद्गुण वह अलंकार है जहाँ (न्यूनगुण वाली प्रस्तुत वस्तु) अत्यन्त उज्ज्वल गुण वाली (अप्रस्तुत वस्तु) के सम्बन्ध से अपने रूप (गुण) को त्याग कर तद्रूपता (अप्रस्तुत के स्वरूप) को प्राप्त करती है (यह वर्णन होता है)

उदा.

नमन्महीपाल किरीट कोटि –

विराजिवज्रवल एष तावत्।

तवातिशोणाङ्घ्रिनखप्रभाभि –

बिभर्ति सद्यः कुरूविन्दलक्ष्मीम्।। शत्रु. 8/39

राजा सुर्जनदेव को मुकुट के अग्र भाग पर विद्यमान हीरे व मणियों का समूह प्रणाम करता है। इन मणियों की अत्यन्त कान्ति शीघ्र ही लक्ष्मी की शोभा को धारण कर रही है। राजा के मुकुट में उपस्थित मणियों लक्ष्मी की शोभा को प्राप्त करने के कारण तद्गुण अलंकार है।

34 सन्देह अलंकार –

सन्देहः प्रकृतेऽन्यस्य संशयः प्रतिभोत्थितः

भेदोक्तौ तदनुक्तौ च द्विधाऽसौ परिकीर्तितः।

उपमान – उपमेय मे कवि प्रतिभा से उठाया गया संशय ही, संदेह अलंकार कहलाता है।

उदा.

स धर्मराजः समवृत्तिशीलः

प्रजाः स्वदण्डेन चिरेण शासन्।

तुरूष्कनाथस्य रणे भयनां

जहार सद्यो बत जीवनानि।। शत्रु. 8/56

चिरकाल से नियमपूर्वक प्रजा का पालन करने वाला, शत्रु–मित्र में समान व्यवहार करने वाला, उत्कृष्ट चरित्र युक्त वह धर्मराज, धर्मनिष्ठ राजा सुर्जन ने युद्ध में तरूष्कनाथ अकबर के सैनिकों के प्राण हरण कर लिए। शत्रु सैनिकों को यम की भाँति और जो धर्मराज की तरह समवृत्ति भाव से अकबर के सैनिकों के प्राण हरण सन्देह अलंकार है। यहाँ कवि प्रतिभा से यम एवं धर्मराज के द्वारा उठाया गया संशय से सन्देह अलंकार है।

35 विभावना अलंकार –

" क्रियायाः प्रतिषेधेऽपि फलव्यक्तिर्विभावना "

हेतुरूप क्रिया अर्थात् कारण का निषेध (अभाव) होने पर भी फल की उत्पत्ति विभावना नामक अलंकार है। इस अलंकार द्वारा कार्य को उत्पन्न करने वाले कारण के बिना भी कार्य की उत्पत्ति का वर्णन करने वाला विरोधमूलक अलंकार है।

उदा.

दिङ्नागानां गण्डदानाम्बुवर्षा –

वग्राहोऽपि प्रोढढक्कानिनादः

एतस्याऽहो वैरिसीमन्तिनीनां

चक्षुर्देशे वाष्पवर्षं वितेने।। शत्रु. 3/14

महाकवि कहते हैं कि यह आश्चर्य जनक है कि राजा की रणदुन्दुभिया निःस्वान गम्भीर चारों दिशाओं में गुंजायमान होने से हाथियों के कपोलों से मदजल वर्षा की तरह प्रतिबन्धित था। फिर भी शत्रुओं की स्त्रियों के नेत्रों से निरन्तर अश्रु प्रवाहित हो रहे थे। यहाँ शत्रु स्त्रियों के दुःखी होने से फल की उत्पति हो रही है अतः यहाँ विभावना अलंकार है।

36 परिकराङ्कुर अलंकार –

'' साभिप्रायविशेष्ये तु भवेत्परिकराङ्कुरः''।।

जयदेव ने साभिप्राय विशेष्य में परिकराङ्कुर ''परिकरस्यांकुर" इति परिकरांकुरः नामक अलंकार माना है। परिकराङ्कुर परिकर का ही अंकुर है– परिकरस्यांकुर :।

उदा.

सुधीधरैः सौरकुलाम्बुराशेः

समुद्धृतं यद्यपि कीर्तिरत्नम्।

श्रीशत्रुशल्यीययशः सुधायै

स्पृहां रसज्ञा मम किं न धते।। शत्रु. 1/14

महाकवि वाल्मिकी – कालिदास – भट्टि – भवभूतिमुरारि – राजशेखर, जयानक, नयनचन्द्र सूरि, चन्द्रशेखर आदि अनेक कवियों ने सूर्यवंश का वर्णन किया है। समुद्र से अन्य तेरह रत्नों को निकालने की भाँति मेरे काव्य मे तो सुधा का उद्वरण अवश्य ही होगा। कवि कहते है कि मेरी रसना द्वारा नृप शत्रुशल्य के यश का प्रसार सुधा की भाँति अमर हैं। 'रसज्ञा' इस सामिप्राय से परिकराङ्कुर अलंकार हैं।

37 परिणाम अलंकार –

अरोप्यमाणस्य प्रकृतोपयोगित्वे परिणामः।। अलंकार–सर्वस्व पृ. 51

जब उपमान उपमेय का रूप धारण कर कोई क्रिया करे तब परिणाम अलंकार होता है। परिणाम का अर्थ है – परिणति या परिवर्तन इस अलंकार मे उपमान के स्वरूप में परिवर्तन हो जाता है। अर्थात् वह उपमेय के साथ मिलकर ही किसी क्रिया को सम्पन्न करने में समर्थ होता है। इसमें उपमान में स्वतः कोई कार्य करने की क्षमता नहीं होती अर्थात् उसमें क्रियाकारित्व की असमर्थता रहती है, पर वह उपमेय के साथ अभिन्न होकर किसी कार्य को सम्पादित करने में सर्वथा समर्थ हो जाता है। परिणाम साद्दश्यगर्भ अभेद – प्रधान आरोप मूलक अलंकार है।

उदा.

सुदतीजनपाणिपल्लवै –

रपि संवाहितमाप यच्छ्मम्।

समखिद्यत नाऽस्य तत्पथा

किल पादाम्बुरूहं दवीयसा।। शत्रु. 6/25

महाकवि कहते हैं कि इसके बाद नारायणदास अपने चरणकमलों को स्त्रियों के कोमल हथेलियों पर रखने के समान धीरे – धीरे सन्ताप को दूर किया अर्थात् अत्यन्त दूरवर्ती मार्ग में थकान को दूर किया। यहाँ चरणों पर कमल का आरोप और स्त्रियों के कोमल हाथों की अनुभूति से सन्ताप को दूर करने में परिणाम अलंकार है। जब आरोप्यमाण या उपमान में प्रकृतार्थ सम्पादन क्षमता आ जाती है तब वह उपयोगी हो जाता है।

38 पर्यायोक्ति अलंकार –

इष्टमर्थमनाख्याय साक्षात्तस्यैव सिद्धते।

यत्प्रकारान्तराख्यानं पर्यायोक्तं तदिष्यते।। काव्यादर्श 2/295

अभीष्ट अर्थ को प्रकारान्तर से कहना ही पर्यायोक्ति अलंकार है। अर्थात् जब विवक्षित वस्तु काभंग्यन्तर या प्रकारान्तर से कथन या प्रतिपादन हो तो वहाँ पर्यायोक्ति अलंकार होगा। [4]

पर्याय [5] और उक्ति दो शब्दों के योग से पर्यायोक्ति शब्द बना है। पर्याय का अर्थ है प्रकार। इस अलंकार में वांछितार्थ या इच्छित बात का प्रकारान्तर या व्यंजनावृत्ति से कथन किया जाता है। अर्थात् अभीष्ट वात सीधे ढंग से न कहकर घुमा–फिरा कर इस प्रकार कही जाती है कि उसका श्रोता पर अधिक प्रभाव पड़ सके। इसमें किसी वस्तु का जिस ढंग से वर्णन करना हो उसे उस प्रकार से न कहकर भिन्न ढंग से कहा जाता है। अर्थात् अभीष्टार्थ को विशेष भंगी से व्यक्त करना ही पर्यायोक्ति है। इसमें किसी बहाने से भी कार्य–सम्पादित किया जाता है।

उदा.

दोर्विक्रमाक्रमितविक्रमकीर्तिचक्रे

तस्मिन प्रदातरि तदा वसुधैकशक्रे

इभ्यीकृतार्थिनि करे कनकाचलस्य

रत्नाकरस्य च चिरेण दरिद्रताऽासीत्।। शत्रु. 5/11

दोनों भुजाओं के पराक्रम से विजय प्राप्त करने वाला, प्रसिद्धि प्राप्त राजा विक्रमादित्य इस पृथ्वी पर एकमात्र राजा था। जो प्रकृष्ट दानवीर था वह याचकों को दान देकर समृद्ध बनाता था। जो याचकों को हाथी आदि देकर राजा के समान करता था और जिस राजा ने सुमेरू पर्वत और रत्नों से परिपूर्ण समुद्र को चिरकाल से द्ररिद्र बना दिया। यहाँ राजा की अत्यन्त दानवीरता का वर्णन करने से पर्यायोक्ति अलंकार है।

39 प्रोढोक्ति अलंकार –

प्रौढोक्तिस्तदशक्तस्य तच्छक्तत्वावकल्पनम्।। चन्द्रालोक 5/47

जयदेव के अनुसार किसी कार्य को करने में अयोग्य पदार्थ को उसके योग्य बतलाया जाए तो वहाँ प्रोढोक्ति अलंकार होगा। इन्होंने अयोग्य पदार्थ को किसी कार्य के योग्य वर्णन में ही प्रौढोक्ति का अलंकारत्व माना।

जो उत्कर्षक का कारण न हो उसे उसका (उत्कर्ष) कारण कल्पित करना प्रौढोक्ति अलंकार है।

प्रौढोक्ति का अर्थ है बढ़ी हुई उक्ति। इस अलंकार में उत्कर्ष के कारण या हेतु को बढ़ा कर कहा जाता है तथा जो उत्कर्ष का कारण नहीं है उसे भी उसका कारण मान लिया जाता है।

उदा.

गाम्भीर्यमब्धिर्गिरयो गुरूत्वं

कल्पद्रुमाः कल्पितवस्तुदत्वम्।

तस्मै जयार्थ किल यास्यते प्रा –

गानिन्युरेते सदुपायनानि।। शत्रु. 2/32

महाकवि कहते है कि पहले इस प्रकार पर्वत पर स्थित कल्पवृक्ष राजा की जययात्रा में गौरवपूर्ण कल्पित वस्तुएँ उपायन दान में देते थे और पुनः राजा भी कल्पवृक्ष की भाँति अपने हाथों से दान से अभिहित हुआ।

यहाँ राजा की दानवीरता के वर्णन में प्रौढोक्ति अलंकार है। यह कल्पना कल्पित है यहाँ कल्पवृक्ष से कल्पित वस्तुएँ राजा की यात्रा पर दान में देना कवि की कल्पना है।

40 मुद्रा अलंकार –

जहाँ प्रस्तुत अर्थ को सूचित करने वाले पदों के द्वारा एक सूचनीय अर्थ की सूचना करायी जाय तथा उसमें किसी व्यक्ति अथवा स्थान का भी नाम आ जाए तो वहाँ मुद्रालंकार होता है।

मुद्रा का अर्थ मुहर है। यहाँ मुहर से तात्पर्य नामांकित मुहर का है। जिस प्रकार मुहर किसी व्यक्ति का सम्बन्ध सूचित करती है। उसी प्रकार मुद्रा अलंकार में प्रस्तुत अर्थ को सूचित करने वाले पदों से सूचनीय अर्थ की भी सूचना मिलती

है। इसमें सूचनीय अर्थ के साथ ही साथ व्यक्ति, स्थान, वस्तु अथवा शास्त्रीय शब्दों के भी नाम आ जाते हैं।

उदा.

संकृन्ततः सत्परगोत्रपक्षाँ

स्तस्येन्द्र–वज्रातिगमार्गणौघैः।

श्रासात् कुलीनोऽपि परः सशेषो

मध्येसमुद्रं प्रविवेश भूभृत्।। शत्रु. 2/96

महाकवि राजा वासुदेव का वर्णन करते हुए कहते है कि रत्न के समान सूर्यवंशी राजा, संपूर्ण विश्व में एकमात्र वीर नायक जो विश्व विजयी था एवं जिसने अपने पराक्रम से इन्द्र पर भी श्रेष्ठता साबित की थी। उसने अपने शत्रुओं का संहार कर चारों दिशाओं में विजय स्तम्भ रूपी चार समुद्र बनवाए।

41 अनुगुण अलंकार –

प्राकृसिद्धस्वगुणोत्कर्षोऽनुगुणः परसंनिधेः। चन्द्रा. 5/106

जयदेव ने अनुगुण नामक अलंकार की उद्‌भावना की है। कोई वस्तु किसी अन्य वस्तु के समीप होने के कारण जब पूर्वगुण से अधिक उत्कर्ष को प्राप्त हो जाती है तो अनुगुण अलंकार होता है।

उदा.

परिसरे किल यस्य यमस्वसा

वरतटोल्लसदिन्द्रमणित्विषा।

अधिकमेदुरनीलजलच्छवि –

र्वहति सहतिसक्षयदांऽहसाम् ।। शत्रु. 10/38

महाकवि कहते है कि यमुना नदी जो आगरा के निकट बहती है, वह अपने नीले जल एवं उसके तट नीलमणि की कान्ति से उल्लसित हैं इसलिए यहाँ अनुगुण अलंकार है।

42 निरूक्ति –

" निरूक्तिर्योगतो नाम्नामन्यार्थत्वप्रकल्पनम्।।" कुवलयानन्द

योगवश किसी नाम के चमत्कारपूर्ण अर्थ की कल्पना करना निरूक्ति अलंकार है।

निरूक्ति का अर्थ है शब्द–व्युत्पत्ति अर्थात् अर्थानुकूल शब्द का विग्रह या व्युत्पत्ति करना। निरूक्ति अलंकार में शब्द के वास्तविक अर्थ को छोड़ कर अन्य काल्पनिक अर्थ की कल्पना की जाती है, जिसमें अधिक चमत्कार होता है। ऐसी स्थिति में श्लिष्ट शब्दों की काल्पनिक व्युत्पत्ति अधिक चमत्कारपूर्ण ढंग से सभंव है।

इस अलंकार का सर्वप्रथम विवेचन अप्पयदीक्षित ने किया है। इनके अनुसार यौगिक अर्थ के द्वारा वस्तुओं के नाम का अन्य अर्थ कल्पित करने में निरूक्ति अलंकार होता है।

उदा.

एकोऽप्ययं समरमौलिभलंकरिष्णु –

र्दोष्णा व्यराजत रणे नृपसङ्धभोमः।

(अन्यत्र) नार्पयति यद्वसुधा वसूनि

तस्मिन्नृपेऽभवदतोऽपि नृपः स नार्पः।। शत्रु. 5/7

यह नार्प नाम का राजा नाप जी नाम से इतिहास में प्रसिद्ध हुआ। युद्धभूमि में इनकी दोनों भुजाबल असहनीय तथा मस्तक अलंकरणों से विभूषित था इसलिए यह राजा शत्रुओं के समूह में भयंकर भीम समान था। इसके पराक्रम के कारण पृथ्वी अन्य किसी राजा के अधीन न होकर इनके पास ही रहती थी। यहाँ कारण

होने पर भी वह राजा समरसिंह व्युत्पत्ति रूप से नार्प नाम से प्रसिद्ध होने के कारण यहाँ निरूक्ति अलंकार है।

इस प्रकार महाकवि ने शत्रुशल्यचरित महाकाव्य में प्रत्येक पद्य के व्याख्या भाग में अलंकार का निर्देश किया हैं। अलंकार क्रम में महाकवि ने वितर्क, विपरोध, हेम आदि अलंकार का प्रयोग किया है। महाकवि अलंकार के प्रयोग में सिद्ध–हस्त हैं।

.....********.....

1. संस्कृत वाङ्मय का बृहद इतिहास – अष्टम खण्ड (काव्यशास्त्र)
   प्रधान सम्पादक – पद्मभूषण आचार्य बलदेव उपाध्याय
   सम्पादक – स्व. करूणापति त्रिपाठी

   सह सम्पादक – आचार्य वायुनन्दन पाण्डेय – 1967 – उत्तर प्रदेश संस्कृत संस्थान लखनऊ

2. अलंकार – सर्वस्वम् – डॉ. त्रिलोकीनाथ द्विवेदी – पृ.सं. 28 – 31, 1994
3. काव्यप्रकाश – आचार्य मम्मट, पृ.सं. 434 – 435, 1972
4. अलंकारनुशीलन – डॉ. राजवंश सहाय हीरा चौखम्बा विद्याभवन
5. अत्र पर्यायेण मङ्गयन्तरेण प्रकारान्तरेण विवक्षितार्थस्य उक्तिः कथनम् इति पर्यायोक्तिः।। बालवोधिनी पृ.सं. 680

चतुर्थ अध्याय

रस योजना

काव्यशास्त्र के इतिहास में रस–सिद्धांत का प्रवर्तन सर्वप्रथम आचार्य भरतमुनि ने किया था। इन्होंने 'नाट्यशास्त्र' में रस विवेचन किया हैं। नाट्यशास्त्र के अनुशीलन से विदित होता हैं कि उनके पहले ही रस सिद्धान्त का अविर्भाव हो चुका था। राजशेखर नन्दिकेश्वर को सिद्धान्त का प्रवर्तक मानते थे, किन्तु नन्दिकेश्वर का रस–विषयक कोई प्राचीन काव्य उपलब्ध नहीं है।

अनादिकाल से रस तत्व काव्य को तथा हमारे जीवन को ब्रह्मस्वाद सहोदर के समान आनन्दित करता रहा है। तैतिरीयोपनिषद् में भी रस प्राप्ति अर्थात् रसास्वाद से ही आनन्द की प्राप्ति बतलाई गई है –

'' रसो वै सः ह्येवायं लब्ध्या आनन्दीभवति। '' (तैति. 2 वल्लि 7 अनु.)

रस सिद्धान्त का आदि प्रवर्तक भरतमुनि हो ही माना जा सकता है आचार्य भरतमुनि का कथन हैं कि ''रस के बिना किसी अर्थ का प्रर्वतन काव्य में नहीं होता है।''

तत्र रसानेव तावदादावभिव्याख्यास्यामः।

नहि रसाद्वते कश्चिदर्थः प्रवर्तते।। (नाट्यशास्त्र आ. 6)

यद्यपि यह नाट्य रस है, परन्तु नाट्य भी दृश्यकाव्य [1] (सा. दर्पण षष्ठ परिच्छेद 1) ही हैं साथ ही श्रव्यकाव्य का प्रयोजन भी **'सद्यः परनिर्वतये''** [2] ''**करोतिकीर्तिः, प्रीर्ति; च**'' [3] इनमें निर्वति तथा प्रीति शब्द के रसास्वादन समुद्रभुत परमानन्द विवक्षित है। काव्य के महत्व प्रदर्शन में **''स्वादुकाव्यरसोन्मिश्रय''** [4] यह उक्ति एवं महाकाव्य का स्वरूप वर्णन करते हुए **''रसैश्च सकलैः पृथक''** [5] का कथन भी काव्य में रस की अनिवार्यता सिद्ध करते हैं।

अग्निपुराण, भहिमभट्ट तथा विश्वनाथ की उक्तियाँ तो रस को ही काव्य की आत्मा सिद्ध करती है। [6] ध्वन्यामकवादी आचार्य भी वस्तुध्वनि, अलंकार ध्वनि को विश्रान्ति रस ध्वनि में ही मानते हैं। [7] भरत भी रस को प्रधान व्यंग्य ही मानते हैं रस का सम्बन्ध अथर्ववेद से है – यह स्वयं भरत कहते है **'रसानाथर्वणादपि'** [8]। परन्तु रसनिष्पत्ति का निरूपण सर्वप्रथम भरत ने ही किया है। बाद में आचार्यो ने रस सूत्र की व्याख्या की है। रस का महत्व बतलाते हुए कहा है – सहृदय रूपी बछडों पर स्नेह होने के कारण वाग्धेनु स्वयं इस दिव्य रस को क्षरती है। अतः योगियों के द्वारा ईश्वर में तन्मय होकर बलात् दुहा गया आनन्द इस रस (परमानन्द) की समानता नहीं कर सकता।

वाग्धेनुर्दुग्ध एवं हि रसं यद् बालतृष्णया।

तेन नाऽस्य समः स स्याद्र दुह्यते योगिभिर्हि यः।। [9,10]

भरतमुनि के रस निष्पति विषयक सूत्र को लेकर भट्टलोल्लट, शंकुक, भट्टनायक तथा अभिनवगुप्त जैसे प्रमुख आचार्यों ने रस की दार्शनिक व्याख्याएँ भी व्यक्त की है। आचार्य भरतमुनि ने रस सिद्धान्त का अमोद्य सूत्र प्रतिपादित किया है–

'' विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगाद्रसनिष्पत्तिः। [11]

इस सूत्र की विविध व्याख्याएँ भरतमुनि के प्रमुख टीकाकारों ने ही हैं।

1. भट्टलोल्लट मत –

भट्टलोल्लट के रसवादी सिद्धान्त को उत्पत्तिवाद का नाम दिया है।

इस मत में रससूत्र का अर्थ है – **''विभावानुभावव्यभिचारिभिः संयोगाद् = उत्पाद्योत्पादकभावादिरूपसम्बन्धात् रसस्य = रत्यादे ; निष्पत्तिः = उत्पत्तिः प्रतीतिः पुष्टिश्च।''**

लोल्लटानुसार ललना आदि आलम्बन विभाव हैं और उद्यान, पुष्प चाँदनी आदि उद्दीपन विभाव हैं।

इन से राम आदि पात्रों में रति भावों की उत्पत्ति होती है। तदन्तर कटाक्ष, भुजपेक्ष आदि कार्यरूप अनुभावों से रामगत रति आदि स्थायी भाव प्रतीति के योग्य हो जाते हैं और उनकी लज्जा, चिंता, हर्ष आदि संचारी भावों से परिपुष्टि होती है।

2. श्री शंकुक मत –

आचार्य शंकुक ने रस की व्याख्या न्याय दर्शन के संदर्भ में ही की है। इन्होंने रस की अनुभूति को अनुमान का विषय प्रतिपादित किया था। इनका मत अनुमितिवाद कहलाता है। श्री शंकुक ने रस की व्याख्या करते समय 'चित्रतुरंग–न्याय' की कल्पना की है।

शंकुक की रस व्याख्या – **अनुमाप्य–अनुमापक सम्बन्धात् रसस्य निष्पत्तिः।**

जहाँ ''निष्पत्ति'' का अर्थ 'अनुमिति' है इसी कारण उनके अभिमत को ''अनुमितिवाद'' कहा गया।

3. **भट्टनायक मत –**

भट्ट नायक का मत 'भुक्तिवाद' के नाम से जाना जाता है। यह सांख्य दर्शन के अनुयायी है इन्होंने रस सम्प्रदाय में साधारणीकरण नामक विशिष्ट तत्व को सम्मिलित किया है। इन्होंने सांख्य दर्शन के आधार पर भुक्तिवाद का प्रवर्तन किया है। रस की निष्पत्ति की व्याख्या करते हुए भट्टनायक ने पहले तो अन्य आचार्यों के मतों का खण्डन किया है, उसके बाद अपने पक्ष का मण्डन किया है। रस की निष्पत्ति के सम्बन्ध में उत्पत्ति, अनुमिति तथा अभिव्यक्ति के सिद्धान्त का खण्डन करके इन्होंने निष्पति का अर्थ भुक्ति किया है। इन्होंने रस की स्थिति प्रेक्षक के ह्रदय में स्वीकार की है।

भट्टनायक ने रस निष्पत्ति की व्याख्या के लिए भुक्तिवाद का प्रतिपादन करते हुए भरतमुनि के रससूत्र के ''संयोगात्'' पद का अर्थ ''भोज्य–भोज्यकसम्बन्धात्'' तथा निष्पत्ति का अर्थ भुक्ति किया है। इसका प्रतिपादन उन्होंने निम्न प्रकार से किया है –

काव्य के शब्द अन्य शब्दों से विलक्षण होते हैं। इनमें एक तो अभिधा व्यापार है तथा दूसरे अन्य दो इससे भिन्न व्यापार हैं – भावकत्व और भोजकत्व। इनमें अभिधा वाच्यार्थ विषयक होता है। इससे काव्य के सामान्य अर्थ का ज्ञान होता हैं। भावकत्व व्यापार रसादिविषयक होता है और भोजकत्व व्यापार सहृदय विषयक होता हैं।

4. अभिनवगुप्त मत –

अभिनवगुप्त के अनुसार [12] काव्यार्थ रस हैं भरतमुनि के रससूत्र की व्याख्या करने वाले आचार्यों में अभिनवगुप्त के द्वारा की गई व्याख्या सर्वश्रेष्ठ है। इनका रस सिद्धान्त अभिव्यक्तिवाद के नाम से जाना जाता है। अभिनवगुप्त ने भट्टनायक के भुक्तिवाद का खण्डन किया है। भट्टनायक के साधारणीकरण व्यापार को स्वीकार करके भी उन्होंने भावकत्व तथा भोजकत्व व्यापार को अनावश्यक माना है अभिनवगुप्त का विचार है कि भावकत्व और भोजकत्व व्यापार न तो आवश्यक ही है और न प्रामाणिक। व्यंजना व्यापार के द्वारा साधारणीकरण भी हो जाता है और रसास्वादन भी हो जाता है।

भरतमुनि के रससूत्र की व्याख्या में, 'संयोगात्' पद का अर्थ अभिनवगुप्त ने **''अभिव्यंगम्–व्यञ्जकसम्बन्धात्''** किया है तथा निष्पत्ति का अर्थ अभिव्यक्ति किया है।

उनके अनुसार, विभावादि रस के व्यंजक है, रस व्यंग्य हैं, अतः विभावादि रस की अभिव्यक्ति होती है। रस की निष्पत्ति सामाजिकों में होती है। सामाजिकों में स्थायीभाव वासना या संस्कार रूप में रहते है। साधारणीकृत/विभावादि के द्वारा स्थायी भाव उद्बुद्ध होते है।

रस के विभिन्न अर्थ तथा स्वरूप–

संस्कृत साहित्य में रस शब्द का प्रयोग भिन्न–भिन्न अर्थों में अति प्राचीन काल से किया जाता रहा है। वेद, वेदांग, ब्राह्मण, उपनिषद्, आयुर्वेद, रामायण, महाभारत आदि साहित्य में रस शब्द का प्रयोग अनेक अर्थों में किया गया है। कोष

ग्रंथों में रस शब्द के अनेक अर्थ हैं – जल, स्वाद, वीर्य आदि काव्य रस ; विष, द्रव, पारद, राग, गृह, धातु, आदि 6 भोजन के रस, परमात्मा आदि। काव्य साहित्य में रस शब्द से श्रृंगार आदि रसों का बोध होता है।

रसः स्वादे जले वीर्ये श्रृंगारादौ विषे द्रवे।

बोले रागे गृहे धातौ तिक्तादौ पारदेऽपि च।। – हैमकोष

वैदिक साहित्य में विशेष रूप से उपनिषदों में परमात्मा के लिए भी रस पद का व्यवहार हुआ है। तैत्तिरीय उपनिषद् में परमब्रह्म को रस कहा गया है, क्योंकि उसको प्राप्त करके जीव आनन्द का अनुभव करता है।

व्याकरण के अनुसार रस पद की व्युत्पत्ति निम्नलिखित प्रकार से की जा सकती है –

1. **रसनं रसः आस्वादः ।**

जो आस्वाद है, उसको रस कहते है। इस आधार पर श्रृंगार आदि को रस कहते है, क्योंकि वे आस्वाद्य रूप है।

2. **रस्यते अनेन इति रसः ।**

जिन पदार्थो के द्वारा आस्वादन किया जाता है, उनको भी रस कहते है। इस आधार पर शब्द, राग, वीर्य, शरीर आदि को रस कह सकते है।

3. **रस्यते आस्वाद्यते इति रसः ।**

इस व्युत्पत्ति के आधार पर जिन पदार्थो का आस्वादन किया जाता है, वे रस है। इस प्रकार परमात्मा रूप रस, मधुर पदार्थ, सोम, गन्ध, मधु आदि पदार्थो को रस कहा जा सकता हैं।

4. **रसति रसयति वा रसः ।**

जो वाप्य हो जाता है या व्याप्त कर लेता है, उसको रस कहते हैं। इस प्रकार पारद, जल, शरीर की रस धातु या अन्य द्रव्य पदार्थों को रस नाम दिया है।

रस–सिद्धान्त के प्रतिपादन के लिए 'वाल्मीकि रामायण' का प्रायः दृष्टान्त अभिव्यक्त किया जाता है। यथा –

मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः सभाः।

यत्कौञ्चमिथुनादेकमवधीः काममोहितम्।।

भरतमुनि ने नाट्यशास्त्र में रससूत्र में विभाव, अनुभाव और संचारीभावों के संयोग से रस की निष्पत्ति बताई है। मम्मटाचार्य ने रस के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि ''लोक में स्थायी रति आदि चित्तवृत्तियों के उदय, विकास और विरोभाव होने के कारण, कार्य और सहकारी कारण होते हैं।'' साहित्य में इन्हीं को क्रमशः विभाव, अनुभाव और व्यभिचारी भाव कहा गया है। इन्हीं विभावादि के संयोग से व्यक्त स्थायी भाव ही रस कहलाता है –

कारणान्यथ कार्याणि सहकारीणि यानि च।

रत्यादेः स्थानियो लोके तानि चैन्नाट्यकाव्ययोः ।। 27 ।।

विभावा अनुभावास्तत् कथ्यन्ते व्यभिचारिणः।

व्यक्तः स तैर्विभावाद्यैः स्थायी भावो रसः स्मृतः।। 28 ।। (काव्यप्रकाश)

रस निष्पत्ति की प्रक्रिया को समझने के लिए विभाव, अनुभाव और संचारी भाव तथा स्थायीभाव का स्वरूप निम्न है –

1. **विभाव –**

'विभाव' का अर्थ है – रस को विशेष रूप से उत्पन्न करने वाले भाव। वे पदार्थ जो भावोत्तेजना के मूल कारण है, विभाव कहलाते है –

'' विभावयन्ति इति विभावाः। ''

भरतमुनि का कथन है कि जिनके द्वारा वाचिक, कायिक एवं सात्विक अभिनयों का विभावन् अर्थात् ज्ञान होता है, उनको विभाव कहते हैं –

'' विभाव्यतेऽनेन–वागङ्गसत्वाभिनय इति विभावः। ''

कविराज विश्वनाथ ने बताया कि लोक में जो पदार्थ रति आदि को उद्‌बोधित करते हैं, उनको विभाव कहा जाता है। उन्होंने इसे दो प्रकार का बताया है – (क) आलम्बन और (ख) उद्दीपन।

(क) **आलम्बन –**

नायक–नायिका आदि पात्र आलम्बन विभाव कहलाते हैं, क्योंकि उनके आलम्बन से ही रस का उद्‌गम होता है। मम्मट के अनुसार आलम्बन विभाव वे है, जिनका आलम्बन लेकर रति, हास, क्रोध, शोक, भय, जुगुप्सा, उत्साह, विस्मय आदि भाव जाग्रत होते हैं। जैसे नायक और नायिका।

(ख) **उद्दीपन –**

उद्दीपन विभाव वे कहलाते है, जिन वस्तुओं या स्थिति को देखकर रति आदि स्थायी भाव तीव्र या उद्दीप्त होने लगते है, जैसे – चन्द्रोदय, चाँदनी, वन, उपवन, पुष्प, शीतल मन्द सुगन्ध समीर, कमनीय केलिकुञ्ज, एकांतस्थल इत्यादि।

उद्दीपन विभाव भी दो प्रकार के होते हैं –

(i) वे जिनका सम्बन्ध नायक–नायिकाओं की चेष्टाओं, हाव–भावों, वेशभूषा आदि से होता है।

(ii) दूसरे उद्दीपन विभाव वे हैं, जिनका सम्बन्ध देशकाल, ऋतु, वन, पर्वत आदि से होता है।

उद्दीपनविभावास्ते रसमुद्दीपयन्ति ये।

आलम्बनस्य चेष्टाद्या देशकालादयस्तथा।। – साहित्यदर्पण

आलम्बन विभावों से स्थायी भाव उत्पन्न होता है तथा उद्दीपन विभावों से उद्दीप्त उत्पन्न होता है।

2. **अनुभाव –**

स्थायी भावों के उत्पन्न होने के बाद जो शारीरिक विकास दिखाई देते हैं, उन्हें अनुभाव कहते हैं –

" अनुभावयन्ति इति अनुभावाः। "

अनुभूयमान होने के कारण भी इनको अनुभाव कहते हैं।

" अनु पश्चातभविन्त इति अनुभावाः। "

ये अनुभाव चार प्रकार के होते हैं – (1) कायिक, (2) मानसिक, (3) आहार्य और (4) सात्विक।

उद्‌बद्धैः कारणैः स्वैः स्वैर्बहिर्भाव–प्रकाशयन्।

लोकेः यः कार्यरूपः सोऽनुभाव–काव्यनाट्ययोः।।

अर्थात् कारणरूप विभावों से उद्‌बुद्ध रति आदि स्थायी भावों को प्रकाशित करने वाले जो कार्य हैं, उनको काव्य और नाटक में अनुभाव कहा जाता है।

3. **सञ्चारी भाव या व्यभिचारी भाव** –

वे भाव जो थोड़ी देर तक व्यक्त होकर विलीन हो जाते हैं, उन्हें संचारी भाव कहा जाता हैं। इस प्रकार संचारी भाव स्थायी भावों के विपरीत क्षणिक होते है। ''दशरूपक'' में संचारी भावों के स्वरूप की व्याख्या की है –

विशेषादाभिमुख्येन चरन्तो व्यभिचारिणः।

स्थायिन्पुन्माननिर्मग्नाः कल्लोला इव वारिधौ।। – दशरूपक

संचारी भावों की संख्या 33 (तैंतीस) मानी गई हैं – निर्वेद, ग्लानि, शंका, अमर्ष, श्रम, धृति, हर्ष, दैन्य, उग्रता, चिंता, त्रास, ईर्ष्या, गर्व, स्मृति, मरण, मद, सुप्त, निद्रा, विवोध, क्रीड़ा, अपलाभ, मोह, मति, आलस्य, आवेग, वितर्क, अवहित्था (–हृदय के भाव या विकार को लज्जा आदि के द्वारा छिपाना), व्याधि, उन्माद (पागलपन), विषाद, औत्सुक्य, चापल। इनमें से कतिपय भाव रसों के साथ हुआ करते हैं।

4. **स्थायीभाव –**

भाव दो प्रकार के होते हैं। एक वे जो देर तक टिकने की योग्यता रखते हैं, वे 'स्थायीभाव' कहलाते हैं। दूसरे वे जो कई एक क्षणों तक ही टिकते हैं। इस अस्थायित्व के कारण वे संचारी भाव कहलाते हैं। ये भाव हृदय में सदैव विद्यमान रहते हैं। जिस भाव को न तो कोई प्रतिकूल भाव और न ही कोई अनुकुल भाव तिरोहित कर सकता है, उसको स्थायी भाव कहते है।

दशरूपककार का कहना है कि जो विरूद्ध या अविरूद्ध भावों से विच्छन्न नहीं होता, अपितु अन्य भावों को आत्मसात कर लेता है, वह स्थायी भाव है –

विरूद्वैरविरूद्धैर्वा भावैर्विच्छद्यते न यः।

आत्मभाव नयत्याशु स स्थायी लवणाकर।। – दशरूपक

परन्तु स्थायीभावों के विषय में बड़ा मतभेद है। आचार्य अभिनवगुप्त के मतानुसार स्थायियों की संख्या 9 है और इनसे उत्पन्न होने वाले रस की संख्या भी 9 (नौ) ही है –

	स्थायीभाव	**रस**
1.	रति	श्रृंगार
2.	हास	हास्य
3.	शोक	करूण
4.	क्रोध	रौद्र
5.	उत्साह	वीर
6.	भय	भयानक
7.	जुगुप्सा	अद्भुत
8.	शम	शान्त

तदन्तर स्थायी भाव तथा रसों की संख्या बढ़ती गई। विश्वनाथ कविराज ने 'वत्सल' तथा वात्सल्य रस की प्रतिष्ठा की तथा रूप गोस्वामी ने 'माधुर्य रस' (भक्ति रस) नामक एक नवीन रस की प्रतिष्ठा अपने ''उज्ज्वल नीलमणि'' में की।

रसों की गणना रसों में प्रधानता –

काव्यशास्त्र में रसों की संख्या 8–11 बताई गयी है –(1) श्रृंगार, (2) हास्य, (3) करूण, (4) रौद्र, (5) वीर, (6) भयानक, (7) बीभत्स, (8) अद्‌भुत, (9) शान्त [13], (10) वात्सल्य और (11) भक्तिरस।

आचार्यो ने इन रसों में से कुछ रसों को प्रधान माना है। और कुछ को गौण माना है। कुछ आचार्य मूल रस एक ही मानते हैं। यथा–भोजराज ने श्रृंगार रस को, महाकवि भवभूति ने अपनी कृति 'उत्तररामचरित' में करूण रस को और महाकवि कालिदास ने अभिज्ञान शाकुन्तलम् में करूण रस को मूल रूप प्रदान किया हैं।

रसों के संदर्भ में यह प्रधानता–अप्रधानता का विचार सर्वप्रथम आचार्य भरतमुनि ने दिया था। इनके अनुसार–श्रृंगार रौद्र, वीर और वीभत्स प्रधान रस है और हास्य, करूण, अद्‌भुत और भयानक को अप्रधान या गौण रस की संज्ञा प्रदान की गई है।

महाकाव्य के लक्षण में भी कहा गया है कि महाकाव्य में श्रृंगार, वीर अथवा शांत में से एक रस प्रधान होना चाहिए तथा अन्य रस अंगरूप में चित्रित हों। इस दृष्टि से महाकवि विश्वनाथ विरचित 'शत्रुशल्यचरित' वीर रस प्रधान महाकाव्य सिद्ध होता है, क्योंकि इसमें प्रारम्भ से अन्त तक विविध राजाओं से युद्धों का वर्णन है। इस ऐतिहासिक महाकाव्य में चौहान वंश के राजाओं विशेष रूप से महाराज शत्रुशल्य के शौर्य व पराक्रम आदि गुणों को प्रदर्शित करना महाकवि का मुख्य उद्देश्य रहा है।

अतः शौर्यादि प्रदर्शन की बहुलता के कारण इसमें प्रधानतया वीर रस ही है तथापि यथावसर श्रृंगार रस की अनुभूति में भी कवि सिद्धहस्त है। श्रृंगार आदि रसों का अंगरूप में वर्णन हुआ है।

रसों का स्वरूप –

1. वीर रस –

इस रस का आलम्बन विभाव विजेतव्य शत्रु है। उनकी चेष्टायें उद्दीपन विभाव हैं। रोमांच, युद्ध सामग्री, सहायक आदि की खोज करना अनुभाव है। धृति, मति गर्व, स्मृति, तर्क आदि व्यभिचारी भाव है। इनसे निष्पन्न उत्साह रूप स्थायी भाव वीर रूप रस दशा को प्राप्त होता है।

वीर रस का स्वरूप साहित्य दर्पण में इस प्रकार दिया गया है –

उत्तमप्रकृतिर्वीर उत्साहस्थायिभावकः।

महेन्द्रदैवतो हेमवर्णोऽयं समुदाहृतः।।

आलम्बनविभावास्तु विजेतव्यादयोमताः।

विजेतव्यादिचेष्टाद्यास्तस्योद्दीपनरूपिणः।

अनुभावास्तु तत्र स्युः सहायान्वेषणादयः।।

सञ्चारिणस्तु धृतिमातिगर्वस्मृतितर्करोमाञ्चाः।

स च दानधर्मयुद्धैर्दययया च समन्वितश्चतुर्धा स्यात् ।।

– साहित्यदपर्ण, 3/232 से 234

अर्थात् वीर रस दूसरे रसों की अपेक्षा उत्कृष्ट कोटि का होता है। यह उत्साह स्थायी भाव वाला होता है। इसके अधिष्ठातृ देवता इन्द्र है। यह स्वर्ण वर्ण का बतलाया गया है, जिसको जीता है, वे विजेतव्य शत्रु आदि इसके आलम्बन विभाव है, इन विजेतव्य शत्रु आदि की चेष्टाएँ (विरूद्ध आचरण) इसके उद्दीपन विभाव है। उसमें सहायक साधनों का अन्वेषण आदि अनुभाव रूप है। धैर्य, मति, गर्व, स्मृति, तर्क, हर्ष, आदि इसके सञ्चारिभाव है। यह वीर रस दान, धर्म, युद्ध एवं दया से युक्त चार प्रकार का होता हैं।

''शत्रुशल्यचरित'' महाकाव्य में चौहान वंश के विविध राजाओं के युद्ध वर्णन–प्रसंग में युद्ध के प्रति उनका उत्साह ही स्थायीभाव है, प्रतिपक्षी यवन सेना व सेनानायक आलम्बन विभाव है। उनका शौर्यपूर्ण उद्‌गार, आक्रमण आदि दुष्चेष्टाएँ उद्दीपन विभाव है, पलायन आदि अनुभाव है तथा चिन्ता, मोह, वितर्क आदि व्यभिचारी भाव के रूप में वर्णित है। इन सबसे परिपुष्ट होकर उत्साह रूप स्थायिभाव वीर–रस के रूप में व्यक्त हुआ है।

वीर रस के चार भेद माने गये हैं – दानवीर, धर्मवीर, युद्धवीर एवं दयावीर। शत्रुशल्यचरित महाकाव्य में इनका स्वरूप पद्य निम्न है –

1. **दानवीर –**

यस्यैष पाणिः किल कल्पवृक्षः

चिन्तामणिः सोऽपि कृपाकटाक्षः।

वाङ्माधुरी यस्य च कामधेनुः

कामन्न कुर्यात् स सतां कथन्नु।। शत्रु. 2/5

''शत्रुशल्यचरित'' महाकाव्य के द्वितीय सर्ग में महाराजा वासुदेव के वर्णन–प्रसंग में दानवीरता का स्वरूप उल्लेखनीय हैं। जिस राजा के हाथ कल्पवृक्ष की भाँति दान देने वाले, कृपा युक्त दृक्‌मात्र से चिन्तामणि प्रदान करने वाले थे। जिसके मधुर वचन कामधेनु के समान मनोभिलाषा को पूर्ण करने वाले थे। इसलिए वह सज्जनों की कामनाओं को कैसे पूर्ण नहीं करने अर्थात् राजा वासुदेव कामधेनु के समान सज्जनों की सभी इच्छाओं को पूर्ण करता था।

यहाँ महाराजा वासुदेव के दान में उत्साह स्थायीभाव हैं, सम्प्रदानभूत सज्जन आलम्बन विभाव, सत्वगुण एवं सज्जनों की अभिलाषा उद्दीपन विभाव से विभावित होकर, सर्वस्व त्याग आदि अनुभावों से अनुभावित होकर, दानवीर के रूप में अभिव्यक्त होता है।

2. धर्मवीर –

गच्छता मुहुरनेन सुकेदा –

राद्रिमीशपदमश्विभिवन्द्य।

धीरभक्तिगुणगुम्फितराजद्–

वाङ्मयाम्बुजगणैः समपूजि।। शत्रु. 4/10

''शत्रुशल्यचरित'' महाकाव्य में चौहान वंशी राजाओं ने अनेक देवताओं की स्तुति की है। इसी प्रकार चतुर्थ सर्ग में राजा कोल्हन ने केदारेश्वर की तीर्थ यात्रा करते हुए भगवान शंकर की पूजा–अर्चना की। धैयशाली भक्ति गुणों से युक्त राजा कोल्हन ने कमलों के समुह से वाङ्मय रूप में वन्दना की।

3. युद्धवीर –

'' शस्त्रीक्रूरकरः सशस्त्रिकभुजेनाऽनेन बुन्दीपतिः

क्रीडन्नुत्कटतद्भटान् निपततोऽच्छैत्सीत्तदा मर्मसु।

द्दप्यद्दारूणतद्ब्रणापहरणायोद्यद्घृणा चारणा।

द्रोणादिं हरताप्यहो हनुमता मोघो न जज्ञे यथा।। शत्रु. 20/100

''शत्रुशल्यचरित'' महाकाव्य में चौहानवंश के राजाओं के शौर्य और पराक्रम को व्यक्त करते हुए, उनके युद्धों का वर्णन किया गया है। अतः द्वितीय सर्ग से लेकर अन्तिम 22वें सर्ग तक राजा वासुदेव, अस्थिपाल, चन्द्रराज, हम्मीरदेव, भारमल्ल, नारायण दास, सूर्यमल्ल, सुर्जनदेव तथा उनके पुत्र दुर्योधन व राजा भोज, रत्न सिंह और महाराज शत्रुशल्य के युद्ध–वर्णन प्रसंगों में युद्धवीर रस के उदाहरण पद–पद पर प्राप्त होते हैं।

उदाहरणार्थ महाराजा शत्रुशल्य द्वारा खींची देश के राजा मऊपति के साथ किये गये युद्ध का चित्रण निम्न है –क्रूर शस्त्र को हाथ में धारण किए हुए बूंदीपति शत्रुशल्य ने उस अक्षयराज के साथ युद्धक्रीडा का व्यवहार करते हुए उसके

सैनिकों को मार दिया। जिस प्रकार अंहकार दरिद्रता को, विशेष प्रकार के बादल जल को त्याग देते हैं।

4. दयावीर –

अमुष्य वीराः समरैकधीराः

सुकृष्टजीवा धनुषां द्विषां च।

निरन्तरं मानधनैकलुब्धाः

प्रियाय पत्युस्तरसा समीयुः।। शत्रु. 8/85

महाराज सुर्जन की दयावीरता का उत्कृष्ट उल्लेख किया गया हैं। युद्ध में एक ही धैर्यवान था जो धनुष से शत्रुओं को जीवन प्रदान करता था। निरन्तर मानव मात्र धन और जीवों के लिए उत्साहित था। अर्थात् वह मानवों के प्रति दयावान था वह सुर्जन सभी का प्रिय था।

2. श्रृंगार रस –

इस रस की उत्पत्ति काम के उद्वेग से मानी गयी हैं। इसमें नायक–नायिका आदि आलम्बन विभाव; चन्द्र, वन, उपवन, पुष्प, वसन्त ऋतु आदि उद्दीपन विभाव, भ्रूविक्षेप, कटाक्ष आदि अनुभाव, स्वेद, रोमांच आदि सात्विक अनुभाव एवं लज्जा, औत्सुक्य आदि व्याभिचारी भाव होते हैं। इनसे अभिव्यक्त रति रूप स्थायी भाव ही श्रृंगार रस है। रति के विकास की 6 अवस्थायें मानी हैं – प्रेम, मान, प्रणय, स्नेह, राग और अनुराग।

श्रृंगार रस के दो मुख्य भेद है – सम्भोग श्रृंगार और विप्रलम्भ। एक–दूसरे में अनुरक्त नायक और नायिका का परस्पर मिलन युक्त श्रृंगार 'संभोग श्रृंगार' कहलाता है। विप्रलम्भ श्रृंगार उसे कहते है, जहाँ उत्कट प्रेम होने पर भी प्रिय समागम न हो सके।

इन दो प्रधान भेदों के अलावा एक तीसरा भी भेद आचार्यों ने माना है, जिसका नाम है – अयोग। अयोग मिलन से पूर्व की दशा है और विप्रलम्भ के

पश्चात् की दशा है। अयोग श्रृंगार की वह स्थिति है, जहाँ नायक–नायिका का एक–दूसरे के प्रति अनुराग होता है और उनका चित्त एक–दूसरे के प्रति पूर्णरूप से आकृष्ट होता है, परन्तु परतन्त्रता (माता–पिता आदि) के कारण या भाग्य के फेर से दोनों एक–दूसरे से अलग ही रहते है और इसीलिए उनका संगम नहीं होता।

विप्रलम्भ श्रृंगार के पाँच भेद होते है – अभिलाष, विरह, ईर्ष्या, प्रवास और मान। विप्रलम्भ श्रृंगार की दस काम अवस्थायें होती है – अभिलाष, चिन्तन, स्मृति, गुणकथन, उद्वेग, प्रलाप, उन्माद, संज्वर, जड़ना और मरण।

'शत्रुशल्य–चरित' महाकाव्य के अंगरूप में श्रृंगार रस का परिपाक सुस्पष्ट रूप से दिखलाई देता है। महाकाव्य की नायिका श्यामा के नख–शिख वर्णन तथा नायक शत्रुशल्य व श्यामा की काम क्रीडाओं एवं वन–विहार आदि के चित्रण में श्रृंगार रस के प्रयोग में महाकवि का वैदुष्य सुस्पष्ट झलकता है।

इस महाकाव्य में न केवल नायक–नायिका के वर्णन में श्रृंगार रस की अनुभुति है, अपितु महाकवि ने प्रकृति का भी मानवीयकरण कर उसका अद्‌भुत श्रृंगारिक वर्णन किया है। यथा –

कृतैतदास्येन्दुनिमीलदम्बुजस्फुरत –

सुदुःस्थासनतस्युषा विधे।

यदङ्‌गुलिस्तद्वदनेऽपतद्‌दृढं

ततोऽवनम्र[1] चिबुकं मृगीदृशः ।। शत्रु. 16/109

यथाऽनयाऽकादरिद्रितद्युति

नितम्बिनी सृष्टिरहो मुहुर्विधेः।

तथाऽद्य तेनाऽपि दरिद्रितश्चिरं

मृगीदृशोऽस्या वदनोपमाविधि।। शत्रु. 16/110

महाकवि दलपति की पुत्री श्यामा के नख – शिख का वर्णन करते हुए कहते है – कि कमलासन पर अधिष्ठित ब्रह्या ने श्यामा के निर्माण के समय उसका मुख चन्द्रमा के समान बनाया है। उसके दुख से स्फुरित भाग्य के संभ्रमवशीभूत उस श्यामा को अतिविन्रम मृग के समान विनिर्मित किया। उसके नितम्ब में स्त्रीयों की सृष्टि से दरिद्रता को दूर करने वाले थे।

यहाँ श्रृंगार रस नायिका के अंगो से उत्पन्न रति स्थायी भाव है।

विप्रलम्भ श्रृंगार –

मतास्मि यस्मिन् प्रलयोपसह्रत –

त्रैलोक्य उच्चैर्ह्रदयेऽस्ये माधवः।

तत्राऽप्यमान्तः पुलकच्छलाद्रबहिः

कान्तानुरागाः प्रसभं विनिर्गताः।। शत्रु. 14/9

उष्णे विनिःश्वस्य सुदूनमानसः

नृपः स कान्ताकर पीडनोत्सुक।

आपृच्छति स्म स्वजनान्पुनः पुनः

पाणिग्रहाह्रं दलपांगजन्मनः।। शत्रु. 14/10

महाकवि नायक शत्रुशल्य की वियोगावस्था का वर्णन करते हुए कहते है कि जिस शत्रुशल्य ने ह्रदय की प्रलयावस्था में तीनों लोकों के माघव को प्रवेशित कर लिया है। और उनका ह्रदय कान्तानुराग से पुलकित होकर छल को बलपूर्वक निकाल दिया है।

मन से उन्तप्त जिस स्त्री से विवाहोत्सुक वह शत्रुशल्य गर्म लम्बी श्वास छोड़ता हुआ अपने लोगों से बार–बार उस कन्या से पाणिग्रहण के विषय में पूछता है। यहाँ नायक शत्रुशल्य को उत्कट प्रेम होने पर भी समागम न होने से विप्रलम्भ श्रृंगार रस का प्रादुर्भाव हुआ है।

सूर्यास्त व चन्दोद्रय का मनोहारी श्रृंगार रस –

अथो स पाथोज्रसखो हरिद्वधू –

र्दृढं समालिंग्य विसृत्वरैः करैः।

अनंगरंगश्रमभङ्गुराङ्गको

जहद्विलम्ब प्रचुचुम्ब वारूणीम्।। शत्रु. 16/1

चिरं सपत्नीभिरयं नयन्नह –

र्वयोगदूनामथ वारूणीं व्रजन्।

शठोऽतिशालीनमतिं नतिं विनो

चुचुम्ब तामम्बुजबन्धुरूच्चकैः।। शत्रु. 16/2

अर्थात् वह प्रसिद्ध मार्ग मित्र सूर्य ने दिशाओं को वधू के समान अपने हाथों से समांलिगन करने के कारण श्री कामदेव के स्थल में श्रम से शिथिल हुए अंगो को छोड़कर मानो पश्चिम रूपी दिशा को प्राप्त किया।

चिर काल से अपनी प्रिया को दूर होने से दुःखित पश्चिम दिशा रूपी नायिका के पास जाते हुए सूर्य ने अतिविनीत बुद्धिवाली पश्चिम दिशा का चुम्बन किया।

3. रौद्र रस –

शत्रु आदि रौद्र रस के आलम्बन विभाव हैं। शत्रुओं द्वारा किया गया अपकार उद्दीपन विभाव है। होंठ काटना, कम्प, भृकुटि चढ़ाना, शस्त्र चमकाना, डींगे मारना, भुमि पर प्रहार करना, प्रतिज्ञा करना आदि अनुभाव हैं। अमर्ष, मद, स्मृति चपलता, असूया, उग्रता आदि व्याभिचारी भाव हैं। इससे निष्पन्न क्रोध रूप स्थायी भाव रौद्र रस दशा को प्राप्त होता है।

भिन्दन्नमन्दं परिपन्थिसेतुं

क्षुन्दन्नहङ्कारवनीं परेषाम्।

गर्जन्प्रचण्डानकभीमघोषैः

ससैन्यनागः स ययौ प्रतीचीम्।। शत्रु. 2/35

महाकवि राजा वासुदेव का युद्ध–चित्रण करते हुए कहते है – कि इस प्रकार राजा वासुदेव ने क्रोधित होकर सैन्य एवं हाथियों के साथ शत्रुओं का अवरोध हेतु वेगपूर्वक प्रस्थान किया। दूसरे शत्रु अंहकार के कारण वन वाटिकाओं को रोंधते हुए आगे बढ़ रहे थे, इस प्रकार राजा वासुदेव भीषण गर्जना करते हुए पश्चिम दिशा को गया।

यहाँ शत्रु आदि आलम्बन विभाव है, वन आदि को रोदना उद्दीपन विभाव है, अलंकार आदि व्याभिचारी भाव है। क्रोध रूप स्थायी भाव रौद्र रस को प्राप्त होता है।

4. करूण रस –

इष्ट का विनाश तथा अनिष्ट की प्राप्ति करूण रस के आलम्बन विभाव हैं। प्रिय के गुणों का कथन उद्दीपन विभाव है। निःश्वास उच्छ्वास, रूदन, स्तंभ, प्रलाप, विवर्णता आदि अनुभाव हैं। स्वप्न, अपस्मार, दैन्य आदि व्यभिचारी भाव है। इनसे निष्पन्न शोक रूप स्थायीभाव करूण रूप रस दशा को प्राप्त होता है।

उत्क्रीडन्तं पर्वतासन्तदेशे

राज्ञः पुत्रं स क्षणादातवायी।

जीवग्राहं किंकरातं गृहीत्वा

ऽभुङ्क्त क्रूरः सिन्धुरं केसरीव।। शत्रु. 3/24

क्रीडन्ती तां देवकन्येव कन्या

भ्रातुर्द्वष्ट्वा साऽस्थिपालादवस्थाम्।

वक्षस्ताऽं संरूदन्ती प्रकाम –

माशापूरां तुष्टवे सुष्ठु वाग्भिः।। शत्रु. 3/25

अर्थात् पर्वत प्रान्त में क्रीडा करते हुए उस राजकुमार को वह नृशंस दैत्य अपना ग्रास बनाता है जिस प्रकार सिंह गज का भक्षण करता है। अपने भ्राता की दशा को देखकर रोती हुई वह राजकन्या अपनी मधुर वाणी से देवी आशापुरा की वन्दना करती है।

राजकुमार की मृत्यु आलम्बन विभाव है कन्या के मधुर वचन उद्दीपन विभाव है, निःश्वास, रूदन प्रलाप आदि अनुभाव हैं दैन्य आदि व्याभिचारी भाव है। इनसे उत्पन्न शोक स्थायी भाव है।

5. भयानक रस –

जिससे भय उत्पन्न हो, वह भयानक रस का आलम्बन विभाव होता है। विकृत स्वर, चेष्टा आदि उद्दीपन विभाव होते हैं। अंगो का काँपना, स्वेद, रोमांच, दिशाओं में देखना आदि अनुभाव हैं। चिन्ता, दैन्य, सम्भ्रम, सम्मोह, त्रास आदि व्याभिचारी भाव है। इनसे निष्पन्न भय नामक स्थायी भाव भयानक रूप रस दशा को प्राप्त होता है।

तस्यानुपृष्ठन्तु प्रहारयोधाः

शस्त्रावलीत्रासितशत्रुसङ्घा।

आलानभूता जयकुञ्जस्य

क्षिपं सभाजग्मुरतीव दर्पात्।। शत्रु. 2/31

उसके पीछे से योद्धाओं ने प्रहार किया, हजारों की संख्या में शत्रु समुह जिससे भयभीत हो गए। कुंजर की विजय से प्रसन्न होकर वह अत्यन्त गर्वित हो गया।

यहाँ राजा वासुदेव से शत्रुओं का भयभीत होना आलम्बन विभाव है। शत्रुओं की चेष्टा उद्दीपन विभाव हैं। त्रास आदि व्याभिचारी भाव के संयोग से भयानक रस की निष्पत्ति हुई है।

6. हास्य रस –

हास्य रस की उत्पत्ति के लिए विकृत आकार वाणी, वेश आदि आलम्बन विभाव है तथा निद्रा, आलस्य, अबहित्था आदि व्यभिचारी भाव हैं। इनसे अभिव्यक्त हास रूप स्थायी भाव ही हास्य रूप रस दशा को प्राप्त होता है। आत्मस्थ, परस्थ और द्वयधिष्ठान भेद से हास्य रस तीन प्रकार का होता है। पुनः उत्तम, मध्यम और अधम प्रकृत्ति भेदों को मिलाकर यह छः प्रकार का हो जाता हैं।

भुजोत्सर्पद्दर्पग्रहिलमतिरित्थं स नृपतिः

सभां सौरत्राणीं विकटभटसङ्घट्टकठिनाम्।

हसन्ती सोत्रामी सदसमलघुस्वीयविभवै –

स्तिरस्कुर्वन् सर्वानविशदचिराच्छस्त्रसहितः।। शत्रु. 11/44

'शत्रुशल्यचरित' में राजा रावरतन का अपनी वाणी से सभासदों का तिरस्कार करना आलम्बन विभाव हैं। इन्द्र की सभा में उपहास करना हास रूप स्थायी भाव को प्राप्त होता है।

7. अद्भुत रस –

कोई अलौकिक पदार्थ, देवता आदि अद्भुत रस के आलम्बन विभाव हैं। उनका दर्शन, श्रवण, कीर्तन आदि उद्दीपन विभाव हैं। साधुवाद कहना, अश्रु, वेपथु, स्वेद, नेत्र विकास वाणी का गद्गद होना आदि अनुभाव हैं। वितर्क, आवेग, हर्ष, धृति आदि व्याभिचारी भाव है। इनसे निष्पन्न विस्मय नामक स्थायी भाव अद्भुत रूप रस दशा को प्राप्त होता है।

अनल्पे कल्पान्ते जठरपिठरे यस्य लसति

त्रिलोकी कृत्स्नेयं कलितललिताऽमेयवपुषः।

निजे चिते नित्यं तमपि दनुजारि कलयतो

ऽप्यमुष्याऽहो हर्षो न सुतसुतजन्मा ह्रदि ममौ। शत्रु. 11/28

अथामन्दामोदाहतपटहभेरीसुनिनदै –

श्चिराच्छ्रव्या भव्या नभसि सहसा वागुदस्वरत्।

द्विषां दत्वामूर्ध्नि प्रसभमयमङ्घि निजबला–

च्चिरं भोक्ता नप्ता तव नृपतिरत्नं क्षितिमिति।। शत्रु. 11/29

यह आश्चर्य ही होगा कि ललित शरीर वाले उस विष्णु के उदर में यह त्रिलोक, प्रलयकाल में विलय हुआ था, उस दैत्य के शत्रु भगवान विष्णु को अपने मन में धारण करने वाला यह रावरतन अपने पौत्र के जन्म पर आनन्दित नहीं हुआ होगा।

इसके बाद परम हर्षित वादों, नगाड़ों की चिरकाल तक ध्वनि सुनने के बाद अचानक आकाश से आकाशवाणी हुई कि हे राजन्। तुम्हारा यह पौत्र अपने बल से शत्रुओं पर विजय प्राप्त कर चिरकाल तक पृथ्वी का शासक होगा।

यहाँ अलौकिक पदार्थ भगवान विष्णु के समान राव रतन का पौत्र, आकाशवाणी होना उद्दीपन विभाव साधुवाद से रावरतन की प्रसन्नता अनुभाव व व्याभिचारी भाव का संयोग है। शत्रुशल्य के अद्भुत चित्रण से विस्मय नामक स्थायी भाव रस दशा को प्राप्त हुआ है।

8. बीभत्स रस –

रक्त, मांस का सड़ना, उसमें कीड़े पड़ना, बुरी दुर्गन्ध आना, वमन आदि पदार्थ बीभत्स रस के आलम्बन विभाव हैं। वैराग्य के कारण जद्यन, स्तन आदि प्रति घृणा करना, नाक सिकोड़ना, थूकना आदि अनुभाव हैं। आवेग, आर्ति, शंका आदि व्यभिचारी भाव हैं। इनसे निष्पन्न जुगुप्सा रूप स्थायी भाव बीभत्स रूप रस दशा को प्राप्त होता है।

अभुष्य कीर्तेः किल रङ्गभूमौ

रणाङ्गणे तत्र परं विचित्रै ।

कपालचञ्चषकेऽस्त्रसीधुं

प्रप्रीय मत्ता ननृतुः पिशाच्यः।। शत्रु. 8/95

कृपाणदीर्णोन्मदकुम्भिकुम्भ–

निपातिमुक्ताः स्त्रवदस्त्रशोणाः

सुदाडिमीचारूफलभ्रमेण

मिलच्छुकाली सहसा चकर्ष ।। शत्रु. 8/96

महाकवि विश्वनाथ राजा सुर्जन के रणभुमि का वर्णन करते हुए कहते है कि इस राजा की कीर्ति से युद्धभूमि की स्थिति अद्‌भुत हो जाती है। मस्तकविहीन शरीर वाले वीरों के रक्त से समुद्र बन गया उस रक्त का पान करते हुए पिशाच नृत्य कर रहे थे।

जिस प्रकार काली के युद्ध समय में पिशाचों के रक्त का पान करने से रक्तदन्त के समान वह राजा सुर्जन के भी रक्त का पान करना चाहता था।

यहाँ राजा सुर्जन के आवेग रूपी व्याभिचारी भाव है। इससे निष्पन्न जुगुप्सा रूप स्थायी भाव बीभत्स रस दशा को प्राप्त होता है।

9. शान्त रस –

मम्मटाचार्य ने शान्त रस का स्थायी भाव निर्वेद बताया था, परन्तु विश्वनाथ आदि आचार्य शम को इसका स्थायी भाव मानते हैं। परमात्मा का चिन्तन, संसार की अनित्यता का ज्ञान शान्त रस का आलम्बन विभाव है। सत्संग, पुण्य आश्रम, तीर्थस्थल की यात्रा या दर्शन करने से रमणीय वन आदि उद्दीपन विभाव है। रोमांच आदि अनुभाव हैं। निर्वेद, हर्ष, स्मरण, मति, जीवदया आदि व्यभिचारी भाव है। इनसे निष्पन्न शम रूप स्थायी भाव शान्त रस दशा को प्राप्त होता है। विश्वनाथ ने शान्त रस का स्वरूप निम्नलिखित बताया है –

न यत्र दुःखं न सुखं न चिंता न द्वेषरागौ न च काचिदिच्छा।

रसः स शान्तः कथितो मुनीन्दैः सर्वेषु भावेषु समप्रमाणः।। सा. दर्पण–3.2.49

स्वहृदये कलयन् मुवैरिण–

श्चरणवारिरुहं नृपसुर्जनः।

सदितिहासपुराणकथादिना

स समयाकृतवाँश्चरमां दशाम्।। शत्रु. 8/143

यहाँ राजा सुर्जन का अपने हृदय में भगवान विष्णु के चरणकमलों का ध्यान करना आलम्बन विभाव है। उनका दर्शन उद्दीपन विभाव है रोमांच आदि अनुभाव है भागवत्कथा आदि का स्मरण करना व्याभिचारी भाव है। इनके संयोग से उत्पन्न शान्त रस दशा को प्राप्त होता है।

10. वत्सल रस –

विश्वनाथ ने वत्सल रस का भी प्रतिपादन किया था और इसको मुनि सम्मत बताया था, परन्तु भरत के 'नाटयशास्त्र' में वत्सल रस का उल्लेख नहीं है। मम्मट के अनुसार पुत्र आदि के प्रति रति भाव की कोटि में आती है। इसके मतानुसार पुत्र आदि वत्सल रस के आलम्बन विभाव है। उनकी चेष्टायें गुण आदि उद्दीपन विभाव है। आलिंगन, अंगस्पर्श, चुम्बन, दर्शन, रोमांच आनन्दाक्षु आदि अनुभाव है। अनिष्ट की शंका, हर्ष, गर्व आदि व्यभिचारी भाव हैं। इनसे निष्पन्न वात्सल्य रूप स्थायीभाव वत्सल रूप रस दशा को प्राप्त होता है।

प्रजाऽन्वीक्षाशिक्षा चटुलत्वारितामोदमधुरं

धुरीणं नप्तारं चरणपतितं स्वस्य विनयात्।

मुहुः सान्द्रानन्दामृतबहलया तं निजद्वशा

धैयँश्चुम्बन मुर्ध्नि क्षितिपतिरजस्त्रं स शुशुभे।। शत्रु. 11/74

यहाँ राजा रावरतन अपने पौत्र का चुम्बन करना अनुभाव है। पौत्र शत्रुशल्य आलम्बन विभाव हैं। व्यवहार में कुशल, प्रसन्न आदि व्याभिचारीभाव है इससे निष्पन्न वात्सल्य रूप स्थायी भाव वत्सल रस है।

11. भक्ति रस –

भक्तिवादी आचार्यो ने भक्ति को भी रस की कोटि में परिगणित किया है। रूप गोस्वामी ने भक्ति रस का स्वरूप निम्नलिखित रूप में कहा है –

भक्ति रस के आलम्बन विभाव भगवान हैं। तुलसी, चंदन आदि उद्दीपन विभाव है। नेत्र विकार, नृत्य, गीत, अश्रुपात, रोमांच आदि अनुभाव है। निर्वेद आदि व्याभिचारी भाव है। इनमें निष्पन्न भगवद्विषयक रति रूप स्थायी भाव भक्ति रूप दशा को प्राप्त होता हैं।

श्री राधाकुचकलशद्वयेऽतिगौरे

संसर्पी नवजलदोद्धुरो मुरारेः।

आश्लेषे जयति वपुः प्रभासमूहः

कस्तूरी ललितघनांगरागमाली।। शत्रु. 1/1

राधा और कृष्ण की शोभा का वर्णन करते हुए महाकवि कहते है कि अत्यन्त गौरवर्णीय कुचकलशों वाली राधाजी का आलिंगन करते हुए मेघवर्ण वाले और ललित अंगराग की माला धारण करने वाले उज्जवल कान्ति युक्त देह वाले श्री कृष्ण की शोभा सर्वोकृष्ट है।

यहाँ राधा और कृष्ण आलम्बन विभाव है। अंगराग की माला धारण करना उद्दीपन विभाव है। रोमांच अनुभाव है। इनसे निष्पन्न राधा कृष्ण की आलिगंन आदि रति रूप स्थायीभाव भक्ति रूप रस दशा को प्राप्त होता है। (14)

.....********.....

1. दृश्यश्रव्यत्वभेदेन पुनः काव्यं द्विधा मतम्
2. काव्य प्रकाश 1/2
3. काव्यालंकार 1/2
4. काव्यालंकार 5/3

5. काव्यालंकार 1/21

6. वाग्वैदग्ध्य–प्रधानेऽपि रस एवात्र जीवितम्–अग्निपुराण 338/33 काव्यस्यात्मनि आङ्गिनि रसादिरूपे न कस्यचिद् विभतिः। व्यक्ति विवेक। वाक्यं रसात्मकं काव्यम् – साहित्यदर्पण।

7. प्रतीयमानस्य चान्यभेददर्शनेऽपि रसभावभुखेनैवोपलक्षणं प्राधान्यात्। (ध्व. लो. प्र. उ. पृ.सं. 90)

8. नाट्यशास्त्र 1/17

9. भट्टनायक मत लोचन में उद्धृत पृ.सं. 91

10. संस्कृत वाङ्मय का बृहत् इतिहास–अष्टमखण्ड (काव्यशास्त्र) पद्मभूषण आचार्य बलदेव उपाध्याय पृ.सं. – 548 – 549

11. नाट्यशास्त्र अ. 6

12. नन्वेवं कथं रसतत्वम् आस्तां, कि कुर्मः ..... तत्काव्यार्थो रसः।

13. श्रृंगार हास्य करूण रौद्र वीर भयानकाः।
वीभत्साद्भुतसंज्ञौ चेत्यष्टौनाट्ये रसाः स्मृताः।। श्लोक सं. – 29

निर्वेद स्थायिभावोऽस्ति शान्तोऽपि नवमो स्मृतः।। श्लोक सं. 35

–काव्यप्रकाश चतुर्थ उल्लास

14. अलंकार शास्त्र का बृहद् इतिहास – रमेश चन्द्र द्युसींगा – 149 – 152

पंचम अध्याय

रीति, गुण

रीति का उद्भव एवं विकास –

पदों की संघटना को विशिष्ट प्रकार की रीति कहा गया है। संस्कृत साहित्य में रीति शब्द का अनेक अर्थों में प्रयोग हुआ है। भामह ने रीति शब्द का अर्थ काव्य, दण्डी और भोज मार्ग, आनन्दवर्धन पर संघटना, रूद्रट एवं मम्मट वृत्ति और विश्वनाथ रीति मानते हैं। भोज रीति का अर्थ–गति अर्थ वाली रीङ् धातु से क्तिञ् प्रत्यय के योग से मानते है।

महाकवि भोज ने काव्य में रीति शब्द को मार्ग (पन्थाः) का पर्याय मानते हुए 'सरस्वतीकण्ठाभरण' में रीति शब्द की व्याख्या करते हुए लिखा है –

वैदर्भादिकृतः पन्थाः काव्ये मार्ग इति स्मृतः।

रीङ्गताविति धातोः सा व्युत्पत्या रीतिरूच्यते।।

आचार्य भरतमुनि प्रणीत नाट्यशास्त्र में रीति तत्व का उल्लेख प्राप्त होता हैं, परन्तु सर्वप्रथम काव्य में रीति को प्रमुख स्थान प्रदान करने में रीति सम्प्रदाय के प्रणेता आचार्य वामन माने गए है। आचार्य वामन ने रीति को काव्य आत्मा मानते हुए रीति के स्वरूप को निम्न प्रकार से बताया है –

" विशिष्टापदसंघटनारीतिः। विशेषो गुणात्मा।।"

अर्थात् विशेष प्रकार की माधुर्य आदि गुण युक्त पदों वाली रचना को रीति कहा है। वामन ने रीति का गुणों के साथ नित्य सम्बन्ध स्थापित किया था इस प्रकार आचार्य वामन ''काव्यशोभाकारक'' शब्द और अर्थ के धर्मो से युक्त पद रचना को रीति कहते हैं।

इस प्रकार रीति शब्द का व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ है – गति, मार्ग या प्रस्थान।

वैदिक साहित्य में रीति पद का प्रयोग अनेक स्थानों पर हुआ है, ऋग्वेद में रीतिपद का प्रयोग गति, धारा और मार्ग के अर्थ में किया गया है। यथा –

''वातेवाजुयनिद्येवरीतिः तामस्यरीतिपरशोरिव।''

भामह और दण्डी ने रीति पद के स्थान पर 'मार्ग' पद का प्रयोग किया है। आचार्य भरत ने रीति पद के लिए प्रवृत्ति पद का प्रयोग किया है। रीति का प्रथम विशद्विवेचन आचार्य भामह ने अपने काव्यलंकार ग्रन्थ में किया है। इस ग्रन्थ से, साहित्य रचना के दो प्रतिष्टित मार्ग वैदर्भ और गौडीय ज्ञात होता है।(1)

आचार्य वामन ने 10 शब्द गुण और 10 अर्थ गुण बताकर गुणों की संख्या 20 मानी है। वामन ने काव्य रचना के वैदर्भ और गौडीय इन दो पूर्ववर्ती मार्गों के अतिरिक्त पाञ्चाली का भी प्रतिपादन किया है।

आचार्य रूद्रट ने चार प्रकार की रीतियाँ मानी है – (1) वैदर्भी (2) गौडी (3) पाञ्चाली (4) लाटीया। रूद्रट ने रसों का भी रीतियों से संयोजन स्थापित किया है।

आचार्य राजशेखर के अनुसार वचन–विन्यास का क्रम ही रीति है – **''वचनविन्यासक्रमो रीतिः''**। काव्यमीमांसा में राजशेखर ने यद्यपि तीन ही रीतियों का उल्लेख किया है, तथापि कर्पूरमंजरी में उन्होंने चौथी मागधी रीति का भी प्रतिपादन किया है।

भोज के अनुसार (1) गौडी, (2) वैदर्भी, (3) पाञ्चाली, (4) लाटी, (5) आवन्तिका (6) मागधी बतायी गई है। आचार्य कुन्तक ने रीति के स्थान पर मार्ग का प्रयोग किया है उन्होंने वैदर्भी रीति–सुकुमार या कोमलमार्ग गौडी रीति को विचित्र मार्ग तथा पाञ्चाली रीति को मध्य मार्ग का नाम दिया है।

शारदातनय ने वचन–विन्यास क्रम को रीति का आधार माना तथा छः रीतियों का प्रतिपादन किया – (1) वैदर्भी (2) गौडी (3) पाञ्चाली (4) लाटी (5)

सौराष्ट्री और (6) द्राविडी। उन्होंने देश–विदेश के साथ रीतियों के सम्बन्ध को स्वीकार किया है। प्राचीन आचार्यो ने 105 रीतियों का भी उल्लेख किया है।

ध्वनिकार आचार्य आनंदवर्धन, मम्मट, विश्वनाथ आदि ने पद–संघटना की विशेषता को रीति कहा है तथा रीति को काव्य का बाह्य तत्व माना है। आचार्य विश्वनाथ ने रीतियों के प्रतिपादन में वर्णो के विन्यास और समास के मुख्य हेतु के रूप में प्रतिपादित किया हैं। इन्होंने वैदर्भी, गौडी, पाञ्चाली और लाटी ये चार रीतियाँ मानी है।

इस प्रकार निष्कर्ष से कह सकते है कि वामन से पूर्ववर्ती काव्यों में रीति तत्व का व्यवहार था यद्यपि उसको मार्ग के नाम से जाना जाता था। आचार्य वामन ने सबसे पहले रीतितत्व को वैज्ञानिक व्याख्या दी तथा उसे काव्य की आत्मा प्रतिपादित किया। [2]

रीति के अनिवार्य तत्व –

रीति के चुनाव के लिए रचनागत अनेक काव्य साधनों का परीक्षण अनिवार्य होता है। इन साधनों को रीतिनियामक तत्व कहते हैं आनंद के विश्लेषण के अनुसार – (1) वक्तृ औचित्य, (2) वाच्यौचित्य, (3) विषयौचित्य तथा (4) रसौचित्य – नियामक काव्य संसार में महत्व का स्थान रखते हैं

1. वक्तृ औचित्य –

रीति का निर्धारण वक्ता के अनुसार किया जाता है। वक्ता जो कुछ बोलता है या लिखता है उसे वह तन्मय होकर करता है। बाह्य जगत् या अन्तर्जगत् के समग्र अनुभवों को आत्मसात करके ही वह उनका वर्णन दुसरों की प्रतीति के लिए करता है। कवि तथा उसकी रचना में तादात्म्य सम्बन्ध रहता है।

2. वाच्यौचित्य –

वाच्य का औचित्य भी रीति का द्वितीय नियामक माना जाता है। वाच्य का अर्थ है – कथनीय वस्तु, अर्थ। वाच्य अनेक प्रकार के होते है।

3. विषयौचित्य –

विषय से तात्पर्य प्रबन्ध से अथवा काव्य के विशिष्ट प्रकार से जिसमें किसी संघटना का विधान प्रयुक्त किया जाता है।

4. रसौचित्य –

रीति का विन्यास रस के औचित्य पर भी निर्भर रहता है। जिस रस का उन्मीलन कवि को अभीष्ट होता हैं, उसकी रीति भी उसके नितान्त अनुरूप होनी चाहिए। आनन्दवर्धन असम्मत रीति को करूण रस तथा विप्रलम्भ श्रृंगार के नितान्त उपयुक्त स्वीकार करते है तथा दीर्ध समास रीति को वीर, रौद्र आदि रसों के अनुकुल। रस की ही काव्य में प्रधानता होती ही है। अतः ध्वनिकार ने काव्य के समग्र तत्वों को रसौचित्य पर आश्रित मानकर साहित्य नितान्त मौलिक सिद्धान्त की उद्‌भावना की है।

रीति के प्रकार –

मुख्यतया रीतियाँ तीन प्रकार की होती है – (1) वैदर्भी, (2) गौडी, (3) पाञ्‌चाली।

'शत्रुशल्यचरित' महाकाव्य में महाकवि विश्वनाथ ने वैदर्भी तथा गौडी रीति का प्रयोग किया है। विविध राजाओं के युद्धादि के वर्णनों में गौडी रीति तथा अन्य सौन्दर्यादि, प्रकृति चित्रण, तथा श्रृंगार रस से परिपूर्ण रचनाओं में वैदर्भी रीति का प्रयोग किया है। इस दोनों रीतियों का प्रयोग महाकवि ने बड़ी कुशलता के साथ विषयानुकुल एवं भावानुकुल किया है, जो रसाभिव्यक्ति में अत्यन्त सहायक सिद्ध हुई है। ओज गुण से सम्पन्न रचना में दीर्घ समास से युक्त पदावली वीर, रौद्र आदि रसाभिव्यक्ति के प्रमुख कारण होती है, तद्‌नुसार ही कवि का वैदुष्य रीति–प्रयोग में प्रकट होता है।

1. वैदर्भी रीति –

प्रथम अवस्था का निदर्शन वह चित्त, जो किसी कोमल या करूणापूर्ण वाक्य को सुनकर एकदम पिघल उठता है। ऐसी दशा में माधुर्य गुण का उदय होता है और इसके ऊपर आश्रित होने वाली रीति वैदर्भी कहलाती है।

यथा –

अपागसङ्गी चलहक्तरङ्गो

भङ्गी गिरां गद्गदवक्त्ररम्या।

इत्यं मिथो लोलदृशां समोऽभूत

तारूण्यवारूण्युदितो विलासः ।। शत्रु. 19/56

स प्रेमपूर्वकमपाययदासवं यां

प्राणेश्वरः प्रियतमामथ सा न यावत्

रागं दृशोर्वहति तावदहो परस्याः

कान्ते जुघ्र्ण बत पाटलितः कटाक्षः।। शत्रु. 19/57

महाकवि विश्वनाथ ने 'शत्रुशल्यचरित' में प्राकृतिक सुषमा से युक्त नायक शत्रुशल्य के अनुराग का वर्णन करते हुए कहते है, कि सुन्दर कनखियों से युक्त नेत्रों वाली, अस्थिर अंगो वाली छिन्न–भिन्न वाणी से रम्य, इस प्रकार की स्त्री के यौवनावस्था से प्रकटित विलास से युक्त हो गया।

शत्रुशल्य जिस प्रियतमा से प्रेमपूर्वक मद्य का पान करता है। जैसे ही वह पूर्व नायिका देख कर राग को वहन नहीं करती है। वैसे ही परस्पर सपत्नी शत्रुशल्य से ईर्ष्यावश गुलाबी नेत्रों वाली हो घृणा करने लगी।

इस प्रकार नायक (शत्रुशल्य) के अन्य स्त्री के रम्य वचनों से चित्त पिघल गया और माधुर्य गुण का उदय होकर, वैदर्भी रीति का महाकवि ने कुशलता से प्रयोग किया है।

2. गौडी रीति –

चित्त की दूसरी अवस्था दीप्ति–जिसमें चित्त संकोच भाव को एकदम छोड़कर विस्तृत हो जाता है, फुल की पंखुड़ियों के समान। ऐसी अवस्था में ओज गुण का प्रादुर्भाव होता है और इस गुण पर आश्रित होने वाली रीति गौडी के नाम से विख्यात होती है।

यथा –

दोर्दण्डोद्दण्डकण्डूविकटभटघटागाढसङ्घहनिर्यन–

निर्मर्यादार्यवीर्यज्वलदनललसत्सत्स्फुलिंगप्रचण्डा

कल्पान्तोच्चण्डचण्डीपरिवृढकुटिलप्रौढलालाटचक्षुः–

स्फोटस्फीता विरेजुर्महति बलयुगे नालिकोत्था हुताशाः।। शत्रु. 11/135

महाकवि विश्वनाथ ने महाकाव्य शत्रुशल्यचरित में रावरतन के युद्ध चित्रण करते हुए कहा है कि असीमित, अनियंत्रित नैतिक क्षमता की आग कि चिंगारी के समान भयावही तोपों से आग निकल रही थी। यौद्धाओं के समूह रूपी बादलों के टकराव से, भुजाओं के घाव से अत्यधिक क्रोधित, दोनों सेनाओं के मध्य आग उगल रही थी जिस प्रकार ब्रह्माण्ड के विनाश के समय चण्डीपति रूद्र ने क्रोध वश तृतीय नेत्र खोल दिया हो।

महाकवि के महाकाव्य में दीर्ध समास युक्त रचना तथा विकट पद रचना सर्वत्र देखी जा सकती है।

गुण

गुण विवेचन–

आचार्य मम्मट ने गुण रस के धर्म, रस के उत्कर्ष रस के हेतु और रस में नित्य रहने वाले बताए हैं। डॉ. ओझा ने मम्मट द्वारा प्रस्तुत गुण विवेचन की व्याख्या निम्न प्रकार की है –

''गुणों को रस के धर्म इसलिये कहा गया है कि जिस प्रकार शूरता आदि गुण आत्मा के धर्म हैं।'' दण्डी के अनुसार गुण काव्य के शोभा–विधायक धर्म हैं। वामन ने भी **''काव्यशोभायाः कर्तारोधर्मागुणाः।''** आचार्य आनन्दवर्धन ने अंगीरस रस के आश्रित धर्म को गुण कहा हैं। आचार्य मम्मट भी गुणों को रसाश्रित मानते हुए कहते हैं कि आत्मा के शौर्यादि गुणों की भाँति अंगीभूत रस के उत्कर्षकारी स्थिर गुण कहा –

ये रसस्यांगिनो धर्माः शौर्यादय इवात्मनः।

उत्कर्ष–हतवस्ते स्युरचलस्थितयो गुणाः।।

अष्टम उल्लास/66 – काव्यप्रकाश

अतः मम्मट के अनुसार रस और गुण का परस्पर संबंध है। उन्होंने गुणों के शब्दार्थ को धर्म माना है और इस सिद्धान्त का खण्डन करते हुए लिखा है कि जिस प्रकार ''शौर्यादि गुण आत्मा के धर्म हैं, न कि शरीर के ; उसी प्रकार माधुर्य आदि गुण रस रूप आत्मा के धर्म हैं, न कि वर्णादि रूप शरीर के। उनके अनुसार माधुर्य आदि गुण रस के धर्म हैं, ये वर्णो पर आश्रित नहीं हैं।'' इस प्रकार ''गुण काव्य के उत्कर्षाधायक वे तत्व हैं, जो मुख्यतः रसाश्रित हैं।'' (3)

गुणों के भेद–

सर्वप्रथम आचार्य भरतमुनि ने अपनी कृति नाट्य शास्त्र में दस प्रकार के गुणों की व्याख्या की है –

श्लेषः प्रसादः समता समाधिः माधुर्यमौज पदसौकुमार्यम्।

अर्थस्य व्यक्तिरूपारता च, कान्तिश्चकाव्यार्थ गुणा दशैने।।

मुख्यतः ओज, प्रसाद और माधुर्य गुण ही माने गए है। ''शत्रुशल्यचरित'' में महाकवि ने प्रायः तीनों ही गुणों प्रयोग किया है। जैसा कि पूर्व में लिखा है कि यह एक ऐतिहासिक महाकाव्य है, जिसमें सूर्यवंश तथा उससे उत्पन्न चौहानवंश के राजाओं का चित्रण करना कवि का प्रमुख उद्देश्य रहा है। अतः 'शत्रुशल्यचरित' महाकाव्य में विषयानुकुल व भावानुकुल तीनों गुणों का प्रयोग किया गया है।

1. ओज गुण –

वीर रस में उद्दीपकता रूप धर्म के कारण चित्त ज्वलित, फुर्तीला हो जाता है। वह स्थिति ओज गुण में होती है। ओज गुण वीररस से अधिक वीभत्स रस में और वीभत्स रस से अधिक रौद्र रस में रहता है –

दीप्यात्यविस्तृतेहेतुरोजोवीररसस्थितिः।

बीभत्स–रौद्ररसयोस्तयस्याधिक्यं क्रमेण च।।

अष्टम उल्लास/69 – काव्यप्रकाश

यथा –

शस्त्रज्वालाजटाभिस्त्रिभुवनं दग्द्युकामनधारीन्

दृष्ट्वा युद्धातिधृष्टो धरणि–परिवृढः क्रोधसक्रूरदृष्टिः।

धौरेयोद्दामधाराजल – विलसदसिप्रौढ़कादम्बिनीस्वां

कालीं कल्पान्तकालीमिव विमततेस्तूर्णमाविश्चकार।। शत्रु. 11/146

इत्थं श्रीरात्नराजप्रखरतरलसन्मण्लाग्र प्रचण्ड –

प्यालीव्यालीढसैन्यः सपदि स खुर्रम प्राणसन्त्राणगृध्नुः।

पारैर्लोकैर्हसद्भिर्बहुवि्तत्तमिथोहस्ततालैः सुदूरा –

दुच्चैराक्रुश्यमानः क्षणमपि समरे नैव तस्थौ सुधीरः।। शत्रु. 11/152

उपर्युक्त पद्यों में महाराज शत्रुशल्य के प्रपितामह महाराज रत्नसिंह के शौर्य एवं पराक्रम का वर्णन किया गया है। यवन सेनापति खुर्रम के साथ हुए युद्ध दृश्य चित्रित हैं।

तब राजा युद्ध के लिए अत्यधिक निर्भीक था। उसकी आँखों में शत्रुओं के लिए क्रोध था। अपने शस्त्रों की ज्वाला से वह तीनों लोकों को भस्म करना चाहता था। उसकी शक्तिशाली (धारयुक्त) तलवार इस तरह प्रतीत हो रही थी, जैसे मेघ पंक्ति को भेदते हुए चिंगारी के समान पानी बौछार कर रही थी। राजा रत्न अपनी श्यामवर्णी, निर्बन्ध, जो धाराजल से युक्त थी, वह तलवार धनी मेघमाला के समान शत्रुओं का पंक्तिबद्ध रूप से नाश कर रही थी। जो सृष्टि का अन्त करने वाले यम की सखी काली की तरह शीघ्र कोषों को भर रही थी।

इस प्रकार श्री रामराज के अति–तीक्ष्ण तलवार के भय से प्रचण्ड अतिकुपित सर्पिणी की तरह, प्राणों की रक्षा के लिए महत्वकांशी खुर्रम को देखकर नगरवासी परस्पर तालियाँ बजाकर हँस रहे थे, अधीर, निन्दित वह खुर्रम क्षणभर में युद्धभूमि से भाग गया।

इस प्रकार महाकवि ने ओज गुण का अनेक स्थानों पर प्रयोग किया है।

2. माधुर्य –

जिस गुण से मन आनन्द से द्रवीभूत हो जाता है, वहाँ माधुर्य गुण होता है–

आह्लादकत्वं माधुर्य श्रृंगार द्रुति कारणम्।

करूणे विप्रलम्भे तच्छान्ते नातिशयान्वितम्।।

अष्टम उल्लास/68 – काव्यप्रकाश

करूण प्रसंगो में चित्त भाव–विभोर हो उठता है, चित्त पूर्णरूपेण द्रवीभूत हो जाना माधुर्य गुण का ही काव्य कारण है। माधुर्य गुण संयोग श्रृंगार की अपेक्षा

करूण में, करूण रस की अपेक्षा वियोग में, वियोग श्रृंगार की अपेक्षा शान्त रस में अधिक होता है।

यथा –

देव भवन्यधुराधरसङ्गात्

किञ्चिदुदञ्चित पञ्चमरोगा।

वंशजगोपवधूर्वरवंशा

त्वन्मुरली तरलीकुरूतेऽहो।। शत्रु. 14/99

कुचौ कृशाङ्ग्याः कलशौ नु काञ्चनौ

तपः परार्धैः सुलभौ रसोम्भितौ।

स्मरस्य यन्मेचकचचुकच्छला –

न्मषीयमुद्राऽत्र रहस्यशंसिनी।। शत्रु. 16/136

महाकाव्य 'शत्रुशल्यचरित' में नायक नायिका के मिलन के लिए, चित्त को द्रवीभूत करके नायक देवता से कहता है – कि हे देव ! आपका मधुर अधरों का संगम किंचित पंचमराग युक्त है। आपके द्वारा प्रदत मुरली वंश वाद्यम श्रेष्ठ कुलोत्पन्न नायक और नायिका के उत्कण्ठित मिलन को आप पार लगाओं। अन्य पुरूष भी उत्कण्ठित रहेगें, आश्चर्य है।

अन्यों की तपश्चर्या सुलभ होती है राग के जल से पूर्ण कृंशागी, श्यामा के स्तनों की स्वर्णमयी कलश की भाँति प्रंशसा करनी चाहिए, क्योंकि यहाँ काले स्तन इन्द्रनील रत्न, छलपूर्वक कामदेव की स्याही सम्बन्धिनीमुद्रा है।

'शत्रुशल्यचरित' महाकाव्य में विविध राजाओं के सौन्दर्यादिगुणों के प्रंसग में तथा श्रृंगारिक वर्णनों में माधुर्य गुण से मण्डित पद्य पद–पद पर है।

3. प्रसाद गुण –

जहाँ काव्य को पढ़ने से प्रसन्नता हो वहाँ प्रसाद गुण की स्थिति मानी जाती है। इस गुण की विशेषता–सहत ग्राह्यता है।

शुष्केन्धाग्निवत स्वच्छजलवत्सहसैवयः।

व्याप्नोत्यन्तयत् प्रसादोऽसौसर्वत्रविहितस्थितिः।।

अष्टम उल्लास/90 – काव्यप्रकाश

शत्रुशल्यचरित महाकाव्य में मनोरम दृश्यों तथा अन्य अनेक स्थानों पर पद्य–रचना प्रसाद गुण से मण्डित है। वस्तुतः प्रसाद गुण सभी प्रकार की रचनाओं में सम्पूर्ण महाकाव्य में कहीं अधिक तो कहीं कम सर्वत्र है।

यथा –

उत्फुल्लवक्त्राः समसंवृतोष्ठकाः

कुन्दाभदन्ताः परिरक्तकाकुदाः।

उतङ्गद्योणः सुललाटपट्टिकाः

सम्फुल्लपद्योपमपक्ष्मलेक्षणाः।। शत्रु. 14/64

यथा यथा पूर्वगिरेरधित्यका –

मलंकरोत्येष कलाधरः स्वयम्।

तथा तथा सख्य इवाऽन्यभूभृतां –

मुद्यु स्मयन्ते न चिरादुपत्य काः।। शत्रु. 16/28

महाकवि विश्वनाथ ने अपने महाकाव्य में नायक शत्रुशल्य के विवाह प्रस्थान प्रसंग में नायक के आन्तरिक प्रसन्नता का चित्रण करते हुए कहते है कि राजा शत्रुशल्य होठों को आच्छादित किए हुए, कुन्द के समान दन्त वाले, रक्त युक्त

तालव के चारो ओर से, उच्च नासिका युक्त, श्रेष्ठ ललाट पट्टिका वाले प्रफुल्लित लोमश (रोएदार) कमल के समान प्रसन्ता से बोले।

जैसे–जैसे चन्द्रमा भी उदयांचल पर्वत को अलंकृत करता हुआ पर्वतों की उपत्यका में रहता हुआ मित्र की तरह क्षणिक प्रकाशित होकर मन्द हसंता है। नायिका भी कुशल नायक को स्वयं मण्डित करके अधीनस्थ सखियों का स्मरण करती है।

महाकवि ने नायक व नायिका की हृदयवर्जकता, सहजता, सरलता से प्रसाद गुण का प्रयोग किया है।

.....********.....

1. अलंकारशास्त्र का बृहद् इतिहास रमेश चन्द्र द्युसीगा पृ.सं. 191 - 193
2. संस्कृत वाङ्मय का बृहद् इतिहास – पद्मभूषण आचार्य बलदेव उपाध्याय

सम्पादक

स्व. आचार्य करूणापत्ति त्रिपाठी

सह सम्पादक

आचार्य वायुनन्दन पाण्डेय पृ.सं. –486

3. रीति शास्त्र के प्रतिनिधि आचार्य मानवेन्द्र पाठक (डी.लिट) पृ.सं. 32 – 33

षष्ठ अध्याय

प्रकृति चित्रण

संस्कृत में वैदिक–पौराणिक साहित्य एवं आर्षकाव्यों की पृष्ठभूमि पर, विविध शास्त्रीय ज्ञान का यथोचित सदुपयोग से साहित्य का प्रादुर्भाव हुआ है। दृश्य काव्य और श्रव्य काव्य की नाटक–महाकाव्य गीतिकाव्य, आख्यायिका इत्यादि विविध विधाओं में काव्यशास्त्रानुसार प्रकृति को वर्ण्य–विषय के रूप में सम्मिलित किया गया है। देववाणी के कलात्मक काव्य–जगत में अभिव्यक्त प्रकृति–विषयक सुकुमार भावनाएँ, प्रकृति, प्रेम, मानव–प्रकृति–अभिन्नता अखिल विश्व के एकात्मवाद का ही कमनीय काव्यात्मक निदर्शन है। [1]

महाकवियों ने इस तथ्य को प्रस्तुत किया हैं कि समस्त जड़ चेतन सृष्टि में एक ही तत्व भरा है और वह चेतन है अतएव स्त्री पुरूष के समान ही लता वृक्षादि भी उसी चैतन्य से चेतन है, मानव के साथ इनका अटुट सम्बन्ध है। मानव अपने सुख दुःख का रूप प्रकृति में देखता है, प्रकृति भी मानव से संश्लिष्ट है। [2] अतः संस्कृत कवियों के प्रकृति चित्रण में कवि–प्रतिभा का उन्मेष भाँति–भाँति से हुआ है। काव्य–सौन्दर्य विधायक अलंकारों का मूल उपादान प्रकृति ही है। अलंकार संयोजन करते समय प्राकृतिक यथार्थ का निर्वाह प्रकृति के सूक्ष्म निरीक्षण तथा पर्यावरण के बहुमुखी ज्ञान द्वारा ही संभव है। [3]

महाकवि की सर्वोच्चता एवं सफलता में प्राकृतिक तत्वों के वर्णन का प्रमुख स्थान होता है। प्रायः सभी महाकाव्यों में प्रकृति का किसी न किसी रूप में वर्णन अवश्य किया जाता है। 'शत्रुशल्यचरित' महाकाव्य में महाकवि विश्वनाथ द्वारा किया गया प्रकृति–चित्रण भी अप्रतिम एवं अति रमणीय है। महाकवि ने प्रकृति चित्रण के अत्यन्त सजीव सुन्दर तथा अत्यन्त विशद वर्णन किया है। जिनके अध्ययन से पाठकों के समक्ष उस चित्रण का बिम्बात्मक चित्र सा उपस्थित हो जाता है। महाकवि विश्वनाथ ने इस महाकाव्य के पन्द्रहवें सर्ग में वनों का, मार्ग का, पर्वतों व

नदियों की शोभा का तथा सोलहवें सर्ग में सूर्यास्त, चन्द्रोदय का अद्‌भुत श्रृंगारिक चित्रण किया है। महाकवि ने अपनी कल्पना शक्ति से मानवीयकरण करके तथा प्राकृतिक दृश्यों पर चेतन धर्म का आरोप कर उनका आलंकारिक वर्णन किया गया हैं और कहीं–कहीं पर प्रकृति का आलम्बन व उद्दीपन रूप में भी वर्णन किया है। शत्रुशल्य की विवाह यात्रा व वन–विहार के प्रसंग में प्रकृति का भव्य वर्णन उद्दीपन के रूप में किया गया है।

'शत्रुशल्यचरित' में प्रकृति का जो रमणीय व श्रृंगारिक चित्रण महाकवि विश्वनाथ ने किया है, वह अन्य महाकाव्यों में प्रायः दुर्लभ है। चाँदनी का अपने प्रियतम चन्द्रमा से मिलना, सूर्यास्त के समय सूर्य को नायक के रूप में प्रस्तुत कर नायिका रूपी पश्चिम दिशा का चुम्बन आदि व्यापारों से अतुलनीय श्रृंगारिक चित्रण महाकवि के वैदुष्य व सूक्ष्म निरीक्षण का परिचायक है।

प्रकृति–चित्रण हेतु विभिन्न शिल्पों का प्रयोग किया जाता है, उन शिल्पों को निम्नलिखित वर्गों में विभाजित किया जा सकता है –

1. आलम्बन रूप में
2. उद्दीपन रूप में
3. अलंकारिक रूप में
4. मानवीयकरण रूप में

प्राचीन महाकाव्यों में अधिकांशतः प्रकृति के आलम्बन रूप में चित्रण को अपनाया गया है। आलम्बन रूप में प्रकृति का यथातथ्य वर्णन प्रस्तुत किया जाता है।[4] महाकवि विश्वनाथ प्रकृति चित्रण के सिद्धहस्त कवि हैं इन्होंने अपने काव्य में प्रकृति चित्रण के आलम्बन रूप को अपनाकर सुन्दर–सुन्दर चित्रण प्रस्तुत किए है।

महाकवि ने उन्नीसवें सर्ग में 190 पद्यों में विस्तृत रूप से प्रकृति का मनोहारी मधुर एवं भव्य रूप का चित्रण किया है। इसमें षड्‌ऋतुओं का वर्णन दर्शनीय है। कवि ने अनेक उपमानों व उत्प्रेक्षाओं से छः ऋतुओं का श्रृंगारिक व रमणीय चित्रण किया है।

1. आलम्बन रूप में : –

अथो स पाथोजसखो हरिद्वधू –

र्दृढं समालिंग्य विसृत्वरैः करैः।

अनङ्गश्रमभङ्गुराङ्गको,

जहद्विलम्ब प्रचुचुम्ब वारूणीम्।। शत्रु., 16/1

यत्र पीनविलसत्पयोधराः

सन्दिशान्ति नवसद्वयोधराः

वापिका मधुरसारसेक्षणा

अंगना इव नृमानसे क्षणान्।। शत्रु., 15/36

महाकवि विश्वनाथ ने सूर्यास्त के समय सूर्य को नायक के रूप में प्रस्तुत कर नायिका रूपी पश्चिमी दिशा का चुम्बन कराकर आलम्बन रूप में उत्कृष्टता को प्रकट किया है। नायिका के अंगो का पान करने की उत्सुकता को आलम्बन रूप में प्रकट किया है।

चन्द्रोदय का श्रृंगारिक चित्रण, यथा –

दिशाऽयमैन्द्रया किमचुम्बि चन्द्रमा –

श्चिरेण बन्धूकनिमाधरत्विषा।

तदीयदन्तच्छदरागतो यतः

स लोहितायन्मुदितो नभस्तले।। शत्रु. 16/25

यहाँ महाकवि श्रृंगारिक चित्रण करते हुए कहते है कि यह चन्द्रमा पूर्व दिशा रूपी नायिका के होंठ के निचले भाग को चिरकाल तक चुम्बन करता है। जो उसके (पूर्व दिशा सम्बन्धि) दाँत और औष्ठ के बीच लाल हो गया है। महाकवि ने स्वर्णिम आभा को प्रकट किया है।

2. उद्दीपन रूप में : –

वात्यस्मिञ्छिशिरानिले रतिपतेरून्मादनास्त्रे परं

किं चित्रं चललोचना नवनवं वाञ्छन्ति यत्कामुकम्।

चारित्रव्रतदेवताऽपि यदहो स्वप्नेऽपि याऽन्यं प्रियं

नैच्छत् साऽप्यनले चिरेण दमयन्त्यऽंगीकरोति स्पृहाम् ।। शत्रु. 19/185

महाकवि विश्वनाथ ने षड्ऋतु वर्णन में शिशिर ऋतु में स्त्रियों की कामाग्नि से उद्दीपन रूप को वर्णन में प्रस्तुत करते हुए कहा है – कन्दर्प के उन्माद के कारण इस शिशिर ऋतु में उत्कृष्ट वायु बह रही थी, जो चंचल नैत्रों वाली स्त्रियों में कामेच्छा को बढ़ा रही थी। वह स्वप्न में भी राजा नल की कामना करती है और वह पातिव्रत्य दमयन्ती की तरह भीमपुत्र नल भिन्न पुरूष का ईष्यावश आलिंगन करती है।

3. आलंकारिक रूप में : –

यथा–यथा पूर्वगिरेरधित्यका

मलंकरोत्येष कलाधरः स्वयम्

तथा तथा सख्य इवाह्नन्यभृभृतां

मुहुः स्मयन्ते न चिरादुपत्यकाः।। शत्रु. 16/28

महाकवि प्रकृति का आंलकारिक चित्रण प्रस्तुत करते हुए कहते है कि जैसे–जैसे यह चन्द्रमा कुशलतापूर्वक उदयाचल पर्वत को अलंकृत करता है वैसे ही अन्य पर्वतों की उपत्यका में निवास करता हुआ मित्र की तरह चिरकाल तक नही रहता है। क्षण भर प्रकाशित होकर मन्द हँसता है। नायिका स्वंय कुशल नायक का मण्डन करती है और अधीन होकर अन्य नायिका को स्मरण करती है। यहाँ पर नायक नायिका का चन्द्रमा की उपमा से आलंकारिक चित्रण किया गया है।

4. मानवीयकरण रूप में : –

अथो स पाथोजसखो हरिद्वधू –

र्दृढ़ं समालिंगय विसृत्वरैः करैः।

अनङ्गरङ्गश्रमभङ्गुराङ्गको

जहद्विलम्ब प्रचुचुम्ब वारूणीम्।। शत्रु. 16/1

महाकवि ने शत्रुशल्यचरित महाकाव्य में अनेक स्थलों पर प्रकृति को मानवोचित व्यापारों से युक्त करके चित्रण किया है। प्रस्तुत वर्णन में दिशाओं पर सूर्य वधू होना आरोपित किया है सूर्य पर पतिरूप का आरोप किया गया है। महाकवि कहते है कि प्रसिद्ध मार्ग मित्र सूर्य ने दिशाओं की वधू के समान अपने हाथों से समालिंगन करने के कारण श्री कामदेव के स्थल में श्रम से शिथिल हुए अंगों को छोड़कर मानो पश्चिम दिशा को प्राप्त कर लिया हो।

महाकवि ने अनेक उपमानों व उत्प्रेक्षाओं से छः ऋतुओं का श्रृंगारिक व रमणीय चित्रण किया है।

वसन्त ऋतु चित्रण–

उतुङ्गमङ्गलमृदङ्गितभृङ्गगुञ्ज –

माकन्दवृन्दविकसत्पिकनादनादि।

मन्दानिलोत्तरलवल्लिलताभिनीति

प्रावर्त्यतर्तुपतिना रतिनाथनाट्यम्।। शत्रु. 19/11

आलिंगन भुजविटपं लताबलानां

सोत्कम्प[2] सदधरपल्लवञ्च चुम्बन्।

किञ्चासां स्तबककुचं स्पृशन्नशंकः

कामीवालसदनिलोऽथ दक्षिणात्यः।। शत्रु. 19/12

महाकवि ने ऋतुराज बसन्त के द्वारा आशीर्वाद रूप में मंगल पाठ किया है। मन्द हवा से चंचल वल्लरी अभिनय कर रही थी जिसमें रतिनाथं के नाट्य में दृश्य

काव्य रूप के समान प्रदर्शित हो रही है। इसके बाद लता नायिका की तरह दोनों भुजाओं की तरह शाखाओं का आंलिगन कर कंपन के साथ पल्लवों का चुम्बन करते हुए दक्षिण दिशा से वायु चल रही थी।

ग्रीष्म ऋतु की शोभा का चित्रण–

पत्यामृतूणामिति तं जगत्याऽत्यादरेणार्चिततमेक्ष्य नाथम्।

स्फुटस्फुटत्पाटलहासभासा समुञ्जजृम्भेऽर्चयितुं तपेन।। शत्रु. 19/74

हृद्रयहारिविहारहृतान्तरं चिरतरंतमुदीक्ष्य महाशयम्।

प्रचुरकेलिमहानि महान्त्यहो द्रूतमहानि तपेन वितेनिरे।। शत्रु. 19/75

महाकवि ने ग्रीष्म काल का वर्णन अत्यन्त रोचक पूर्ण प्रस्तुत किया है। इस प्रकार ऋतुओं का स्वामी बसन्त का जगतनाथ उस शत्रुशल्य के द्वारा आदरपूर्वक सत्कार देखकर विकसित पाटल पुष्पों का उसी प्रकार हास हुआ जैसे ग्रीष्म के तप से वह शत्रुशल्य जंभाई लेने लगा। ग्रीष्मकाल में महोदय गंभीर मन से उस शत्रुशल्य के हृदय से आकर्षक विहार को निष्कासित करके अंतरमन में विचार करके अहो प्रसन्नता है! प्रचुर क्रीड़ात्सव के दिन शीघ्र ही व्यतीत हो गए।

वर्षा ऋतु का चित्रण–

विशन् स्ववेश्मप्रतिहारभूमि

समीपतः पीनपयोधरांसः।

चिरं वियोगान्मलिनाम्बरान्तां

कान्तामथ प्रावृषमैक्षतोच्चैः ।। शत्रु. 19/129

सपदिजिष्णुममुं प्रियमुच्चकै –

रूपगतं समवेक्ष्य मुदा तथा।

कुटजपुष्पमिषात् स्मयमानया

समदकेकिकलध्वनिराददे।। शत्रु. 19/130

इसके बाद उस वैश्य ने प्रतिहार भूमि में प्रवेश करके जलयुक्त बादलों से आच्छादित आकाश से वियोगिनी पृथिवी सदृशा प्रिया को शत्रुशल्य के समीप देखा। शीघ्र जीतने वाले इन्द्र के पास राजा शत्रुशल्य को आता हुआ देखकर पुष्पों के मन्द हँसने, मदमस्त मयूरों की मधुर ध्वनि गुंजायमान हो रही थी।

शरद्–ऋतु का चित्रण–

मदकलकलहंस चारूयाना

हसित सरोजविराजिदिङ्मुखश्रीः।

विमलविलसदम्बराभिरामा

शदरथ तस्य दृशं भृशं जहार।। शत्रु. 19/147

सुमलिनद्यनसंगादुत्यथप्रस्थितानां

सपदि कलुषभावं निध्नती निम्नागानाम्।

शरदियमनवद्या साच्चरित्रेव नारी

व्यतनुत निरपायं मित्रमाह्वात्म्यमुच्चै।। शत्रु. 19/148

महाकवि ने शरद् ऋतु का अत्यन्त चारित्रिक ढंग से प्रस्तुत किया है। मादकता से युक्त, मधुर गुंजन करने वाले जो कलहंस गति कर रहे थे। उनकी विकसित कमल की तरह दिशा थी। उस निर्मल, सुन्दर, सफेद आकाश का दर्शन शत्रुशल्य ने किया।

श्रेष्ठ मलिन मेघों के संगम ने प्रवाह दुराचार नदीयों के निम्न भाग में जाने से और स्त्रियों के कलुष भाव को दूर करता है यह नवीन शरद सच्चरित्र निर्दोष नाशरहित है जैसे–तैसे उच्चमित्र सूर्य के लक्षण और सतीत्व की प्रशंसा करता है।

हेमन्त ऋतु का चित्रण : –

तं विलोक्य लसदम्बुजमुख्या

वश्यमाशुशरदो बत सख्याः।

हैमनी ऋतुरूची रूरूचेऽथो

मानिनीव मलिनाननपद्या।। शत्रु. 19/178

महाकवि कहते है कि सर्वत्र हैमनी की शोभा युक्त, उस शत्रुशल्य ने कमल की तरह मुख वाली उसकी सखी को शरद के अधीन देखकर प्रसन्नचित होकर क्रोधित उस स्त्री को देखा।

शिशिर–ऋतु का चित्रण –

विलसत्सुचरित्रे मनसिजमित्रे

वयसि विचित्रे रचितरूचः,

पृथुजघ्नसमेताः शिशिर सुभीताः

सविधमुपेता मानमुचः।। शत्रु. 19/189

विपुलस्तनभारा मुखजिततारा –

धिपमदसारा मुहुरवलाः

भेजे सुखरंग विलसदनंग

दृढमालिंगन्नयमबलाः।। शत्रु. 19/190

महाकवि षड्ऋतु वर्णन करने में सिद्धहस्त है शिशिर ऋतु का वर्णन भी कवि ने विशद एवं सजीव रूप में किया है।

इस प्रकार शत्रुशल्य के केश संस्कार के लिए ग्रहण कि गई धूप से सुंदर रुप जिससे गंभीर नाभि सुशोभित हुई। उसी प्रकार सुंदर मुख से निकला नवीन

स्वर वीणा को सुशोभित करता है। कस्तूरी जो मनोहर काम को प्रकट करता है उससे युवती समूह दृढ़ आलंगित था।

यह शत्रुशल्य उज्ज्वल चरित्र युक्त, जिसका मित्र कामदेव को विचित्र युवावस्था में अनेक प्रकार की क्रीड़ा से रचित मण्डप पर उदार कान्ति से युक्त, दोनों विस्तृत जाँघो से युक्त, शिशिर से भयभीत अपने समीप आए हुए को त्यागकर विपुल स्थनभार युक्त, जिसके मुख के द्वारा जीता गया तारों के राजा चन्द्रमा के मद को जो स्त्रियों के विलास के लिए रंगमहल इति प्रसिद्ध स्थान पर भेजा गया।

इस प्रकार 'शत्रुशल्यचरित' महाकाव्य में प्रकृति–चित्रण अत्यन्त रमणीयता के साथ किया गया है। कवि ने अपने अनुभव व वैदुष्य से प्राकृतिक दृश्यों का सफल चित्रण किया है इसमें मानव भावनाओं के उद्दीपक यमक, उत्प्रेक्षा आदि अलंकारों से ये वर्णन अत्यधिक आकर्षक प्रतीत होते हैं। प्रकृति–चित्रण में श्रृंगार का अत्यन्त उदात एवं चित्रोपम वर्णन इस महाकाव्य की प्रमुख विशेषता कही जा सकती है।

.....********.....

1. प्राचीन भारत में पर्यावरण – चिन्तन पृ.सं. 58
2. अभिज्ञान शाकुन्तलम् – महाकवि कालिदास – पृ.सं. 558
3. प्राचीन भारत में पर्यावरण – चिन्तन पृ.सं. 59
4. संस्कृत के पौराणिक महाकाव्य – डॉ. राजेश कुमारी मिश्रा पृ.सं. 185 – 187

प्रथम अध्याय

महाकवि विश्वनाथ प्रणीत 'शत्रुशल्यचरित' महाकाव्य एवं हाड़ौती के ऐतिहासिक महाकाव्यों का तुलनात्मक अध्ययन

महाकवि विश्वनाथ विरचित 'शत्रुशल्यचरित' महाकाव्य इतिहास की गाथा पर आधारित राजस्थान की वीर–प्रसविनी कहलाने वाला प्रत्यक्ष दर्पण है। यह चाहुवान वंश परम्परा का एक सचित्र प्रमाण है। हाड़ौती के प्रसिद्ध ऐतिहासिक महाकाव्यों के चौहान वंश के वर्णन में शत्रुशल्यचरित एक विशेष स्थान रखता है। सुर्जनचरित, हम्मीर महाकाव्य, पृथ्वीराज विजय महाकाव्य, रामविलास महाकाव्य आदि महाकाव्यों का अवलोकन किया जाए तो शत्रुशल्यचरित में अत्यधिक घटनात्मक स्थिति तथ्यात्मक रूप से परिपूर्ण है। इस महाकाव्य का ऐतिहासिक वृतान्त 'सुर्जनचरित' में वर्णित मुगल शासक अकबर से लेकर शाहजहाँ तक के मुगलकालिक ऐतिहासिक तथ्यों की सूचना से अत्यधिक प्रमाणिक है। अकबर, जहाँगीर और शाहजहाँ के शासनकाल में रणथम्भौर, गोड़वाना, गुजरात और अन्य स्थानों पर वीरतापूर्ण युद्धों का इस महाकाव्य में अत्यन्त स्पष्टता पूर्ण वर्णन किया गया है। इस महाकाव्य के प्रणेता को युद्धों के दौरान राजवैद्य के रूप में उपस्थित रहने के कारण राव रतन एवं शत्रुशल्य द्वारा भरतपुर, बलोचपुर (आगरा) दौलताबाद रियासत और महु के युद्धों की प्राथमिक जानकारी थी। हाड़ौती के प्रसिद्ध ऐतिहासिक महाकाव्यों में चौहान वंश की प्रशस्ति गाथा का वर्णन करने से मुख्य रस वीर रस तथा अंगी रस के रूप में अन्य रसों का प्रयोग किया गया है।

1. हाड़ौती के प्रसिद्ध ऐतिहासिक महाकाव्य सुर्जनचरित, हम्मीर, पृथ्वीराज विजय, रामविलास एवं शत्रुशल्यचरित महाकाव्य है। इन महाकाव्यों के प्रणेता सुर्जनचरित–चन्द्रशेखर, हम्मीर–नयचन्द्रसूरि, पृथ्वीराजविजय–जयानक, शत्रुशल्यचरित–महाकवि विश्वनाथ तथा रामविलास महाकाव्य–भवानीशंकर व्यास है।

2. इन सभी महाकाव्यों में चार प्रकाशित एवं एक रामविलास महाकाव्य अप्रकाशित है।

3. (i) पृथ्वीराजविजय महाकाव्य की रचना 12 वीं शताब्दी (A.D.)

(ii) हम्मीर महाकाव्य की रचना – 14 वीं शताब्दी

(iii) सुर्जनचरित महाकाव्य की रचना – 16 वीं शताब्दी

(iv) शत्रुशल्यचरित महाकाव्य की रचना – 17 वीं शताब्दी

(v) रामविलास महाकाव्य की रचना सम्भवतः 1890 से 1896 विक्रम संवत् के मध्य हुई थी।

4. (i) पृथ्वीराज विजय महाकाव्य – 12 सर्ग

(ii) हम्मीर महाकाव्य – 15 सर्ग

(iii) सुर्जनचरित – 20 सर्ग

(iv) शत्रुशल्यचरित – 22 सर्ग तथा

(v) रामविलास महाकाव्य – 25 सर्ग विद्यमान है।

5. साहित्य दर्पणकार विश्वनाथ के महाकाव्य के लक्षणों से हाड़ौती के सभी ऐतिहासिक महाकाव्य ओत–प्रोत हैं। शत्रुशल्यचरित महाकाव्य मे महाकवि ने 19 वें सर्ग में प्रकृति का अनुपम एवं सुरम्य चित्रण किया है। जिसका सुर्जनचरित महाकाव्य में अत्यन्त अभाव है।

6. शत्रुशल्यचरित महाकाव्य एवं सुर्जनचरित महाकाव्य के महाकवियों ने महाकाव्य के प्रारम्भ में चौहान वंश के वर्णन में समान भाव से स्वप्रौढ़ता प्रदर्शित की है –

विधुं ग्रहीतुं स्वकरेण तावत्

सिन्धुतरीतुञ्च भुजद्वयेन।

मेरूं समुल्लङ्घयितुञ्च पद्भ्यां

स्तोतुं व्यवस्यामि गिराऽर्कवंशम्।। शत्रु. 1/9

राज्ञामपारगुणसारधुरन्धराणां

वंशानहं कृशमतिप्रसरो विवक्षुः।

पद्वयामुदगगिरिशेखर मारूरूक्षोः

पंकोर्विवेकविकलः पदवी प्रपन्नः।। सुर्जन. 1/6

महाकवि विश्वनाथ और चन्द्रशेखर दोनों ही महाकवियों ने स्वयं को दुर्बल बुद्धि तथा अविवेकी मानते हुए अग्रगण्य चौहानवंश के राजाओं का वर्णन करने की इच्छा प्रकट की है तथा पंगु के समान गिरी शिखर पर चढ़ने की उपमा दी है।

7. महाकवि जयानक, नयचन्द्रसूरि एवं चन्द्रशेखर के अनुसार पूर्व में पौराणिक चाहुवान का उत्थान सूर्य से बताया गया है।

पृथ्वीराज विजय महाकाव्य ने सर्वप्रथम चाहुवानों का उदय सूर्य से होना बताया।

अथांशुभिः सूर्यमस्य चक्षुषः

स सूर्यकान्तादिव सूर्यमण्डलात्।

जवादवारोहदखण्डचण्डिमा –

वसुन्धरा सम्मुखमर्चिषांचयः ।। पृथ्वीराजविजय 2/9

सुर्जनचरित में भी चाहुवानों की उत्पति ब्राह्मणों के यज्ञ में सूर्यमण्डल से मानी जाती है न कि वशिष्ठ की अग्निकुण्ड से।

इत्थं वितन्वन् विधिवहितान

मुत्प्रेक्ष्य विध्नस्य पुरोऽवतारम्।

विधिर्विधित्सुः प्रतिकारमस्य

दिदेश दृष्टि दिवसाधिनाथे।। सुर्जन. 7/57

बिम्बादथाम्भोजवनस्य बन्धोः

स्वधाम सन्दोह निगूढहेहः।

अवातरद्वातरयेण कश्चित्

पुमान् पुरस्तात् परमेष्ठिनोऽस्य।। सुर्जन. 7/58

हम्मीर महाकाव्य के अनुसार भी चाहुवान को इस ब्राह्मण के हाथ से गिरे हुए पुष्कर तीर्थ में सूर्यमण्डल से अवतीर्ण होना बताया है। हम्मीर महाकाव्य में उत्पत्ति विषयक भिन्न कथा विद्यमान है।

अवातरन्मण्डलतोऽथ भासां पत्युः पुमानुदयतमण्डलाग्रः।

तत्राभिषिच्याश्वदसीयरक्षाविधौ व्यधादेष मखं सुखेन।। हम्मीर 1/16

पपात यत्पुष्करमत्र पाणेः ख्यातं ततः पुष्करतीर्थमेतत

यच्चातमागारथ चाहमानः पुमानतोऽख्ययिास चाहमानः।। हम्मीर 1/17

महाकवि विश्वनाथ का वर्णन प्रारम्भिक कवियों से भिन्न है यद्यपि इन्होंने भी पूर्ववर्ती कवियों के समान सभी चौहान एवं हाड़ा राजाओं को 'सूर्यवंशी' बताया है। यह प्रथम कवि थे जिन्होंने चाहुवानों का उद्गम ऋषि वशिष्ठ की यज्ञ–अग्नि से होना बताया है –

तस्मादकस्मादथविह्नकुण्डाद्ः –

कृतान्ततुण्डादिव चण्डरूपः।

चण्डांशुद्भासुरभूरिभासां

भीमः समूहो दूतमाविरासीत।। शत्रु. 1/20

अर्थात् तब अचानक ही वह्निकुण्ड से यमराज के तुण्डरूप चण्डरूप ज्वालाओं का समूह उठा, जैसे आग से सूर्य का गोला उठा हो, फिर भी महाकवि विश्वनाथ ने उन्हें कभी अग्निवंशी नहीं पुकारा और हमेशा सूर्यवंशी ही घोषित किया।

अन्य स्थानों पर उन्हें दिवसमणिकुल्यः (IV-72) दिनकृत्कुलसम्भवतः (VI-73) दिनेशवंश्यः (VIII-59) अर्थात् सूर्यवंशी बताया है निम्न श्लोक में राव नारायण हाड़ा सूर्य से उत्पन्न होना बताया है –

अभिधावदिभार्वसैनिकोद्धत धूलीभरदर्शनात्।

रविवंशजसैन्यपावकं पुरतः सोऽनुममेसमागतम्।। शत्रु. 6/91

महाकवि कहते है कि षट्पुर के शासक द्वारा धूल के धुएँ के उठने का ज्ञान होने पर जो कि हाथियों, युद्ध–घोड़ों एवं पैदल सैनिकों के दौडने से उठ रहा था, यह अनुमान लगा लिया कि हाड़ा नारायण दास जो कि सूर्यवंशी है कि सेना रूपी अग्नि ने उसकी राजधानी की ओर आक्रमण कर दिया है।

यहाँ चौहानों के उद्भव को लेकर मतभेद है न ही सभी राजपूत चाहे वो क्षत्रिय हो, हूण हो, गुर्जर और चाहे शक।

8. शत्रुशल्यचरित एवं सुर्जनचरित महाकाव्य में महाकवियों ने उस सूर्यवंशी चौहान को 'चतुर्बाहुमान' इस नाम से प्रसिद्ध किया। यह 'चतुर्बाहुमान नाम अपभ्रंश के कारण' चाहुवाण (चौहान) बन गया। जो ब्रह्मा जी के द्वारा इस पृथ्वी पर संरक्षित थे वे चतुर्बाहुमान् वंश कर्ता हुए।

दोर्दण्डकण्डून्मददुष्टभूप –

भरं भुवोहन्त निराकरिष्णून।

दोष्णः स बिभ्रच्चतुरोवतीर्णः

ख्यातोऽत्र तस्माद्भुवि चाहुवानः ।। शत्रु. 1/26

बाणासनं सज्यमसिं सशक्तिं

महेषुधी मार्गणपूगपूर्णो।

विभ्रच्चतुर्बाहुर वार्मवीर्यो

वधं विधास्यन् मखबाधकानाम्।। सुर्जन. 7/59

ध्रुवं चतुर्बाहुरिति प्रसिद्धः

स चाहुवाणः किल लौकिकक्त्या।

वंशस्य कर्ता भवतां बभूव

संरक्षितोऽधिक्षिति विश्वधात्रा।। सुर्जन. 7/60

9. शत्रुशल्यचरित महाकाव्य में चाहुवान वंश का वर्णन नयचन्दसूरि एवं चन्द्रशेखर महाकवियों के महाकाव्य के अनुसार सर्वथा भिन्न है। महाकवि विश्वनाथ ने चाहुवान राजा का पुत्र सामन्त सिंह बताया है जबकि सुर्जनचरित एवं हम्मीर महाकाव्य में सामन्त सिंह को वासुदेव दीक्षित का पौत्र एवं चन्द्रराज का प्रपौत्र बताया है।

जगत्त्रयस्याभयलग्न कोऽयं

वीरः प्रजा धर्मपथेषु युञ्जन्।

क्षात्रंपंर तेज इवाशु शूरं

सामन्तसंज्ञं सुषुवे तनूजम।। शत्रु. 1/45

सामन्तसिंहो नृपतिस्ततोऽभात्

मत्तारिदन्तावलवीरसिंहः।

यस्य प्रतापैर्जयतोऽरिचक्रं

बभूव भूषैव कृपाणदण्डः ।। हम्मीर 1/58

सामन्तसिंह इति तस्य सुतः प्रतीतः

सिंहासनं निजकुलोचितमारूरूक्षुः।

सामन्तवीरतरूणान् तरसारिपूणां

व्यद्रावमद् द्विपगणानिव दृप्तसिंहः।। सुर्जन. 1/24

10. वैदिक सम्प्रदाय के सामवेद में चौहानों को त्रिप्रवर एवं वत्सगौत्र को ब्राह्मण माना गया है। दशरथ शर्मा के मतानुसार वासुदेव जिनको दीक्षित वासुदेव के नाम से जाना जाता है एवं जिनको महाकवि जयानक, नयचन्दसूरि, चन्द्रशेखर, महाकवि विश्वनाथ एवं भवानीशंकर व्यास के द्वारा चौहान वंश का संस्थापक बताया गया है ; को छठी शताब्दी का बताया गया है। उनके 627 वि. स. / 570 A.D. सिक्के मिले है जिनमें पल्लवी शिलालेख पर लिखा गया– " Saf basutef bahamana sultana malka" (''साक वासुतेक बहामना सुल्तान मालका'') इसको डॉ0 भण्डारकर ने इस प्रकार पढ़ा है –" Chahamana and not bahamana." (चाहमना न कि बहामना)

दीक्षित वासुदेव उत्तर–पश्चिम सीमान्त प्रदेश के प्रथम अग्रणीय राजा थे जिसने वहाँ से जंगल प्रदेश की और पलायन किया एवं सपादलक्ष (Sapadalaksa) और शाकम्भरी क्षेत्र में अपना सामाज्य स्थापित किया।

Dr. Gopinath Sharma भी इस मत से सहमत है।

बिजौलिया शिलालेख में चौहानों का ब्राह्मणों के रूप में उल्लेख प्राप्त होता है।

भोलाशंकर व्यास के अनुसार डॉ. दशरथ शर्मा का मत सही है और चौहान वास्तव मे उत्तर–पश्चिमी अग्रणीय आर्यों के अग्रज बताए गए है। जो कि महान व्याकरण ज्ञाता पाणिनी ने बताया है।

ब्राह्मण–राजन्या : –

ऐसे ब्राह्मण जिन्होंने ब्राह्मण परम्परा को छोड़ दिया एवं उसके बाद एलेक्जेन्डर से युद्ध किया। उनका प्रथम पलायन राजस्थान में छठी या सातवीं शताब्दी दीक्षित वासुदेव के साथ हुआ जो कि पूर्व वैदिक ब्राह्मणों का अग्रज माना गया जिसे दीक्षित के नाम से जाना गया। महाकवि जयानक, नयचन्द्रसूरि एवं चन्द्रशेखर सभी ने उसे वासुदेव न कहकर दीक्षित वासुदेव कहा है और यह उपाधि उसके परिवार के लिए विशिष्ट अर्थ रखती है।

शत्रुशल्यचरित प्रारम्भिक चौहानों के कालचक्र को बताया है, इसमें कई नामों की उपेक्षा भी की गई है, यद्यपि एक पूर्ण सर्ग (द्वितीय सर्ग) वासुदेव दीक्षित, जो कि चौहान वंश का संस्थापक था, को समर्पित है। महाकवि विश्वनाथ ने न केवल उन्हें दीक्षित वासुदेव कहा है, बल्कि उनके त्यागों को भी दर्शाया है –

त्रिभुवनगतकीर्तिः सुन्दरोदरभूति –

वैरिवसितसुपर्वा ज्याकिरणकूरपूर्वा।

अनवरतवितीर्ण स्वर्णवर्षोऽतिपूर्ण

ऋतुमकृत स सम्राङ्दीक्षितोवासुदेवः।। शत्रु. 2/98

संस्थापक एवं धार्मिक राजा दीक्षित वासुदेव जिसकी प्रसिद्धि तीनों लोकों में है एवं जो उत्तम एवं अतिसुन्दराकृति वाला है, देवों को पूजने वाला है एवं बार–बार प्रत्यंचा चढ़ाने से जिसकी अँगुलियों में गाँठे हो गई है जो यज्ञ आदि में आहुति देता है और जो याचकों पर अनवरत सोने की वर्षा करता है।

प्रविततसुविताने जुह्वतां भव्यजुह्व

हविरतिरतमुच्चैऋत्विजां तत्र रेजे।

चरमसवनकालाधीत याज्यातुवाक्या –

ध्वनिरजनि सुरौधाकारणे चारूदूतः ।। शत्रु. 2/99

विशालयज्ञ अनुष्ठान में पुजारियों द्वारा अनवरत यज्ञाहुति के मंगलमय लकडी के चम्मच द्वारा उनका यश अत्यन्त विस्तारित हुआ। मुख्य पुरोहित द्वारा अन्तिम आहुतियों के समय पवित्र मन्त्रोच्चारण से उत्पन्न ध्वनि, जो देव समूह का अपना हिस्सा ग्रहण करने के लिए आमंत्रित कर एक सही सन्देशवाहक का कार्य कर रही थी।

शायद चौहानों के परम्परागत इतिहास के अनुसार यह राजा (दीक्षित वासुदेव) वैदिक परम्परा के अनुसार यज्ञ करवाता था, किन्तु दीक्षित की उपाधि

इनसे कहीं ज्यादा बताती है एवं उसे जन्म से ब्राह्मण यद्यपि कर्म से क्षत्रिय जैसा कि बप्पा रावल को गुहिल वंश में बताया गया है। यह वासुदेव दीक्षित नाम से चाहुवान इतिहास में प्रसिद्ध है।

हम्मीर महाकाव्य में भी महाकवि नयचन्द्रसूरि ने भी दीक्षित वासुदेव नाम से अभिहित किया है।

पराक्रमान्तजगन्क्रमेणाभवन्नृपो दीक्षित वासुदेवः।

शकासुराञ्जेतुमसावतीर्णः स्वयं धरायामिह वासुदेवः।। हम्मीर 1/27

सुर्जनचरित महाकाव्य में भी राजा वासुदेव को दीक्षित की उपाधि से विभूषित किया गया है।

चौहाणवंशभवभूमिपुरन्दराणा –

मादयो यथा तनुभुतां पुरूषः पुराणः।

ख्यातः क्षितावजनि दीक्षित वासुदेव –

नामा स्वधर्मसुमनीकृतवासुदेवः।। सुर्जन. 1/9

रामविलास महाकाव्य में भी चौहानों के पूर्व पुरूष का नाम चाहुवान बतलाया गया है। चौहानों के इतिहास में इसका दूसरा नाम अनलदेव तथा चण्डासि भी मिलता है। सम्भवतः यह वासुदेव ही है जिसका उल्लेख बिजौलिया के शिलालेख पृथ्वीराज विजय, हम्मीर काव्य तथा सुर्जनचरित में वासुदेव के नाम से प्रथित है।

11. महाकवि विश्वनाथ ने सर्वप्रथम स्वकाव्य में अस्थिपाल का वृतान्त प्रस्तुत किया है जो कि रावसुर्जन के दरबारी कवि चन्द्रशेखर के काव्य में अनुपस्थित है। टॉड ने इस उपाख्यान का प्रमाण दिया एवं 'इस्तपाल' को अनुराजा का पुत्र एवं विशालदेव का प्रपौत्र माना गया। जिसने महमूद गजनवी के विरूद्ध युद्ध लड़ा एवं आसीर को 1081 वि. स. में बन्दी बनाया। यह इस्तपाल या अस्थिपाल परम्परागत हाड़ा कवियों के अनुसार चौहान की

हाड़ा शाखा के संस्थापक थे किन्तु इतिहासकार इसे अस्वीकार करते है कि अस्थिपाल नाम का कोई चौहान राजकुमार था।

इस ऐतिहासिक वृतान्त के विषय में महाकवि विश्वनाथ का मत है कि राव सुर्जन के शासन के बाद राजकवियों द्वारा इसे परिवर्तित कर दिया गया चूंकि सुर्जनचरित में इसका उल्लेख नहीं है। किन्तु स्वीकार्य था जैसा कि सत्रहवीं शताब्दी के प्रथम अर्ध में स्थापित हुआ जिसमें बून्दी के राजपरिवार को दी गई हाड़ा उपाधि की व्याख्या की गई है।

महाकवि विश्वनाथ के उपाख्यान के अनुसार अस्थिपाल नाम जिससे हाड़ा शब्द की उत्पत्ति मानी गई, वास्तव में एक दैत्य का नाम था जिसे चन्द्रसेन के पुत्र ने मारा, जिसे देवी आशापुरा का आशीर्वाद प्राप्त था एवं देवी ने उसे (चन्द्रसेन के पुत्र को) अस्थिपाल का नाम दिया।

हत्वा दैत्यंघोरमात्मंभरिं त–

मङ्गीकुर्वन् ब्राह्मणाऽऽशीर्वचांसि।।

आशापूरां तां कुलस्यादिदेवीं

नत्वा प्रायात् स्वान् गृहाँश्चान्द्रसेनिः।। शत्रु. 3/41

आलिंगयाऽमुं भूपतिश्चन्द्रसेनो

विप्रौघेभ्यश्चाऽऽशु दत्वावसूनि।।

देव्या दतं तञ्च नाम्नाऽस्थिपालं

चक्रे पुत्रं सच्चरित्रं विचित्रम् ।। शत्रु. 3/42

इस प्रकार चौहान राजवंश को अस्थिपाल (हाड़ा) नाम से अभिहित किया गया। जिस तरह इक्ष्वांशु राजवंश को रघु के बाद उसके नाम से जाना जाता है।

इक्ष्वाकोरिव चाहुमाननृपतेर्भूमण्डलीमण्डनं

वंशोऽयं नृपमस्थिपालमवंधियावद्रदधाराभिधाम्।

एतस्मादनघाद्रघोरिव परं ये जज्ञिरे भूमिपा –

स्ते लोके विभराम्बभूवुरचिरादेतस्य नाम्ना प्रथाम्।। शत्रु. 3/47

डॉ. जे. एन. आसोपा के विचार से यहाँ अस्थिपाल या हाड़ा नाम का कोई राजकुमार नहीं था। हाड़ा शाखा हाड़ौती नामक राज्य से सम्बन्धित हो सकती है। इनके अनुसार हाड़ा शब्द एक आदिम जनजाति से सम्बन्धित है, ये दक्षिणी अरावली के पहाड़ी राज्य में रहते थे जिन्हें चौहानों की एक शाखा ने पराजित किया। जैसे हाड़ा गटाका राज्य था, जिससे हाड़ौती नाम प्रचलित हुआ, उसी प्रकार उन्होंने भी क्षेत्रीय नाम हाड़ा प्राप्त किया वहाँ से चौहानों की यह शाखा पहले उपरमाल और तब बून्दी आई। वर्तमान तक यह विवादास्पद विषय है। कुछ कहते है कि ये असीरगढ़ से भैंसरोडगढ आये, लेकिन दूसरे कहते है कि वे नाडौल से आए जबकि विचारपूर्वक पृथ्वीराज की तृतीय सन्तान माणिक्यराज अजमेर छोड़ चुके थे और मेनाल के आस पास के क्षेत्र में बस गए थे तब से ये बून्दी घाटी में आये।

फिर भी रेनसी से राव भावसिंह तक हाड़ाओं का समय निर्धारण सुर्जनचरित के स्थान पर शत्रुशल्यचरित महाकाव्य में ज्यादा सही पाया जाता है। जबकि बाद में माणिक्य राज की सन्तति से राव सुर्जन तक विवरण काव्य के 13वें सर्ग में कुछ लापरवाही से वर्णित है।

रामविलास महाकाव्य में भी अस्थिपाल नामक राजा का वर्णन किया गया है। इस महाकाव्य में मात्र ढाई वर्ष से कम उम्र में महाराव राजा रामसिंह के पिता विष्णु सिंह के राज्याभिषेक (1830 वि. स.) तक का चौहानों और विशेषतः हाड़ाओं के इतिहास का वर्णन है।

12. चाहुवानवंश के इतिहास के अनुसार माणिक्यराज सोमेश्वर के पुत्र पृथ्वीराज तृतीय के छोटे भ्राता थे।

असूयताऽसौ सुतनुस्तनूजौ

जयप्रभावाविव विक्रमर्द्धिः।

नृपस्तयोः पूर्वजमाह पृथ्वी –

राजं स माणिक्यमथानुसारजातम्।। सुर्जन. 10/7

पृथ्वीराजस्य तस्मैव सयो भ्राता जयत्यजः।

माणिक्यराजो मतिमाननंशेन बुभुजे महीम्।। सुर्जन. 13/2

पृथ्वीराज विजय महाकाव्य में पृथ्वीराज के छोटे भाई का नाम हरिराज बताया गया है माणिक्यराज नहीं।

महाकवि विश्वनाथ ने चाहुवान वंशोक्रम भिन्न बताया है इनके अनुसार माणिक्यराज अरिमंत्र नामक राजा का पुत्र था जिसने अद्भुत चरित्र वाले 10 पुत्रों को उत्पन्न किया।

माणिक्यराजः क्षितिपोऽरिमन्त्रात्

प्रादुर्बभूवाऽथ रणेषु धीरः।

उत्पाद्य पुत्रान् दश सोऽपि

चित्रानवीवहद्भूमिधुरामभीभि।। शत्रु. 1/56

13. शत्रुशल्यचरित एवं सुर्जनचरित दोनों ही महाकाव्यों में हाड़ाओं की देवी शाकम्भरी को बताया गया है।

शुम्भदिदैत्यदलनेन विजृम्भमाण –

शम्भुप्रमोदभर पल्लवित प्रभावाम्।

सम्भावितां नुतिभिरम्बुजसम्भवादयैः।

शाकम्भरी भगवतीमनिशं यजामः ।। सुर्जन. 1/3

यस्मिन्परं शौर्य (भरं दधाने)

शाकम्भरीभूः प्रबरीभरीति।

द्यां गोत्रभिन्नाथवतीं हसन्ती

सौभाग्यलक्ष्मीमतिशायिनींताम्।। शत्रु. 2/8

14. आशापुरा चौहानों की हाड़ौती शाखा में उत्पन्न क्षत्रियों की कुलदेवी है। यह बून्दी–कोटा राजाओं की कुलदेवता जिनका मन्दिर वहाँ राजकुल में है। सुर्जनचरित में महाकवि चन्द्रशेखर ने काव्य के प्रारम्भ में कुलदेवी का मंगलाचरण किया है।

यस्याः कृपालवसुधापरिशीलनेन

निर्मात्यशेषमगुणोऽपि पुमान् पुराणः।

वां मन्महे निगमसारगिरामुपास्या –

माशापुरांपुरूषकारखनि पुरारेः।। सुर्जन. 1/2

महाकवि विश्वनाथ ने भी आशापुरा देवी की वन्दना की है –

म्लेच्छक्षोणीपालसंवर्तकलकी

श्री गोपालो देवदुर्गगृहीत्वा।

(आसेरीं ?) संविश्य शंसन्नमन्द

माशापुरां तत्र देवीं ववन्दे।। शत्रु. 3/16

15. महाकवि चन्द्रशेखर ने स्वकाव्य सुर्जनचरित में बंगदेव को कोल्हन का पुत्र बताया है न कि प्रपौत्र और उसका नाम महाकाव्य में गंगदेव प्राप्त होता है।

गङ्गदेवोऽभवत्तस्य भुवं गोपायति स्म यः।

भ्रूभङ्गौद्धतदृक्पातैः क्लृप्रभंगो विरोधिनाम्।। सुर्जन. 13/12

महाकवि विश्वनाथ ने इस बंगदेव को विजयपाल नामक राजा का पुत्र बताया है और कोल्हन का प्रपौत्र। इन महाकाव्यों में चौहानों के बून्दी राजवंश के

संस्थापक देवीसिंह का विवरण महाकवि चन्द्रशेखर के सुर्जनचरित से अत्यधिक सटीक एवं विस्तृत रूप में प्रस्तुत किया गया है।

श्रीमतोविजयपालनृपालात्

कामपालसदृशोद्धतशीलात्।

आस् शासि (त) रिपुव्रजचक्रो

बंगदेव इति भूतलशक्रः।। शत्रु. 4/37

16. महाकवि विश्वनाथ ने शत्रुशल्यचरित में राजा सुर्जन की पत्नी कनकावती को राजा क्षितिपाल की पुत्री बताया है।

यथा–

अथैष शम्भोरिव नृव्यकेलि

विराजिचक्षुःप्रवसं चिरेण।

घनागमदयामिव चारूपीन –

पयोधरश्रीरूचिरां प्रकामम्।। शत्रु. 8/12

समुल्लसत्सद्वलिभङ्गरम्या

भुपेन्द्रलीलामिव द्विव्यरूपाम्।

सुवंशपालक्षितिपाल पुत्रीं

चकार पाणौकनकावतीं ताम्।। शत्रु. 8/13

जबकि सुर्जनचरित में कनकावती को ईडरराज जगमाल की पुत्री बताया गया है।

जगदुज्ज्वलेन जगमालभूभृता

वितरिष्यताथ कनकावतीं सुताम्।

प्रहितो हितोचितमतिः पुरोहितः

परिणेतुरर्जुनसुतस्य सन्निधौ।। सुर्जन. 14/1

17. महाकवि विश्वनाथ एवं चन्द्रशेखर दोनों ही महाकवियों ने स्वकाव्यों में राजा सुर्जन का वाराणसी में निवास करते हुए शिवोपासना एवं तारकमन्त्र के जाप एवं उसकी महिमा का वर्णन किया है –

युगविलयविराजमानाऽसमानाक्षकुण्ड –

प्रचण्डोल्लसज्ज्वालजालेऽनले लेलिहाने क्षणात् –

ज्जगदिदमखिलं वषट् कुर्वतः शर्व ते

पर्वतेशात्यजामर्धगात्रे निजे बिभ्रतः।

द्रुतमुपदिशतः सुखासारसंसारदुःसागरे

मज्जतः सज्जनस्योच्चकैस्तारकं ब्रह्म तत्

त्रिभुवनमहितं महादेव वन्दे सदा

वेदवृन्देन गीतं श्रितं नाकिभिः पादपङ्केरूहम।। शत्रु. 8/124

कालेऽथ तस्य चरमे परमात्मरूपं

रामाख्यतारकममुं जपतः स्वबुद्धया।

आगत्य कर्णकुहरान्तिकमन्धकारिः

प्रीत्या चकार पुनरूक्ततयोपदेशम्।। सुर्जन. 19/43

आख्यायकर्णपदवीमनुजन्मभाजां

मन्त्रं मृगांकमुकुटः किल तारकाख्यम्।

आश्चर्यमंत्र भगवान गुरूरप्यदम्भ –

मात्मानमन्तसदि सादरभर्पयेद् यत्।। सुर्जन. 19/14

18. वाराणसी में राजा सुर्जन ने याचकों को अत्यधिक स्वर्ण वितरण किया जो इतिहास प्रसिद्ध ग्रन्थों में अनुश्रुत एवं सुप्रसिद्ध है। उनके स्वर्ण तुलादान को भी जाना जाता है मन्दिर–घट–तालाब आदि के निर्माण में भी उस राजा की महिमा को माना जाता है सुर्जनचरित में चन्द्रशेखर ने भी वाराणसी में सुर्जन की महानता का विस्तार से वर्णन किया है। वहाँ तुलादान की भी विशेषता का वर्णन है –

यस्यानुवेलममितानि वनीयकेभ्यो

जाम्बूनदानि ददतो ववृते न तृप्तिः।

तेनार्पणाय वसु यन्निहितं तुलायां

तद्दानधर्मविहितस्थितिपालनाय।। सुर्जन. 19/42

महाकवि विश्वनाथ ने भी राजा सुर्जन के तुलादान की महिमा का वर्णन किया है।

अथ रराज नृपः स विभासुरः

परतमः शमयन् स्वकरौजसा।

अवनिवृष्टसुवर्णसुजीवनो

वरहितस्तुलयाऽपि तुलनाङ्गतः।। शत्रु. 8/138

19. शत्रुशल्यचरित, सुर्जनचरित, हम्मीर, पृथ्वीराज तथा रामविलास सभी महाकाव्यों का नामकरण नायक के नाम पर किया गया है तथा नायक का चरित्र विस्तृत रूप से वर्णन किया है रामविलास महाकाव्य में महाकवि ने रामसिंह के नाम पर काव्य लिखते हुए भी रामसिंह तथा उनके पिता विष्णु सिंह के शासन काल का वर्णन कर काव्य को सं. 1830 की घटना के साथ ही समाप्त कर दिया यद्यपि इस काव्य के अन्तिम सर्ग में वे कोटा राज्य का जो बून्दी राजवंश की ही शाखा रही है इतिहास स्वतन्त्र झालावाड़ राज्य के बनने की घटना वि. सं. 1895 (1838 ई.) तक वर्णन दिया है।

रामविलास महाकाव्य में बून्दी का इतिहास बीच में छोड़ा गया है जबकि कवि भवानीशंकर जी वि. सं. 1905 में दिवंगत हुए इनके पितामह द्वारा कहा गया है कि महाराव राजा रामसिंह से उनकी विमनस्कता बढ़ गई थी इसका संकेत इन्होंने उक्त शिलालेख के मंगलाचरण में व्यंग्य रूप में किया है –

ब्रह्माण्ड–भाण्डगचतुर्दशलोकलेश

मृत्पिण्डखण्ड समदैर्जगतीश्वरैः किम् ?

नेत्रापनीलननिमीलनक्लृप्तलुप्त –

ब्रह्माण्डकोटि–शिवमाश्रम वस्तुतत्वम्।

20. हाड़ौती के ऐतिहासिक महाकाव्यों की परम्परा में रामविलास महाकाव्य के अन्तर्गत प्रामाणिक ऐतिहासिक विवरण प्रस्तुत किया है एवं ऐतिहासिक प्रामाणिक तिथियों का भी यथास्थान उल्लेख किया है। जैसे – मीणों को परास्त कर बून्दी पर राव देवा के द्वारा हाड़ा राज्य की स्थापना तिथि इस प्रकार अंकित की है।

नागाङ्कभानुप्रमिताब्दराधमासे तृतीये च तिथौ।

नाग अर्थात् आठ, अंक अर्थात् नौ भानुप्रमितादब्द अर्थात् 12 इस प्रकार 1298 वि. स. में राधमास में अर्थात् वैशाख मास में शुक्ल पक्ष की तृतीया तिथि को हाड़ा राजाओं की बून्दी पर राज्य स्थापना हुई थी। इसी प्रकार इस महाकाव्य में बून्दी के प्रत्येक राजा के जन्म, उनके राज्यारोहण तथा दिवंगत होने की तिथियों का उल्लेख प्राप्त होता है।

21. रामविलास महाकाव्य के प्रणेता महाकवि भवानीशंकर जी ने इस महाकाव्य का महत्व इस प्रकार प्रतिपादित किया है। कवि चन्द्रशेखर गौड़ कृत सुर्जनचरित तथा महाकवि विश्वनाथ विरचित शत्रुशल्यचरित की अपेक्षा इतिहास को प्रस्तुत करने पर अधिक बल दिया गया है।
22. राजा सुर्जन एवं अकबर के मध्य हुए रणथम्भौर के युद्ध का चित्रण सुर्जनचरित एवं शत्रुशल्यचरित महाकाव्य ने किया गया है। रामविलास

महाकाव्य में युद्ध चित्रण के साथ–साथ सन्धि की शर्तों का उल्लेख भी किया गया है। इन शर्तों में एक शर्त यह भी थी कि राव सुर्जनसिंह को रणथम्भौर किले के बदले में काशी तथा चुनार का किला भी मिले। बादशाह अकबर ने शर्त मान ली।

23. रामविलास महाकाव्य में रावरतनसिंह के ज्येष्ठ पुत्र गोपीनाथ जो चन्देरिन ब्रह्माणी के प्रति आसक्त था उसे बहुत समझाया, परन्तु वह प्रेममार्ग से विचलित नहीं हुआ। एक दिन अवसर पाकर चन्देरिया ब्राह्मणों ने उसका वध कर दिया। राव रतन को इस घटना की सत्यता का ज्ञान था अतः उसने अपने पुत्र की गलती मान कर ही हत्या करने वाले ब्राह्मणों को क्षमा कर दिया, का वर्णन किया गया है।

महाकवि विश्वनाथ ने अपने महाकाव्य शत्रुशल्यचरित में इस घटना का उल्लेख नहीं किया है इसमें सिर्फ गोपीनाथ की मृत्यु को दर्शाया गया है।

24. महाकवि विश्वनाथ ने भारमल्ल के शासनकाल में पड़ा अकाल, बून्दी पर माँडु सुल्तान का आक्रमण और भारमल्ल की हत्या आदि का विस्तार से कवित्वमय वर्णन किया है जो कि निर्णीत ऐतिहासिक तथ्य है।

महाकवि चन्द्रशेखर ने इन तथ्यों को विस्मरण कर दिया कि बून्दी पर ग्यारह वर्ष 1492 – 1503 A.D. तक माँडु के मुस्लिम सुल्तान का शासन रहा था। बाद में उसके चाचाओं समरकन्दी व अमरकन्दी को मारने के बाद हाड़ा एवं नारायणदास ने बून्दी राज्य पुनः प्राप्त किया था। यही नहीं सुर्जनचरित इस ऐतिहासिक तथ्य के अतिरिक्त नारायणदास, उसके पुत्र सूरजमल व पौत्र सुरतन के नाम भी विस्मरित कर देता है और सीधे भारमल्ल से नर्बद, उसके पौत्र अर्जुन और उसके पौत्र सुर्जन का वर्णन करता है, जबकि नर्बदऔर अर्जुन कभी भी बून्दी के शासक नहीं थे। (ये नारायणदास के छोटे भाई और भतीजे होने के कारण मटुण्डा जागीर के सम्मानीय सरदार थे।)

कवि विश्वनाथ ने पाँचवें, छठें एवं सातवें सर्गों में ऐतिहासिक वृत्त का अनुसरण किया है। नारायणदास द्वारा समरकन्दी की हत्या से सम्बन्धित महाकवि ने सत्यता को परिपुष्ट किया हैं –

समरोपदं सकन्दकं किल, विध्यमतिं रहः स्थितम्।

अवधीदवधीरयंस्तदा धृतखड्गेन करेण वक्षसि।। शत्रु. 6/49

अथ तस्य कराम्बुजे लसन् स कृपाणस्तरसा विभद्यतम्।

वर शैलशिलां व्यदारयद्यवनश्रीकदलीवनीमिव।। शत्रु. 6/50

अभिप्राय यह है कि नारायणदास ने एकान्त में समरकन्दी को तलवार पकड़े हुए छाती में घूंसा मारा और विश्वासपूर्वक तिरस्कार करता हुआ उसे मार डाला। उसे काटते हुए कमलनाल पर कमल के समान नारायणदास के हाथ में तलवार चमकी, कठोर पर्वतीय चट्टान के टूकड़े–टूकड़े कर दिये, वृक्षवाटिका के सूख जाने के समान यवनों का ऐश्वर्य दुर्भाग्य में बदल दिया।

बून्दी के ऐतिहासिक नायक यशस्वी सम्राट नारायणदास का सुर्जनचरित में विस्मरण खेदजनक है। शत्रुशल्यचरित चितौड़ पर 1535 के बहादुरशाह जफर के आक्रमण का वर्णन करता है। जब नारायणदास के भतीजे और राव सुर्जन के पिता अर्जुन ने स्वयं किले की दीवार में विस्फोट किया था।

समुल्लसत्–सैन्यघटाप्रचण्ड ..... दिवं व्रजञ्जेतुमिव व्यलोकि।।

शत्रु. 8/43 – 44

राणा उदयसिंह का सहायक तुम्हारे पिता अर्जुन असिलता को हाथ में लिए हुए स्वर्ग की ओर विजय के लिए प्रस्थान करने वाले लोगों द्वारा दुर्ग की सबसे ऊँची चोटी पर खड़ा देखा गया। परन्तु जब बादलों को चूमने वाला महान चित्रकूट दुर्ग माँऊ के शक्तिशाली सुल्तान द्वारा बिछाई गई बारूद से उड़ा दिया गया तो उसकी सेना के समुदाय में खुशी छा गई। यहाँ इस आक्रमण के विषय में महाकाव्य में कुछ भ्रम है। विश्वनाथ ने माँडु के सुल्तान और चितौड़ के राणा उदयसिंह को आक्रमणकारी बताया गया है। वास्तव में आक्रमणकारी गुजरात का भारमल्ल और उस समय के चितौड़ के राजा विक्रमादित्य थे। यह आक्रमण मार्च 1535 A D VS 1592 A D को हुआ। यह उस समय की लड़ाई थी, जब राणा सांगा

की विधवा कर्मावती, जो कि विक्रमादित्य की माँ और नारायणदास की भतीजी व नर्बद की पुत्री थी, ने मुगल सम्राट हुमायुँ की सहायता के लिए मेवाड़ बुलाया था।

25. महाकवि चन्द्रशेखर सुर्जनचरित महाकाव्य में राव सुर्जन के सबसे छोटे बेटे हाड़ा दूदा द्वारा स्वयं के पिता व मुगल सम्राट अकबर के विरूद्ध किए गए विद्रोह का भी उल्लेख नहीं किया हैं। कवि ने सिर्फ छोटे बेटे भोज का वर्णन किया है और उद्देश्य पूर्वक दूदा के नाम को भी विस्मरण किया गया है। वह न अकबर के सामने रणथम्भौर के आत्मसमर्पण के पक्ष में था और न मुगलों के लिए बून्दी की सम्प्रभुता छोडने के पक्ष में। फलतः उसने बून्दी पर अधिकार किया और राणा प्रताप के साथ सम्बन्ध स्थापित कर बून्दी की स्वतन्त्रता घोषित की और आजीवन अकबर के खिलाफ लड़ता रहा। कुछ समय के उपरान्त अकबर ने दुर्योधन को मुगल दरबार में बुलाकर उससे सम्बन्ध स्थापित करने की कोशिश की।

महाकवि विश्वनाथ ने दूदा की बहुत प्रंशसा की और चित्रपूर्ण भाषा में अकबर की फौज के युद्धों का विस्तृत वर्णन सम्पूर्ण एक सर्ग में किया है।

रामविलास महाकाव्य में भी सुर्जन के पुत्र दूदा की वीरता का वर्णन महाकवि ने अत्यन्त विस्तार से किया है।

हाड़ौती के ऐतिहासिक महाकाव्यों की परम्परा में सभी महाकाव्य ऐतिहासिक तथ्यों को सत्यता एवं परिपुष्टता के साथ प्रदर्शित करते है शत्रुशल्यचरित महाकाव्य ऐतिहासिक तथ्यों को चित्रण करने में कुछ जल्दबाजी करता है। किन्तु राजस्थान की ऐतिहासिक गौरव–गाथा को बताने वाला यह एक अनुपम–काव्य है। विशेषतः काव्य का अन्तिम सीमांकन शत्रुशल्य के चरित्र एवं उसके व्यक्तित्व को समर्पित है। उसकी कर्तव्यपरायणता को बताना कवि का परम लक्ष्य है, किन्तु साथ ही सम्पूर्ण चौहान वंश की उत्पत्ति का वर्णन कर तद्वंशीय प्रतापी राजाओं का चित्रण करने में कवि ने अपनी काव्य प्रतिभा के साथ–साथ ऐतिहासिक दक्षता का भी प्रमाण उपस्थापित किया है।

.....********.....

द्वितीय अध्याय

ऐतिहासिक प्रधान महाकाव्यों में शत्रुशल्यचरित महाकाव्य का स्थान

संस्कृत साहित्य में महाकाव्यों की एक सुदीर्घ परम्परा रही है। इनमें कतिपय ऐतिहासिक व कतिपय पौराणिक महाकाव्य है। महाकाव्य व्यक्तिगत संपत्ति न होकर राष्ट्रीय धरोहर तथा विश्वनिधि होते है। यद्यपि महाकाव्य रचना का उद्देश्य स्वांतः सुखाय होता है तथापि जातीय गौरव, राष्ट्रीय गरिमा से परिपूर्ण तथा महान संदेश रूपी संजीवनी शक्ति से परिपूर्ण महाकाव्य ही शताब्दियों तक पाठकों का कण्ठहार बन पाते है। ऐतिहासिक महाकाव्य भी राष्ट्र की निधि है इतिहास प्रसिद्ध कथावस्तु की प्राचीनता से इन महाकाव्यों का विशेष महत्व है। ऐतिहासिक महाकाव्यों में तथ्यों की परिपुष्टि तथा इतिहास प्रसिद्ध राजाओं का चरित्र–चित्रण किया जाता है। शत्रुशल्यचरित महाकाव्य में भी चौहान वंश के उद्‌भव एवं पराक्रम का वर्णन किया गया है।

राजस्थान के राजवंशो एवं हाड़ौती के हाड़ा राजाओं से सम्बन्धित प्रमुख महाकाव्य निम्न है –

(1) अजितोदय महाकाव्य (2) अभयदयो महाकाव्य

(3) अमर काव्य (4) ईश्वरविलास महाकाव्य

(5) जयवंश महाकाव्य (6) कच्छवंश महाकाव्य

(7) मानवंश महाकाव्य (8) भीमप्रबन्ध महाकाव्य

(9) पृथ्वीराजविजय महाकाव्य (10) हम्मीर महाकाव्य

(11) सुर्जनचरित महाकाव्य (12) शत्रुशल्यचरित महाकाव्य

(13) रामविलास महाकाव्य (14) मूषकवंश

(15) जगडूचरित (16) मधुराविजय या वीरकम्परायचरित

(17) महाचोलराजीय (18) सलुवाभ्युदय

(19) विशाखविजय (20) शिवभारत महाकाव्य

(21) शम्भुराज चरितम्।

इतिहास प्रसिद्ध इन प्रधान महाकाव्यों का संक्षिप्त विवरण द्वितीय खण्ड के द्वितीय अध्याय ऐतिहासिक महाकाव्यों के स्वरूप में किया गया है। इन सभी महाकाव्यों में शत्रुशल्यचरित का विशेष स्थान है। हाड़ौती के प्रसिद्ध ऐतिहासिक महाकाव्यों में काल के आधार पर शत्रुशल्यचरित महाकाव्य चतुर्थ स्थान पर है। 17 वीं शताब्दी के इस महाकाव्य के प्रणेता महाकवि विश्वनाथ है। महाकवि ने इस महाकाव्य में सम्यक् रूप से तथ्यों का आकलन एवं विश्लेषण किया है।

महाकवि विश्वनाथ प्रणीत शत्रुशल्यचरित महाकाव्य एक विकसित कोटि (Epic of growth) कोटि का महाकाव्य है। यह ऐतिहासिक काल की रचना है। बाईस सर्गों में आबद्ध इस महाकाव्य में चौहान वंशोक्रम एवं राजा शत्रुशल्य की जीवनपर्यन्त कथा को महाकवि विश्वनाथ ने अत्यन्त मधुर एवं सरसशैली में अति कुशलतापूर्वक वर्णित कर मानस चित्त चंचरीक को आकृष्ट किया हैं। इस महाकाव्य में मुख्य भावना वीर रस की है। इसमें राजा अनल से भावसिंह की वीरता, प्रदर्शित की गई हैं तथा राजा शत्रुशल्य एवं नायिका श्यामा का नख–शिख सौन्दर्य वर्णन किया गया है। इस महाकाव्य में षट्ऋतु वर्णन तथा राजनीति आदि के वर्णन कौशल पूर्ण है।

इस महाकाव्य में महाकवि विश्वनाथ द्वारा ऐतिहासिक कथानक तथा कल्पना का सुन्दर मणिकांचन संयोग देखने को मिलता है। ''शत्रुशल्यचरित'' महाकाव्य के सम्बन्ध में सर्वप्रथम उल्लेखनीय एवं महत्वपूर्ण बात यह है कि –

यद्यपि वर्तमान तक अनेक महाकाव्यों का प्रणयन हो चुका है। जिनके चौहान वंशोक्रम के उद्‌भव एवं विकास का अनेक रसों में वर्णन किया गया है। किन्तु इस महाकाव्य की प्रमुख विशेषता यही है कि महाकवि स्वयं राजवैध होने के कारण सम्यक् रूप से चाहुवान वंशोक्रम का वर्णन ओजमय वीर रस में किया है। क्योंकि हाड़ौती के अब तक प्रकाशित महाकाव्यों में चौहान राजाओं के क्रम का भिन्न–भिन्न वर्णन किया है तथा उत्पत्ति सम्बन्धित मतों में विभन्नता से यह महाकाव्य महत्वपूर्ण स्थान रखता है। शत्रुशल्यचरित महाकाव्य वीररस से ओत–प्रोत हैं क्योंकि इसमें युद्ध–चित्रण विस्तार से हुआ है।

वैसे प्रायः श्रृंगार रस से ओत–प्रोत महाकाव्यों के ही दर्शन होते है। यह महाकाव्य वीर रस से युक्त है। वीर रस की निष्पत्ति तथा ऐतिहासिक घटनाओं का बड़ा ही मधुर सामजंस्य है। चाहुवान वंश के राजाओं द्वारा इतिहास के बदलते हुए हर पृष्ठ पर रक्तरंजित गाथाओं से युक्त यह महाकाव्य एक प्रतीक है।

वीर रस के प्रंसग में ओजगुण, श्रृंगार के प्रंसग में माधुर्यगुण को अपनाती हुई भाषा का जो मनोहारी रूप दिखलाई देता है वह काव्य स्वाभाविकता के अनुकूल है। जिस प्रकार शत्रुशल्यचरित के नायक शौर्य युक्त, पराक्रमी एवं साहसी है। उसी प्रकार यह महाकाव्य शैली, ओज, शक्तिमत्ता और गम्भीरता की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। आकार विषयवस्तु एवं वर्णन शैली की दृष्टि से यह महाकाव्य महत्वपूर्ण ऐतिहासिक ग्रन्थ है।

महाकाव्य के लक्षण–सर्गबद्धता, धीरोदात्त नायक, किसी एक प्रमुख रस का चित्रण ऐतिहासिक अथवा पौराणिक कथा आदि सर्व दृष्टि से भी यह महाकाव्य प्रमुख स्थान रखता है।

इस महाकाव्य में काव्य की आत्मा को पहचाना गया तथा उसको प्रधानता मिली है। यह महाकाव्य भावपक्ष के साथ ही कलापक्ष से भी समृद्ध है। तथा उसे सुन्दर उत्कृष्ट रूप में प्रस्तुत किया गया है।

कवि द्वारा काव्य में वर्णित विषयों का विश्लेषण भी काव्यीय पक्षों को पूर्ण करता है, कवि युद्ध दृश्यों के लिए चित्रपूर्ण दृष्टि रखता है, तीरों को छोड़ना,

बन्दूक तोपों का चलाना, प्रतिद्वन्दी राजाओं, योद्धाओं व सेनाओं का युद्ध के लिए प्रस्थान और प्रमुख रूप से शूरवीरता के कवित्वमय चित्रण से शत्रुशल्यचरित महाकाव्य हाड़ौती के ऐतिहासिक महाकाव्यों में प्रमुख स्थान रखता हैं। इसके अन्तर्गत नायक–नायिका शत्रुशल्य एवं श्यामा के मधुर सम्बन्धों को श्रृंगार रस में सौम्य रूप से प्रदर्शित किया गया हैं। यह महाकाव्य प्रातः एवं सांय के रमणीय प्राकृतिक वर्णन, चाँदनी रात, विभिन्न ऋतुएँ, तालाब, वृक्ष–वाटिका, और उद्यानादि का चित्रण प्रमुखता से करता है। यह महाकाव्य उच्च पाण्डित्य से परिपूर्ण है। महाकवि ने महाकाव्य में कहीं–कहीं दुर्बोध अर्थों व शब्दों की व्यवस्था करके संस्कृत व्याकरण पर भट्टि व माघ की तरह अपना अधिकार व्यक्त करके काव्य को प्रमुख बनाया है। कवि की अनुप्रासीय कथन शैली प्रवाहमय संगीतमय छन्द वास्तव में रेखांकित करने योग्य है। वे लम्बे लय तालयुक्त छन्दों की रचना करने में प्रवीण है। महाकवि ने प्राचीन व नवीन छन्दों के प्रयोग से महाकाव्य की ऐतिहासिक महाकाव्यों में महत्वपूर्ण छवि है।

''शत्रुशल्यचरित'' महाकाव्य में प्रत्येक सर्ग का नामकरण करते हुए महाकवि ने सार्थकता प्रकट की है।

महाकाव्य का विषय एवं उद्देश्य महान होते हैं तथा उसके द्वारा जीवन का सर्वांगीण चित्र प्रस्तुत किया जाता है। शत्रुशल्यचरित महाकाव्य भी चौहानों के सम्पूर्ण जीवन चरित्र एवं जातीय जीवन की विविध भावनाओं एवं आदर्शों को आत्मसात करके उच्च कोटि में परिणित है।

शत्रुशल्यचरित महाकाव्य नारिकेल फल के समान है जिसका बाह्य रूप देखने में कठोर तथा रूक्ष दिखाई देता है, परन्तु इसके गर्भ में स्वादिष्ट मधुर रस विद्यमान है।

इस प्रकार यह महाकाव्य साहित्यिक दृष्टि से जितना उपादेय है उतना ही ऐतिहासिक दृष्टि से भी इसका महत्व है। राजा अनल से भावसिंह तक के यथार्थ को ज्ञात करने के लिए संस्कृत का यह महाकाव्य नितान्त उपादेय है।

प्रायः सम्पूर्ण दृष्टि से यह महाकाव्य संस्कृत काव्य–साहित्य की अनुपम निधि है। इस महाकाव्य के भावपूर्ण छंद, अलंकारों की स्वाभाविकता, भाषा की भाव गरिमा, शब्दों का सुन्दर विन्यास, भावों का समुचित निर्वाह, कल्पना की समुचित उड़ान, प्रकृति के सजीव चित्रण, रसानुकूलता आदि सर्व दृष्टियों से महत्वपूर्ण स्थान रखता है।

इस प्रकार महाकाव्य का आद्योपान्त अध्ययन एवं अनुशीलन करने के उपरान्त यह कहना अनुचित न होगा कि सुगठित कथावस्तु की योजना मे ओजस्वी वातावरण की अवतारणा में वीर रस की अभिव्यंजना वैयक्तिकता से मण्डित पात्रों के चित्रण में 'शत्रुशल्यचरित' एक उच्चतम् महाकाव्य है। अतः सर्व दृष्टि से सभी हाड़ौती के ऐतिहासिक महाकव्यों में सर्वोच्च कृति है।

.....********.....

पंचम खण्ड

संस्कृत साहित्य को ''शत्रुशल्यचरित'' महाकाव्य की देन

संस्कृत वाङ्मय की प्राचीनता, उत्कृष्टता तथा व्यापकता सर्वजनमान्य है। पूर्व वैदिक काल से आज तक सुरभारती का अजस्त्र स्त्रोत निरन्तर प्रवाहमान है। भारतीय धर्म–दर्शन, सभ्यता–संस्कृति, साहित्य और कला की उत्पत्ति विकास और उन्नति का मूल आधार संस्कृत ही है। वैदिक साहित्य से लेकर आज तक संस्कृत भाषा में विशाल साहित्य का सर्जन हुआ है। सुरभारती के समुपासक–मनस्वी साहित्यकारों ने सारस्वत साधनों में सम्पूर्ण जीवन समर्पित करके अपने चिन्तन एवं मनन को रचनात्मक अभिव्यक्ति प्रदान की। देववाणी में रचित प्राचीन एवं अर्वाचीन साहित्य जन–जन तक पहुँच कर लोकहितार्थ उपयोगी सिद्ध हुआ हैं।

भारतीय संस्कृति की प्राणभूता संस्कृतभाषा का समग्र साहित्य हमारे स्वर्णिम इतिहास का गौरवमय दर्पण है। हमारे ऋषि–मुनियों एवं कवियों ने देववाणी में विशाल साहित्य का सर्जन किया। संस्कृत साहित्य सर्जन की यह परम्परा प्राचीन काल से आज तक निरन्तर अबाध गति से चली आ रही है।

''इतिहास–पुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेतं'' उक्ति विश्व विश्रुत है।[1] इस परिप्रेक्ष्य में महाकवि विश्वनाथ की महत्वपूर्ण रचना 'शत्रुशल्यचरित' हैं। जो शोध का विषय है, वस्तुतः यह राजस्थान प्रान्त के संस्कृत साहित्य के इतिहास की उल्लेखनीय कड़ी है। इसके अन्तर्गत महाकवि ने चौहान वंश का विस्तृत वर्णन किया है, जो आधुनिक संस्कृत साहित्य में ज्ञान का प्रसार करता है।

संस्कृत साहित्य में महाकवि विश्वनाथ विरचित 'शत्रुशल्यचरित' समीक्षात्मक दृष्टि से एक सम्पूर्ण महाकाव्य हैं। साहित्यदर्पणकार विश्वनाथ के महाकाव्य लक्षणों से यह काव्य परिपूर्ण है। ऐतिहासिकता को प्रदर्शित करता हुआ यह काव्य चौहान/चाहुवान वंशज राजाओं के इत्तिवृत को प्रस्तुत करता है। चौहान वंशीय राजाओं की विषय–वस्तु बनाकर महाकवि विश्वनाथ ने इस कृति को अपनी लेखनी से साहित्य निधि को देदीप्यमान मणि की भाँति प्रदान किया है। साहित्य जगत में 'शत्रुशल्यचरित' एक अद्वितीय महाकाव्य है, दो भागों (22 सर्गो) में यह काव्य साहित्यक विद्याओं से परिपूर्ण हैं। महाकवि ने इसकी विषय–वस्तु जितनी प्रभावपूर्ण निर्मित की है, उतनी ही भाषा शैली समृद्ध है। महाकाव्य में छन्द, अलंकार, रस, रीति, गुण आदि का प्रयोग महाकवि ने अत्यन्त प्रभावपूर्ण एवं विस्तृत रूप से वर्णन किया है। प्रकृति चित्रण में महाकवि सिद्ध–हस्त है, इन्होंने 19वें सर्ग में षड्ऋतु वर्णन कर, संस्कृत साहित्य में अपूर्व योगदान प्रदान किया है।

साहित्यिक दृष्टि से शत्रुशल्यचरित की विषय–वस्तु, ऐतिहासिक तथ्य, अत्यन्त उत्कृष्ट है। महाकवि विश्वनाथ की एकमात्र कृति 'शत्रुशल्यचरित' प्रतिभा का उत्कृष्ट निदर्शन है। यह महाकाव्य साहित्य जगत् को एक उपलब्धि है।

विषय वस्तु की दृष्टि से इस महाकाव्य में राजस्थान के इतिहास में प्रसिद्ध चौहान राजवंश का वर्णन है, जिन्होंने राजस्थान की देशी रियासतों या राज्यों में बहुत दिनों तक अपना प्रभाव बनाये रखा। शत्रुशल्य सूर्यवंशीय चौहान वंशो का एक ऐसा कुलदीपक हुआ, जिसका प्रभाव और कीर्ति तात्कालिक समाज में आदर के साथ स्वीकार की गई। यहाँ तक कि मुगल शासकों के साथ भी इन्होंने अपना

प्रभाव एक सशक्त एवं प्रभावी राजा के रूप में उपस्थापित किया। कवि स्वयं चौहानवंशीय राजाओं के राजवैद्य होने के कारण उनसे भलीभाँति परिचित रहा है। अतः उसकी यथार्थता के चित्रण को बड़ी बारीकी से लेखनीबद्ध करने का प्रयास किया है। प्रथम सर्ग के प्रारम्भ से लेकर 22 सर्गो तक चौहान वंश एवं शत्रुशल्य के पुत्र भावसिंह का वर्णन किया गया है। महाकवि ने राजा शत्रुशल्य को धीरोदात्त नायक के रूप में प्रस्तुत किया है। राजा शत्रुशल्य की पत्नी श्यामा भी एक प्रसिद्ध राजा की पुत्री थी। इस प्रकार महाकवि ने संस्कृत साहित्य में उत्कृष्ट कथावस्तु प्रदान की है। महाकवि ने अपनी अलौकिक प्रतिभा व कल्पना शक्ति से कथावस्तु को समुचित रूप प्रदान किया है।

महाकवि ने कथावस्तु में स्वाभाविक प्रवाह को बनाए रखा तथा कहीं–कहीं अत्यन्त विस्तृत वर्णन किया है, किन्तु वर्णनीय विषय की चारूता के कारण रसाभिव्यक्ति में आनन्दानुभुति का अनुभव होता है।

ऐतिहासिक महाकाव्य परम्परा में इस महाकाव्य ने संस्कृत साहित्य जगत को विशिष्ट तथ्य प्रदान किए हैं, जो अन्य महाकाव्यों में प्राप्त नहीं होतें हैं। महाकवि ने चौहान वंश की उत्पत्ति अग्नि से बताई है तथा चौहान वंशी राजाओं के शौर्य व पराक्रम का उत्कृष्ट वर्णन किया है। महाकवि ने युद्ध तथा वीर रस से युक्त काव्य को रोचक बना दिया है। युद्ध के वर्णन में व्याकरण के परिष्कृत शब्दों का प्रयोग कर कवि ने शब्दों एवं वाक्यों के लालित्य को और भी बढ़ा दिया है। जैसे– दण्डा–दण्डि, मुष्टामुष्टि, केशा–केशि अस्त्र इत्यादि प्रयोग के द्वारा उस छटा

को और भी सुन्दर बना दिया हैं। काव्य में युद्ध के सशक्त दृश्यों का वर्णन हैं, जिसमें हाड़ा वीरों के पराक्रम के चित्र अवलोकनीय हैं। कवि कहता है –

अमर्ष विषमान् प्रबलदीप्त ..... शत्रु. 4/69

अर्थात् तब राव देवसिंह दृष्टिगोचर हुए।

युद्ध के समय आदिवासी मेवों के खिलाफ धनुष के कारण भयंकर युद्ध में लड़ते हुए क्रोधित योद्धाओं से घिरे हुए प्रबल पराक्रम और युद्ध की तीव्र लालसा से विकराल हो रहे थे। मन में पीड़ा होने पर भी उनके मुख पर आनन्द की ज्योति थी। यहाँ पर राव रतन और खुर्रम की लड़ाई का सशक्त वाक्य–विन्यास के साथ एक अपूर्व दृश्य का चित्रण किया गया है। यथा –

सं स्फोटस्फायमानस्फुरद् ..... शत्रु. 11/133

मानों राव रतन और खुर्रम बाद के समय के दो बादल हो। वे सिंहो के समान ऊँची आवाज में दहाड़ते हुए शीघ्र आक्रमण कर रहे हैं। युद्ध का अनुसरण करते हुए वे दैदीप्यमान आश्चर्यकारी धनुषों को चढ़ाते हुए बहुत भंयकर लग रहे थे। वे एक–दूसरे पर आक्रमण करते हुए देदीप्यमान हथियारों की ज्वालाओं से ऐसे भंयकर लग रहे थे, जैसे बिजली गिर रही हो। यहाँ पर इस युद्ध में तोपों पर आग उगलने का वर्णन है, जो कि आगरा के पास बलोचपुर में अप्रैल 1622 A.D. में लड़ा गया था।

दोर्दण्डोद्दण्डकण्डूविकटभट ..... शत्रु. 11/135

अग्नि की ज्वालाएँ वीर योद्धाओं की कीर्ति के समान चमक रही थी। यह क्रोधित सैनिकों द्वारा बलपूर्वक जलाई गई थी। हृदय की संवेदनहीनता के कारण भुजदण्ड और भी ज्यादा भयंकर हो गये थे। दोनों सेनाओं के बीच का घमासान युद्ध इस प्रकार दिखाई पड़ा मानों चण्डी के पति शिव के ललाट का महाविनाशकारक तीसरा नेत्र खुल गया हो और सुव्यवस्थित ब्रह्माण्ड का अन्तिम विनाश हुआ हो। तोपों के धमाकों की ध्वनियों के लिए रूचिपूर्ण शब्दों के चयन पर विशेष ध्यान दिया गया है। इससे यह ज्ञात होता है कि महाकवि की समास युक्त शब्द चयन की क्षमता अद्वितीय है।

शब्द रचना एवं वाक्य विन्यास की दृष्टि से कवि का यह महाकाव्य संस्कृत साहित्य में अत्यन्त विशिष्ट स्थान प्राप्त है। नये–नये पदों एवं आलंकारिक शब्दों के प्रयोग में महाकवि सिद्धहस्त है। कवि का काव्य–विन्यास विशेष रूप में अनुप्रास और यमक की प्रस्तुति है, जिसका प्रत्यक्ष प्रयोग महाकाव्य के ग्यारहवें, बारहवें तथा पन्द्रहवें सर्ग में विशेष रूप से किया है।

कवि के रूपक अलंकार की कल्पना अत्यन्त विस्तृत है यहाँ पर रसायन – विज्ञान से उद्घृत उदाहरण दृष्टव्य है –

सुधाकर ..... यतोऽद्यरौप्यताम् ।। शत्रु. 16/27

अर्थात् अस्ताचल को जाते हुए सूर्य की किरणें पर्वत चोटियों को स्वर्णिम कर रही थी, लेकिन सूर्यास्त के बाद चाँदनी ने उसको चाँदी में बदल दिया था। कवि कल्पना करता है कि सायंकाल एक अकुशल रसायनशास्त्री है, जो असफल रूप से तांबे की पर्वत चोटियों को पारे में बदलने का प्रयत्न करता है। आशय यह

है कि इन्हें सोने में बदलना था, लेकिन स्वर्णिम रंग में परिवर्तन के बजाय यह एक क्षण के लिए चाँदी के सफेद रंग में बदलता है। काव्य में कारूणिक दृश्य भी प्रदर्शित किए गए है। राजा भारमल्ल के शासन काल में माडूँ द्वारा आक्रमण और इस पर अधिकार श्रम एवं करूणा से परिपूर्ण हैं।

वृन्दावती परिसरेऽश्रुतिमिश्रभिन्ना ..... शत्रु. 5/33

शाही घाड़ों का निवास विलासमय अस्तबलों में था, परन्तु उन्होंने खाना त्याग रखा था। उनके हृदय में कुछ चिन्तन था। वे एक लम्बे समय तक सूर्य की तरफ देखकर भयंकर ढंग से हिनहिनाकार नथुनों का फड़फड़ाते थे। इस उदाहरण से महाकवि विभिन्न स्थानों पर शब्दों की स्थिति इच्छानुसार ताल और छन्द के अनुसार चुनने में समर्थ है। समासशैली और समास रहित भाषा ढाँचा भाव के अनुरूप है। युद्ध–दृश्यों में गौडी शैली का प्रयोग किया गया है। भाषागत स्वरूप कवि की रचना कलात्मक प्रौढता दर्शाता है।

अनुप्रास, रूपक, उल्लेख आदि से अलंकृत सरल भाषा से सुसज्जित, सुकुमार शैली में प्रस्तुत अनुष्टुप, इन्द्रवज्रा, मालिनी आदि छन्दोबद्ध इस काव्य का कलापक्ष एवं वीररस को अंगीरस के रूप में प्रस्तुत कर 'शत्रुशल्यचरित' को महाकाव्य के रूप में प्रस्तुत करने का कवि का उद्देश्य पूर्ण रूप से सफल है।

शत्रुशल्यचरित महाकाव्य 'नायक' प्रधान महाकाव्य है। इस काव्य का नाम नायक के नाम पर आधारित है। नायक का नाम है 'शत्रुशल्य'। शत्रुशल्य के चरित का गान, उसका नख–शिख वर्णन, शौर्य, पराक्रम, वन–विहार, विवाह आदि का वर्णन तथा वीररस एवं श्रृंगार रस की स्थापना ही महाकाव्य का लक्ष्य है।

यह महाकाव्य एक साहित्यिक प्रमाणिकता की दृष्टि से भी परिपक्व कलाकृति है। इस महाकाव्य को आधुनिक संस्कृत काव्यों और मध्यकालीन भारतीय इतिहास के विद्वानों के समक्ष प्रस्तावित करना है। इस काव्य के द्वारा कवि का उद्देश्य केवल इतिहास का वर्णन करना ही नहीं है, अपितु सम्बन्धित राजाओं का गुणगान एवं कुशल काव्य रचना का प्रदर्शन करना हैं।

संक्षेपतः महाकवि विश्वनाथ द्वारा रचित 'शत्रुशल्यचरित' महाकाव्य संस्कृत साहित्य के उन्नयन में महत्वपूर्ण कृति है, जो ऐतिहासिक वृत्तों के साथ–साथ हमें उच्च साहित्य रचना की प्रेरणा प्रदान करती है।

.....********.....

1. राजस्थान के प्रमुख संस्कृत महाकाव्य –प्रो. प्रभाकर शास्त्री, राजस्थान संस्कृत अकादमी, जयपुर – 1998

उपसंहार

'साहित्य सागर' ज्ञान का वह गहन गम्भीर 'आकार' है, जिसका जितना अधिक मंथन किया जाये, उतने ही अनगिनत अमूल्य रत्नों की हमें प्राप्ति होती है। किसी भी राष्ट्र की उन्नत संस्कृति के पोषक तत्वों में उस राष्ट्र का समृद्ध साहित्य भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। संस्कृत भाषा और उसका विशाल साहित्य भारत के स्वर्णिम इतिहास का गौरवमय दर्पण है। संस्कृत भाषा में आदिकाल से ही विविध विषयों को लेकर सर्वजन–हिताय अमूल्य वाङ्मय का निर्माण हुआ है। इस 'साहित्य सृजन' के विभिन्न रूपों में ऐतिहासिक रूप को महत्वपूर्ण माना गया है। हाड़ौती के ऐतिहासिक महाकाव्यों में महाकवि विश्वनाथ विरचित शत्रुशल्यचरित श्रेष्ठ महाकाव्य है। इस महाकाव्य की ऐतिहासिक प्रामाणिकता सिद्ध करने के लिए महाकवि ने चौहान वंशी राजपूतों का इतिहास वर्णित किया हैं। यह वंश आधुनिक काल में हाड़ा वंश के नाम से कोटा, बूँदी आदि क्षेत्रों में प्रख्यात है। इस महाकाव्य की रचना 17 वीं शताब्दी में हुई है।

काव्यत्व की दृष्टि से यह महाकाव्य जितना प्रौढ़, मनोरम एवं विलक्षण है, ऐतिहासिक दृष्टि से भी उतना ही महत्वपूर्ण एवं उपादेय है। ''नैषधीयचरितम्'' को आदर्श मानकर महाकवि विश्वनाथ ने अपना यह महाकाव्य रचा था। नैषधीयचरितम् महाकाव्यनुसार ही इसमें नायक शत्रुशल्य एवं नायिका श्यामा के प्रेम प्रसंग तथा नायक शत्रुशल्य के जीवन–चरित्र का विस्तृत उल्लेख किया गया हैं, इसलिए इस महाकाव्य का नाम शत्रुशल्यचरित रखा गया है। महाकवि ने प्रारम्भ में चौहान वंश के अनेक तेजस्वी राजाओं का चित्रण किया हैं लेकिन महाकवि स्वयं राजवैद्य के रूप में राजा शत्रुशल्य के दरबार में थे इसलिए इन्होंने नायक के रूप में छत्रशाल का विस्तृत चित्रण किया गया है।

इस महाकाव्य में राजा शत्रुशल्य का चरित एकादश सर्ग के चौबिसवें (24) श्लोक से प्रारम्भ हुआ है, क्योंकि इस श्लोक में ही शत्रुशल्य के जन्म की चर्चा की गयी है।

इसके बाद इसके पितामह राव रतन के पराक्रम तथा 22 सर्गों तक शत्रुशल्य के सम्पूर्ण जीवन–चक्र का वृतान्त बताया गया है। इससे स्पष्ट है कि राजा शत्रुशल्य का चरित्र सम्पूर्ण महाकाव्य का प्रतिपाद्य विषय है। प्रारम्भिक 10 सर्गों में चौहान वंश के उद्भव एवं विकास का वर्णन किया गया है।

महाकवि ने 'शत्रुशल्यचरित' में प्रयुक्त किये प्रत्येक शब्द के सजीव एवं मनोहर व्यक्तित्व को मानो पूर्णतया हृदयंगम करके, मनोरम अर्थ को प्रकाशित करने के लिए उसका उचित सन्दर्भ में उचित ढंग से प्रयोग किया है, जिससे उन शब्दों का व्यक्तित्व अत्यन्त आकर्षक हो उठा है। शब्द के प्रयोग में इस प्रकार का वैशिष्ट्य ही उनको संस्कृत के कवियों में अग्रगण्य महाकवि की पदवी की प्राप्ति का अधिकारी बनाता है। अलंकार–संयोजन में अप्रतिम मार्मिकता, मौलिकता और रमणीयता विद्यमान है। वर्णन के प्रवाह में यह अलंकार स्वभावतः आविर्भूत एवं संयोजित होते चले गये हैं। काव्य के आत्मतत्व 'रस' भाव एवं ध्वनि के विविध तत्वों को यह 'अलंकार' और भी अधिक मनोरम एवं प्रभविष्णु बना देते हैं।

'शत्रुशल्यचरित' महाकाव्य के छन्दोविधान में विविधता एवं विषयानुरूपता दृष्टिगोचर होती है। जैसा कि तृतीय खण्ड के तृतीय अध्याय में महाकवि ने महाकाव्य में जिन छन्दों का प्रयोग किया है उनमें से कुछ छन्द सर्वथा अप्रचलित हैं एवं शेष प्रचलित छन्द हैं। इनकी भाषा में भी विषयानुरूपता एवं रसभावानुकूलता का गुण विद्यमान है। इनके द्वारा प्रयुक्त भाषा सरल, सुन्दर, प्रसन्न एवं गम्भीर है, किन्तु कुछ स्थलों पर लेशमात्र क्लिष्टता एवं दुरूहता भी प्राप्त होती है। विषय के अनुरूप भाषा कहीं 'माधुर्य', कहीं 'औज' तथा कहीं 'प्रसाद' गुण की व्यंजक है।[1]

महाकवि विश्वनाथ के 'शत्रुशल्यचरित' का आधार 'चौहानवंश का इतिवृत्ति में' 52 राजाओं का काव्यमय वर्णन किया है। इस इतिवृत्ति के माध्यम से लोकोत्तरवर्णननिपुण महाकवि विश्वनाथ ने जीवन एवं जगत् के पारमार्थिक तथ्यों को प्रत्यक्ष करके बड़ी कुशलता से उपर्युक्त इतिवृत्त में संयोजन कर दिया है। यह संयोजन वैविध्यपूर्ण एवं

अत्यन्त सुन्दर है। इसमें यथार्थ एवं आदर्श का मंजुल सामंजस्य हुआ है। फलतः ऐतिहासिक होते हुए भी यह महनीय काव्य शुष्क एवं नीरस नही हो पाया है और अपनी गम्भीरता, प्रसन्नता एवं सरसता के कारण सहृदयों को अपनी ओर आकर्षित करने में पूर्णतया समर्थ है।

काव्यशास्त्रीय परम्परा में महाकाव्य एवं ऐतिहासिक महाकाव्य में 'शत्रुशल्यचरित महाकाव्य का स्थान' प्रस्तुत शोध के 'द्वितीय खण्ड' में बताया गया है। शत्रुशल्यचरित महाकाव्य पूर्णरूपेण महाकाव्यत्व लक्षणों से युक्त है।[2] उपर्युक्त पारमार्थिक तत्वों के संयोजन के अतिरिक्त प्रसंगवश महाकवि ने अपने इस काव्य के 19 वें सर्ग में प्रकृति का विविध प्रकार से वर्णन किया है। महाकवि ने अपनी सूक्ष्म दृष्टि से प्रकृति के अद्भुत् रहस्यों को अत्यन्त सावधानी से हृदयंगम किया है। इन्होंने प्रकृति के बड़े ही संश्लिष्ट, सजीव एवं यर्थाथ चित्र प्रस्तुत किये हैं। मनुष्य और प्रकृति दोनों का मंजुल सम्पर्क तथा अद्भुत् एक रसता दिखाकर कवि ने प्रकृति के अन्दर मानव के प्रति सहानुभूतिपूर्ण स्वरूप का अत्यन्त प्रौढ चित्रण प्रस्तुत किया है।[3]

'शत्रुशल्यचरित' महाकाव्य, जैसा कि उपर्युक्त विवेचन से प्रतीत होता है, कि इसमें कलापक्ष की प्रौढ़ता है, तथापि प्रधानता भावपक्ष की ही है। रस की अभिव्यंजना में महाकवि विश्वनाथ अपूर्व हैं। इस महाकाव्य का अंगीरस 'वीर' है। इस रस के प्रायः सभी प्रकारों का बड़ा सुन्दर अभिव्यंजन प्रस्तुत महाकाव्य के अनेक सर्गों में हुआ है। अंगीरसों में रौद्र, वीर, भयानक, हास्य इत्यादि रस अभिव्यंजित हुए हैं, तथापि श्रृंगार रस के दोनों रूप– 'संयोग' एवं 'विप्रलम्भ' का अत्यन्त सुन्दर संयोजन हुआ है। 'रौद्र, भयानक एवं बीभत्स' रस तो युद्धवीर से स्वभावतः सम्बद्ध होते ही हैं, 'श्रृंगार, हास्य तथा शान्त' रस ने भी काव्य के प्रधान रस को परिपुष्टि करके और भी अधिक आस्वाद्य बना दिया हैं। इन रसों के अतिरिक्त इस महाकाव्य में भाव, भावोदय, भावशान्ति तथा भावसन्धि, इत्यादि के भी अनेक उदाहरण मिलते हैं। इसमें महाकवि विश्वनाथ रससिद्ध कवीश्वर प्रमाणित होते हैं। [4]

हाड़ौती के प्रसिद्ध ऐतिहासिक महाकाव्यों के तुलनात्मक अध्ययन से भी यह महाकाव्य पूर्ण रूपेण ऐतिहासिक एवं सटीक तथ्यों को परिपुष्ट करता है। ऐतिहासिक महाकाव्यों में 17वीं शताब्दी का यह महाकाव्य अपना चतुर्थ स्थान रखता है। इसका विस्तृत वर्णन प्रस्तुत शोध प्रबन्ध के चतुर्थ खण्ड में है। [5]

पंचम खण्ड में स्पष्ट किया है कि इस महाकाव्य में संस्कृत साहित्य जगत हेतु विशिष्ट तथ्य उपलब्ध होते हैं जो अन्य महाकाव्यों में अनुपलब्ध हैं।

संक्षेप में, 'शत्रुशल्यचरित' महाकाव्य की समस्त साहित्यिक विवेचना, इसको उत्तम कोटि का महाकाव्य सिद्ध करने में पूर्ण समर्थ तथा साहित्यिक सम्पदा से युक्त संस्कृत –साहित्य की अमूल्य निधि है, जिसकी मधुरिमा भावुकों के हृदय को सदैव लोकोत्तर आनन्द में निमग्न करती रहेगी।साहित्यिक पक्ष के समान ही इसका ऐतिहासिक पक्ष भी पर्याप्त महत्वपूर्ण है। महाकवि ने प्रारम्भिक 12 सर्गों में इतिहास प्रसिद्ध राजाओं का चित्रण किया है, तथा अपने आश्रयदाता राव शत्रुशल्य की कीर्ति को अक्षुण्ण बनाये रखने की भावना से उनके जीवन–चरित को रोचक–भाषा में प्रस्तुत किया हैं।

'कवि–कर्म' इतिहासकार के कर्म से सर्वथा विलक्षण होता है। यही कारण है कि महाकवि विश्वनाथ के काव्य में सतत् प्रवाह बनाये रखने के लिए इतिहास में पर्याप्त परिवर्तन एवं परिवर्धन भी किये हैं, जिससे काव्य नीरस एवं शुष्क न बनकर पर्याप्त मनोरम एवं हृदयावर्जक बना है। कहना नहीं होगा कि भारतीय–साहित्य–शास्त्र रसादि के संयोजन की दृष्टि से ऐतिहासिक इतिवृत्त में पर्याप्त परिवर्तन, संशोधन एवं परिवर्धन करने की अनुमति प्रदान करता है और इसमें किसी प्रकार से अनौचित्य नहीं मानता। [6] महाकवि विश्वनाथ ने चाहुवानों का उद्भव अग्नि से बताया है एवं अन्यत्र स्थानों पर सूर्यवंशी ही बताया है। अस्थिपाल की कथा अन्य ऐतिहासिक महाकाव्यों में उपलब्ध नहीं है।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध वर्तमान में भावी शोधार्थीयों को ऐतिहासिक चाहुवानों के उद्भव, राव शत्रुशल्य के जीवन चरित्र का ज्ञान कराने, हाड़ौती के ऐतिहासिक महाकाव्यों से तुलना में और आधुनिक संस्कृत साहित्य के लिए उपयोगी सिद्ध होगी।

.....********.....

1. 'शत्रुशल्यचरित', तृतीय खण्ड, पंचम अध्याय, पृ. 254–265
2. 'शत्रुशल्यचरित', द्वितीय खण्ड, तृतीय अध्याय, पृ. 133–152
3. 'शत्रुशल्यचरित', तृतीय खण्ड, षष्ठ अध्याय, पृ. 266–274
4. 'शत्रुशल्यचरित', तृतीय खण्ड, चतुर्थ अध्याय, पृ. 229–253
5. 'शत्रुशल्यचरित', चतुर्थ खण्ड, द्वितीय अध्याय, पृ. 295–299
6. ध्वन्यालोक – 3, 11 की वृत्ति

परिशिष्ट

[क] शाकम्भरी के चौहानों की वंशावली –

'शत्रुशल्यचरित' महाकाव्य के अनुसार –

अनल –सामन्त – महादेव – कुमार – बिन्दुसार – उदारहार – अशोक – शकाविदार – वीरसिंह – वरसिंहदेव – अरिमंत्र – माणिक्यराज – 10 पुत्र – लौहराज – वासुदेव दीक्षित – गोपाल– चन्द्रसेन – अस्थिपाल – चन्द्रराज – आर्तिहरण – रेणसी – कोल्हन – आशुपाल – विजयपाल – बंगदेव – देवसिंह – वीरसेन समरसिंह – नार्पनाम / नापजी – हम्मीर देव – वरसिंह – वैरचन्द्र – भारमल्ल – नारायणदास – सूर्यमल्ल / नर्बद – सुर्जन देव – दुर्योधन / भोजदेव – रत्नसिंह – गोपीनाथ – शत्रुशल्य – भावसिंह।

डॉ. दशरथ शर्मा के अनुसार –

वासुदेव – सामन्त – नरदेव / जयराज – विग्रहराज प्रथम – चन्द्रराज प्रथम – गोपेन्द्रराज अथवा गोपेन्द्रक – दुर्लभराज प्रथम – गोविन्दराज / गुवक प्रथम – चन्द्रराज द्वितीय – गुवक द्वितीय – चन्दनराज – वाक्पतिराज प्रथम – विन्धयराज – सिंहराज – लक्ष्मन / वत्सराज – विग्रहराज द्वितीय – दुर्लभराज द्वितीय – चन्द्रराज / गोविन्दराज – गोविन्दराज तृतीय – वाक्परितराज वीर्यराम – चामुण्डराज – सिंहट – दुर्लभराज तृतीय – विग्रहराज तृतीय – पृथ्वीराज प्रथम – अजयराज (जयदेव, सल्हण) – अर्नोरराज (आनक, अन्हल्लदेव) – जगद्देव – विग्रहराज चतुर्थ – देवदत्त

↓ ↓

पृथ्वीराज द्वितीय अपर गंगेय

सोमेश्वर – गोविन्दराज चतुर्थ

पृथ्वीराज तृतीय / हरिराज

'सुर्जनचरित' महाकाव्य के अनुसार –

वासुदेव – नरदेव – श्रीचन्द्र – अजयपाल – जयराज – सामन्त सिंह – गुर्वक – चन्दन – ब्रज – विश्वपति – हरिराज – सिंहराज – भीमदेव – विग्रहदेव – गुन्ददेव – वल्लभ – रामनाथ – चामुण्ड – दुर्लभराय – दुसलदेव – बीसलदेव –पृथ्वीराज – वल्हण – अनलदेव – जगदेव – बीसलदेव द्वितीय – अजयपाल द्वितीय – गंगदेन – सोमेश्वर –

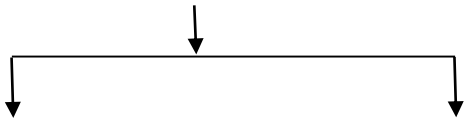

पृथ्वीराज माणिक्यराज

शाकम्भरी के चौहान –

1. वासुदेव

2. सामन्त

3. पुरन्तला

4. जयराज

5. विग्रहराज प्रथम

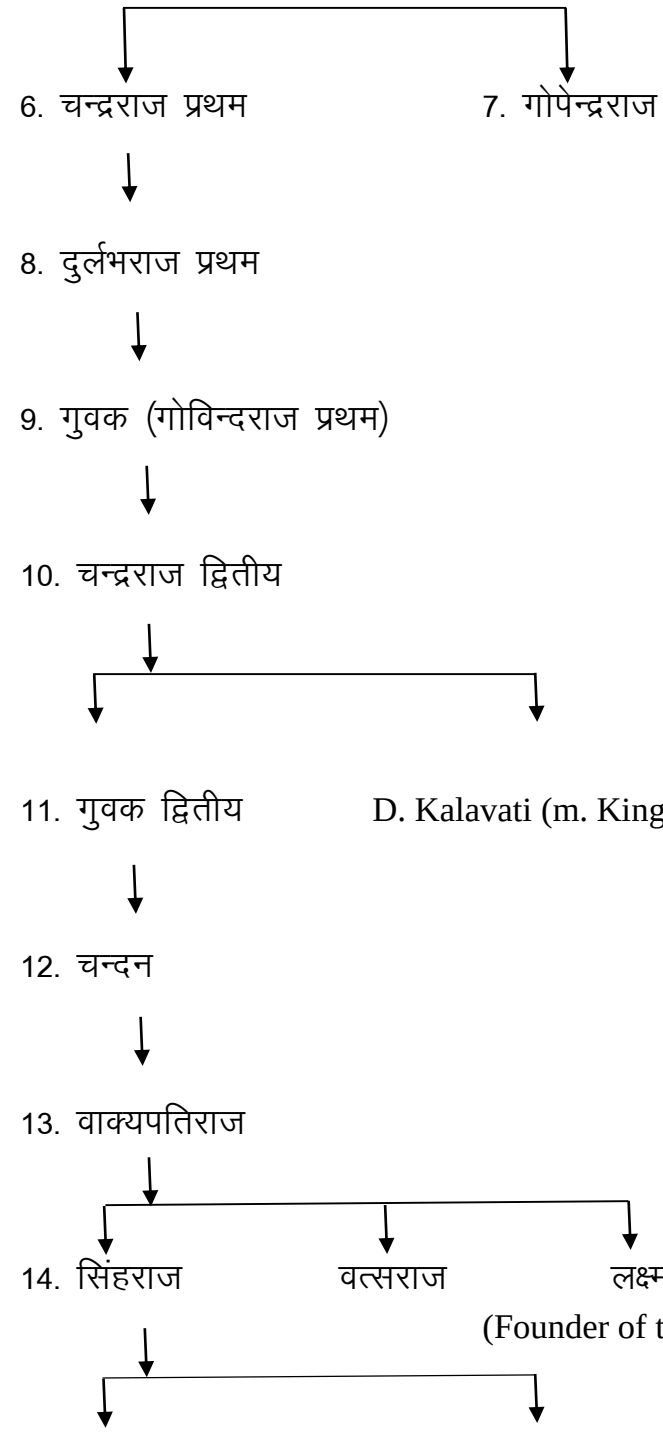

– The Age of Imperial Kannauj, P. 525-526

शाकम्भरी तथा अजमेर का चौहान –

1. वासुदेव

2. सामन्त

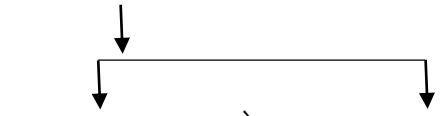

3. नृप अथवा नरदेव 4. जयराज

5. विग्रहराज प्रथम

6. चन्दनराज प्रथम

7. गोपेन्द्रराज अथवा गोपेन्द्रक

8. गोविन्दराज अथवा गुवक प्रथम

9. दुर्लभराज प्रथम

10. गोविन्दराज द्वितीय अथवा गुवक द्वितीय

11. चन्दनराज द्वितीय

12. वाक्पतिराज प्रथम (वप्पयराज)

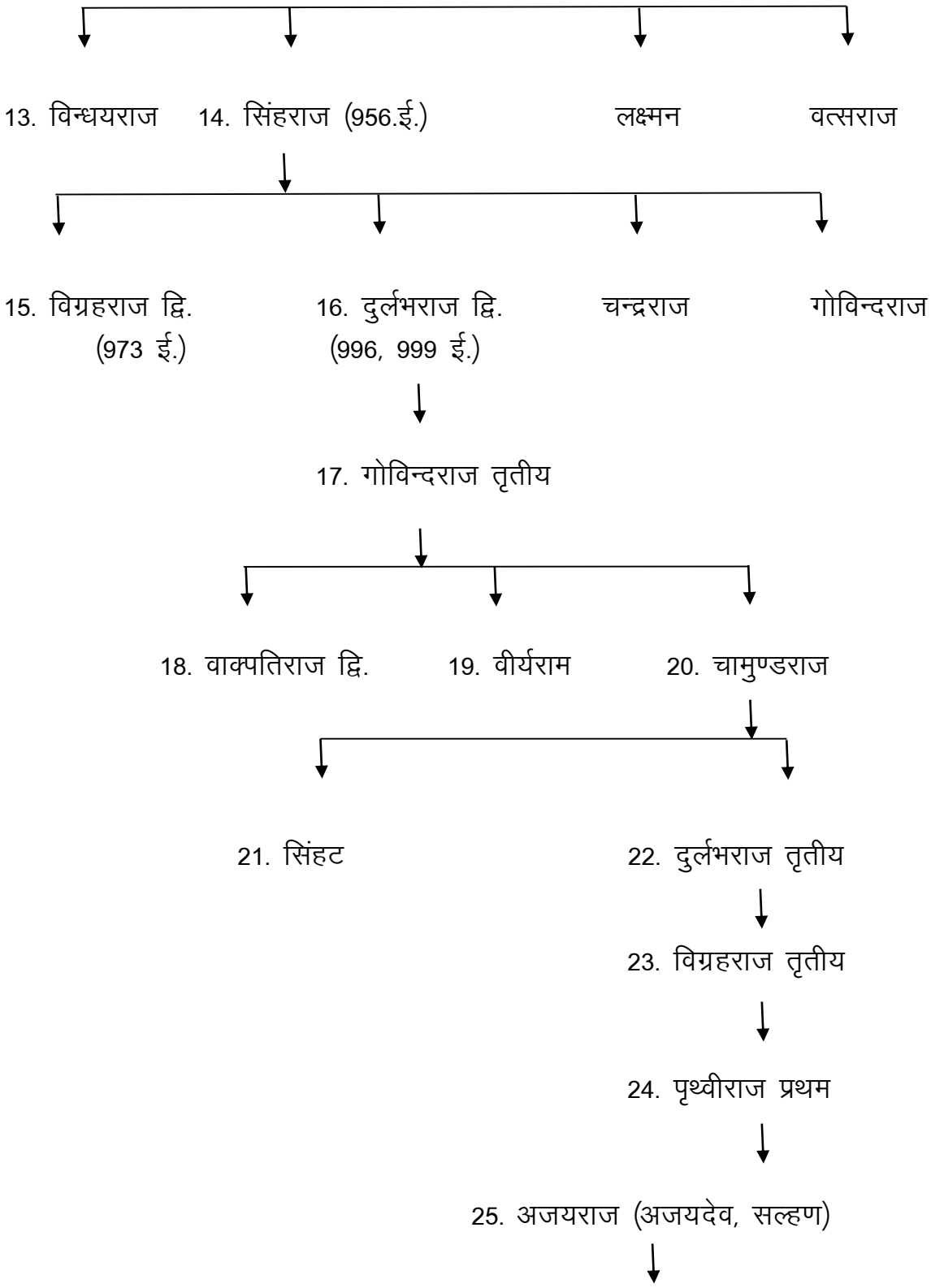
13. विन्धयराज
14. सिंहराज (956.ई.)
लक्ष्मन
वत्सराज
15. विग्रहराज द्वि. (973 ई.)
16. दुर्लभराज द्वि. (996, 999 ई.)
चन्द्रराज
गोविन्दराज
17. गोविन्दराज तृतीय
18. वाक्पतिराज द्वि.
19. वीर्यराम
20. चामुण्डराज
21. सिंहट
22. दुर्लभराज तृतीय
23. विग्रहराज तृतीय
24. पृथ्वीराज प्रथम
25. अजयराज (अजयदेव, सल्हण)

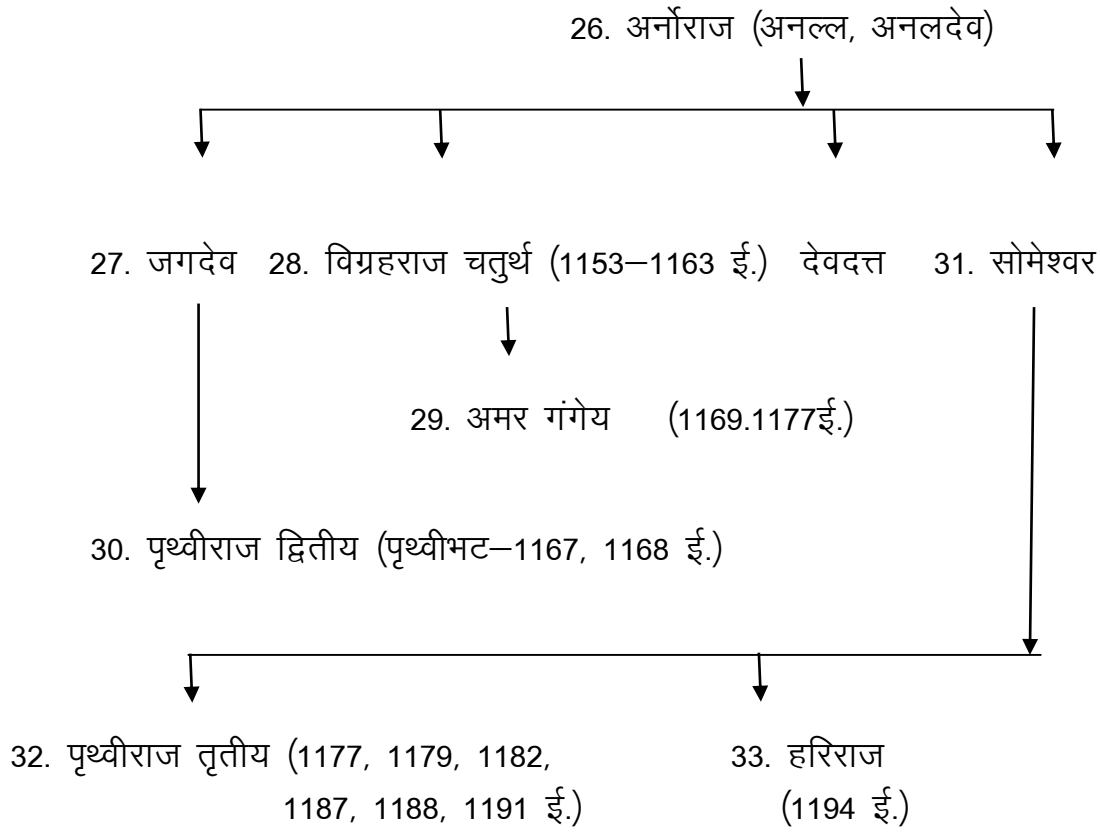

- Rajasthan Through the Ages, p. 545, 546

डॉ. दशरथ शर्मा के अनुसार –

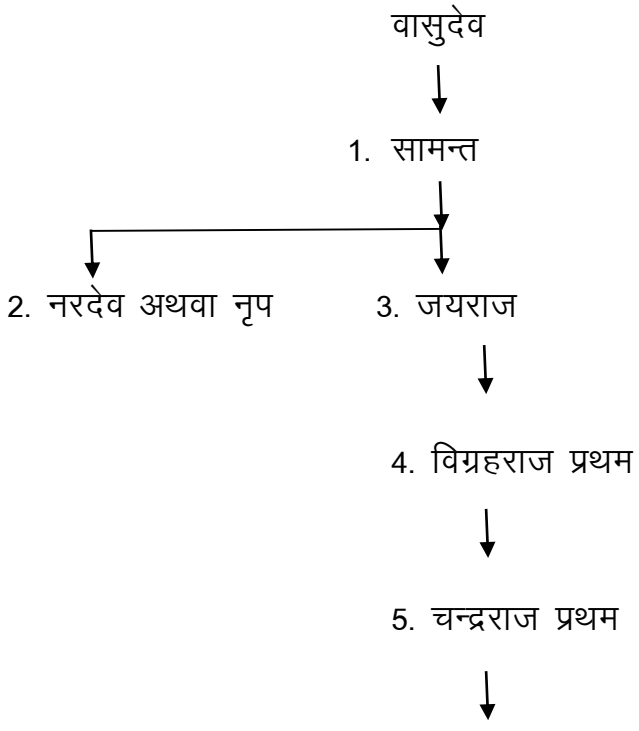

6. गोपेन्द्रराज अथवा गोपेन्द्रक

↓

7. दुर्लभराज प्रथम

↓

8. गोविन्दराज अथवा गुवक प्रथम

↓

9. चन्द्रराज द्वितीय

↓

10. गुवक द्वितीय (गोविन्दराज द्वितीय)

↓

11. चन्दनराज

↓

12. वाक्यपतिराज प्रथम (चप्प्यराज)

↓

13. विन्ध्यराज | 14. सिंहराज | लक्ष्मन | वत्सराज

↓

15. विग्रहराज द्वि. | 16. दुर्लभराज द्वि. | चन्द्रराज | गोविन्दराज

↓

17. गोविन्दराज तृतीय

↓

18. वाक्यपतिराज | 19. वीर्यराज | 20. चामुण्डराज

↓

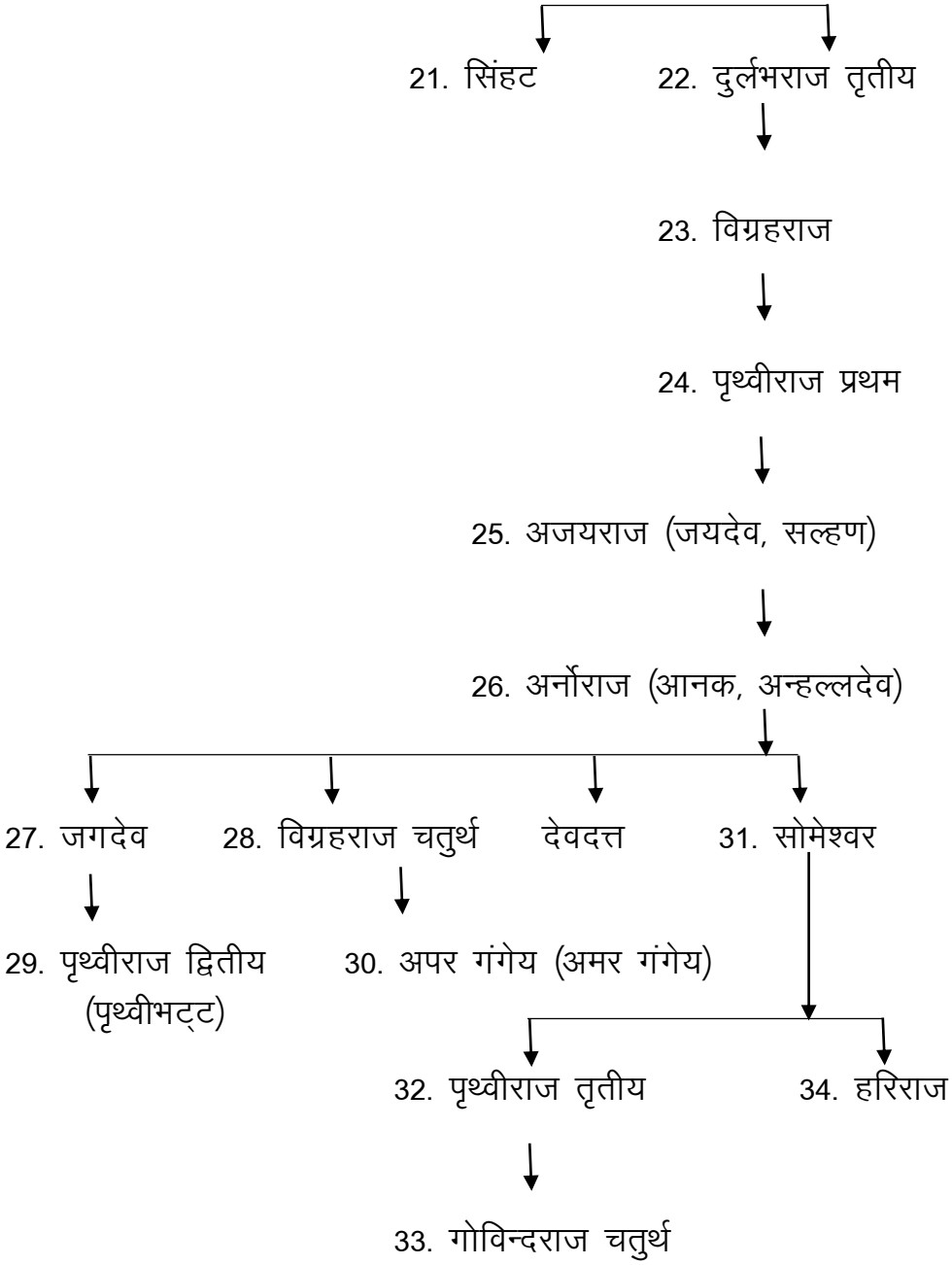

- Early Chauhan Dynesties, P. 330, 331

डॉ. आर. बी. सिंह के अनुसार –

वासुदेव (551 ई.)

सामन्तराज (684–709)

↓

नरदेव (पुरन्तला) (709–21 ई.)

↓

अजयराज अथवा जयराज (721–34 ई.)

↓

विग्रहराज प्रथम (734–59 ई.)

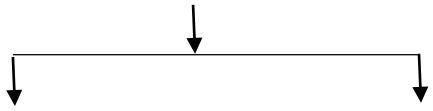

चन्द्रराज प्रथम (759–71 ई.) गोपेन्द्रराज (771–84 ई.)

– दुर्लभराज प्रथम (784–809 ई.) – गुवक प्रथम (809–36 ई.) – चन्द्रराज द्वितीय (836–63 ई.) –गुवक द्वितीय (863–90 ई.) – चन्दनराज (890–917 ई.) – वाक्पतिराज प्रथम (917–944 ई.) – सिंहराज (944–71 ई.) – विग्रहराज द्वितीय (971–998 ई.) – दुर्लभराज द्वितीय (998–1012 ई.) – गोविन्दराज द्वितीय (1012–26 ई.) – वाक्पतिराज द्वितीय (1026–40 ई.) – वीर्यराम (1040 ई.) – चामुण्डराज (1040–65 ई.) – दुर्लभराज तृतीय (1065–70 ई.) – विग्रहराज तृतीय (1070–90 ई.) – पृथ्वीराज प्रथम (1090–1110 ई.) – अजयराज द्वितीय (1110–35 ई.) – अर्नोराज (1135–50 ई.) – विग्रहराज चतुर्थ (1164–64 ई.) – अमरगंगेय (1164–65 ई.) – पृथ्वीराज द्वितीय (1165 ई.) – सोमेश्वर (1169–78 ई.) – पृथ्वीराज तृतीय (1178–92 ई.)

- The History of Chahamanas, P. 82-160

'पृथ्वीराज' के अनुसार –

चाहमान

↓

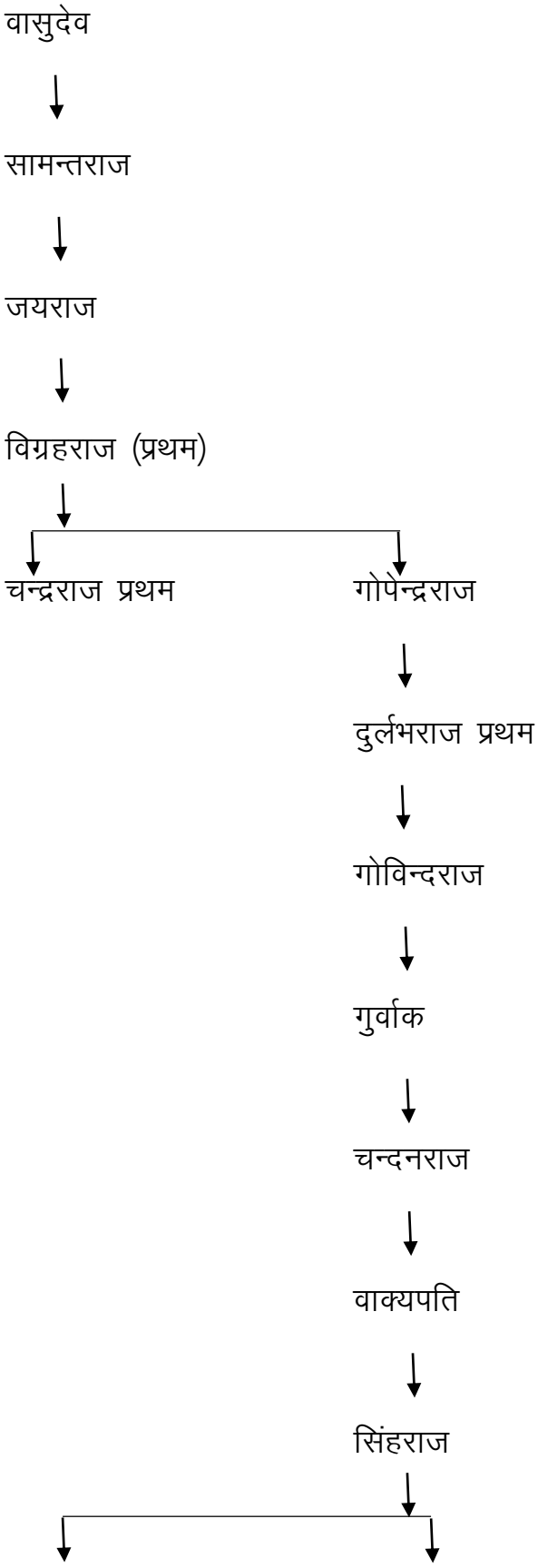
वासुदेव
सामन्तराज
जयराज
विग्रहराज (प्रथम)
चन्द्रराज प्रथम
गोपेन्द्रराज
दुर्लभराज प्रथम
गोविन्दराज
गुर्वाक
चन्दनराज
वाक्यपति
सिंहराज

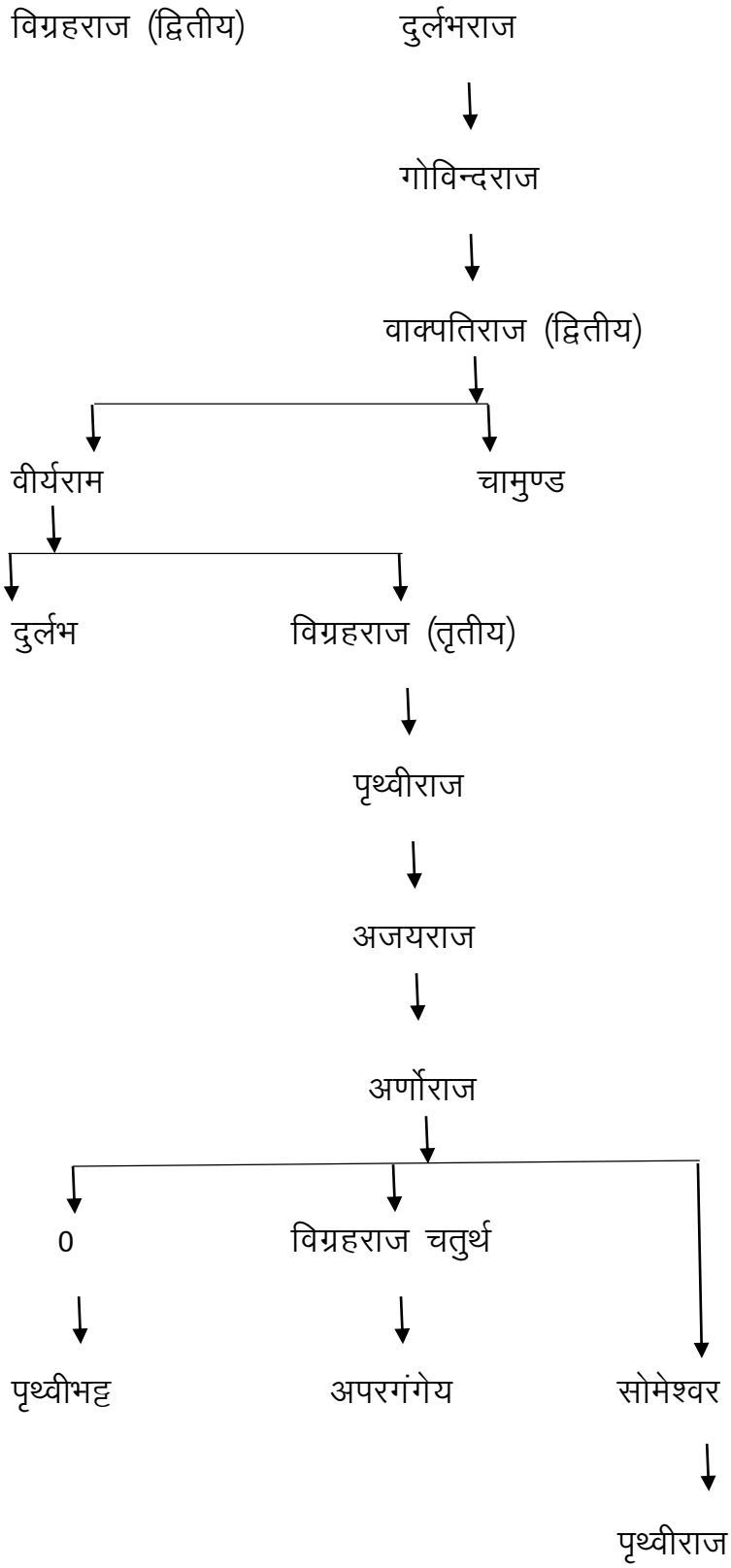

—माताप्रसाद गुप्त, रासो सहित्य विमर्श, पृ. 134—36

एच. सी. रे. के अनुसार –

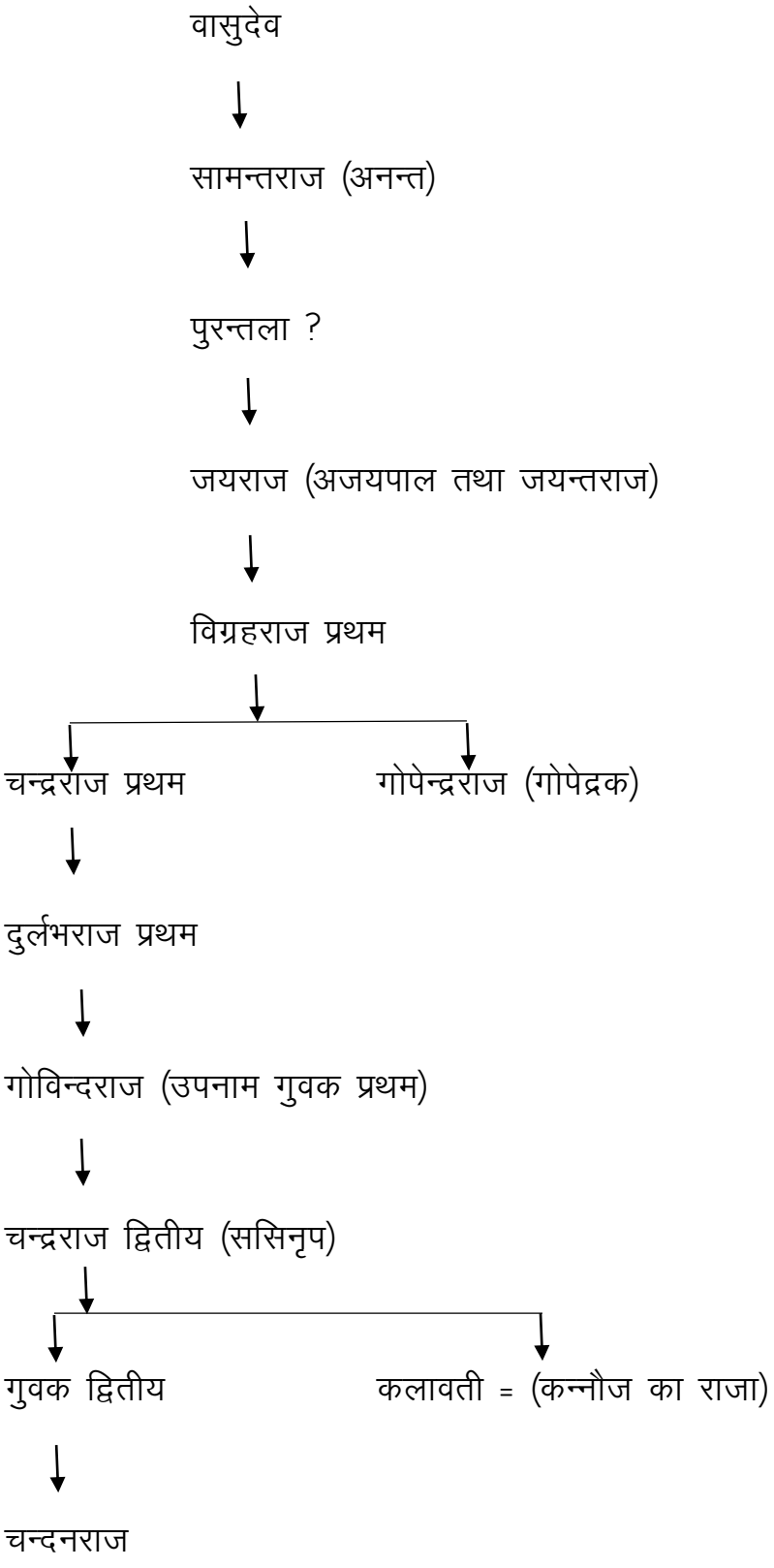
वासुदेव
सामन्तराज (अनन्त)
पुरन्तला ?
जयराज (अजयपाल तथा जयन्तराज)
विग्रहराज प्रथम
चन्द्रराज प्रथम
गोपेन्द्रराज (गोपेद्रक)
दुर्लभराज प्रथम
गोविन्दराज (उपनाम गुवक प्रथम)
चन्द्रराज द्वितीय (ससिनृप)
गुवक द्वितीय
कलावती = (कन्नौज का राजा)
चन्दनराज

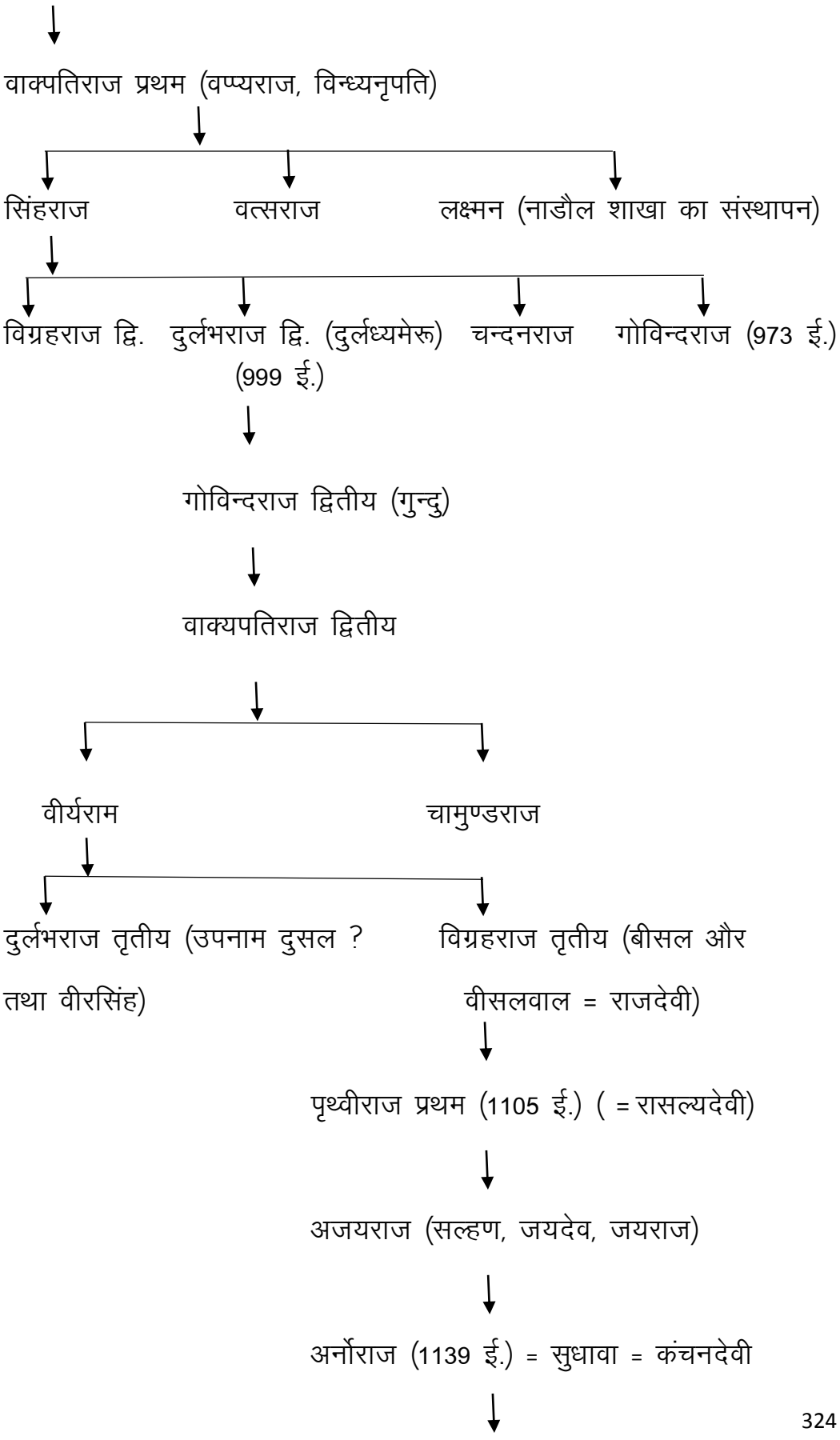
वाक्पतिराज प्रथम (वप्पयराज, विन्ध्यनृपति)
सिंहराज
वत्सराज
लक्ष्मन (नाडौल शाखा का संस्थापन)
विग्रहराज द्वि.
दुर्लभराज द्वि. (दुर्लध्यमेरू) (999 ई.)
चन्दनराज
गोविन्दराज (973 ई.)
गोविन्दराज द्वितीय (गुन्दु)
वाक्यपतिराज द्वितीय
वीर्यराम
चामुण्डराज
दुर्लभराज तृतीय (उपनाम दुसल ? तथा वीरसिंह)
विग्रहराज तृतीय (बीसल और वीसलवाल = राजदेवी)
पृथ्वीराज प्रथम (1105 ई.) (= रासल्यदेवी)
अजयराज (सल्हण, जयदेव, जयराज)
अर्नोराज (1139 ई.) = सुधावा = कंचनदेवी

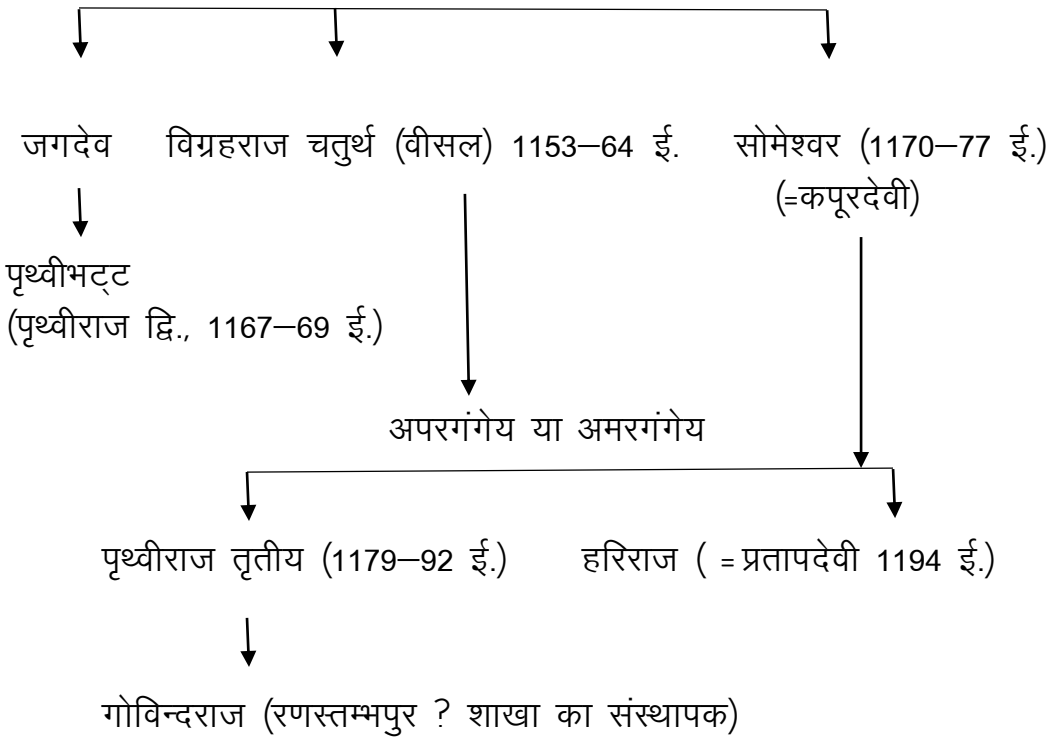

- The Dynemics History of Northern India, P. 1137, 38

(ख) रणस्तम्भुर के चौहानों की वंशावली –

[सुर्जनचरित महाकाव्य के अनुसार]

प्रहलाद

↓

गोविन्दराज

↓

वीरनारायण

↓

वाग्भट्ट

↓

जैत्रसिंह

↓

हम्मीरदेव

एच. सी. रे. के अनुसार –

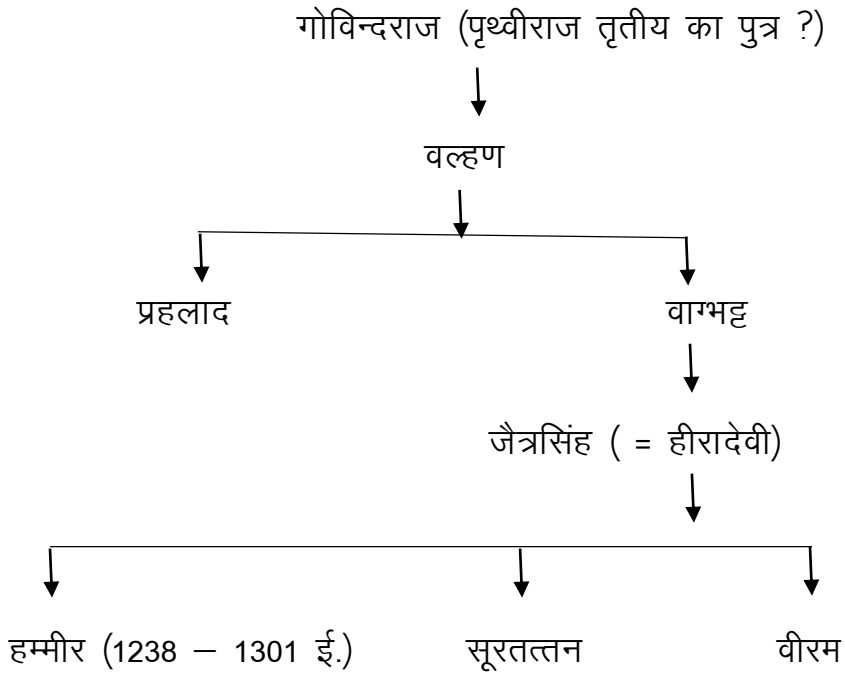

- The Dynemics History of Northern India, P. 1138

डॉ. दशरथ शर्मा के अनुसार –

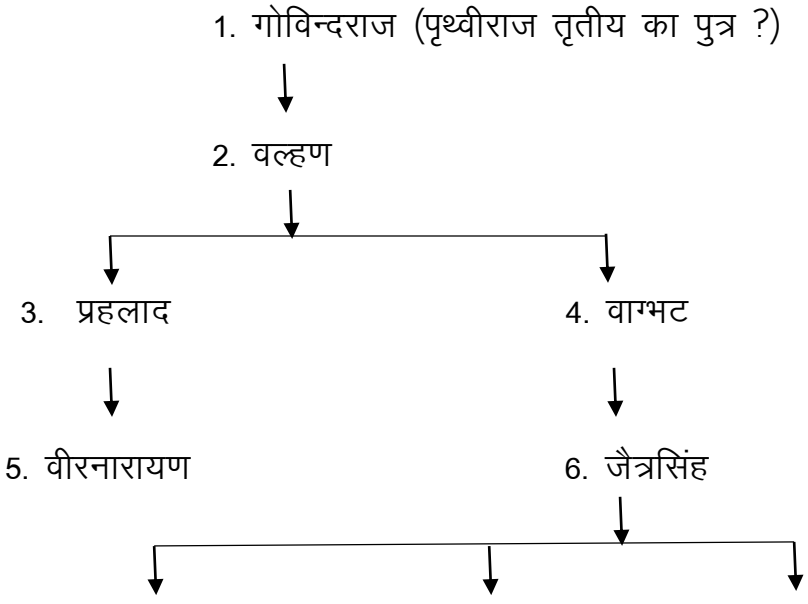

Unknown eldest brother 7. हम्मीर सूरत्तन वीरम

- Early Chauhan Dynesties, P. 332

रणस्तम्भ्पुर के अनुसार –

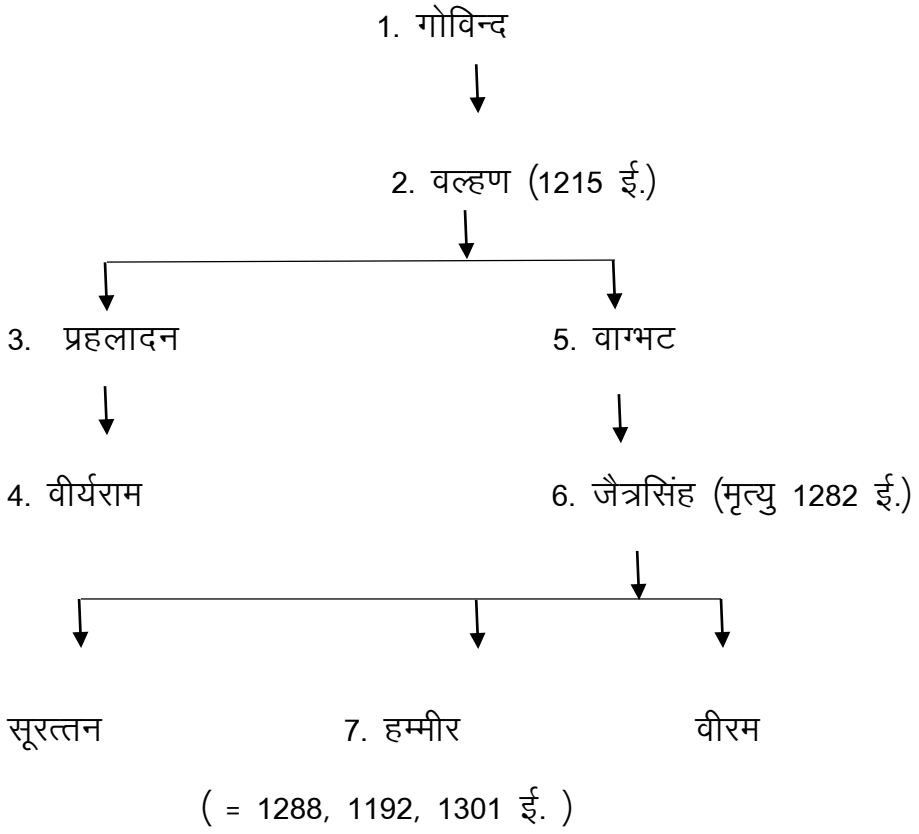

- Rajasthan Through the Ages, P. 752

[ग] कोटा–बून्दी के चौहानों के वंशावली

'सुर्जनचरित' के अनुसार –

माणिक्यराज – चण्डराज – भीमदेव – विजयराज – रयण – कौहलण – गंगदेव – देवसिंह – समरसिंह – नरपाल (नापाजी) – हम्मीर (हामाजी) – वरसिंह – भारमल्ल – नर्मद – अर्जुन – रावसुर्जन – भोजदेव

टॉड के अनुसार –

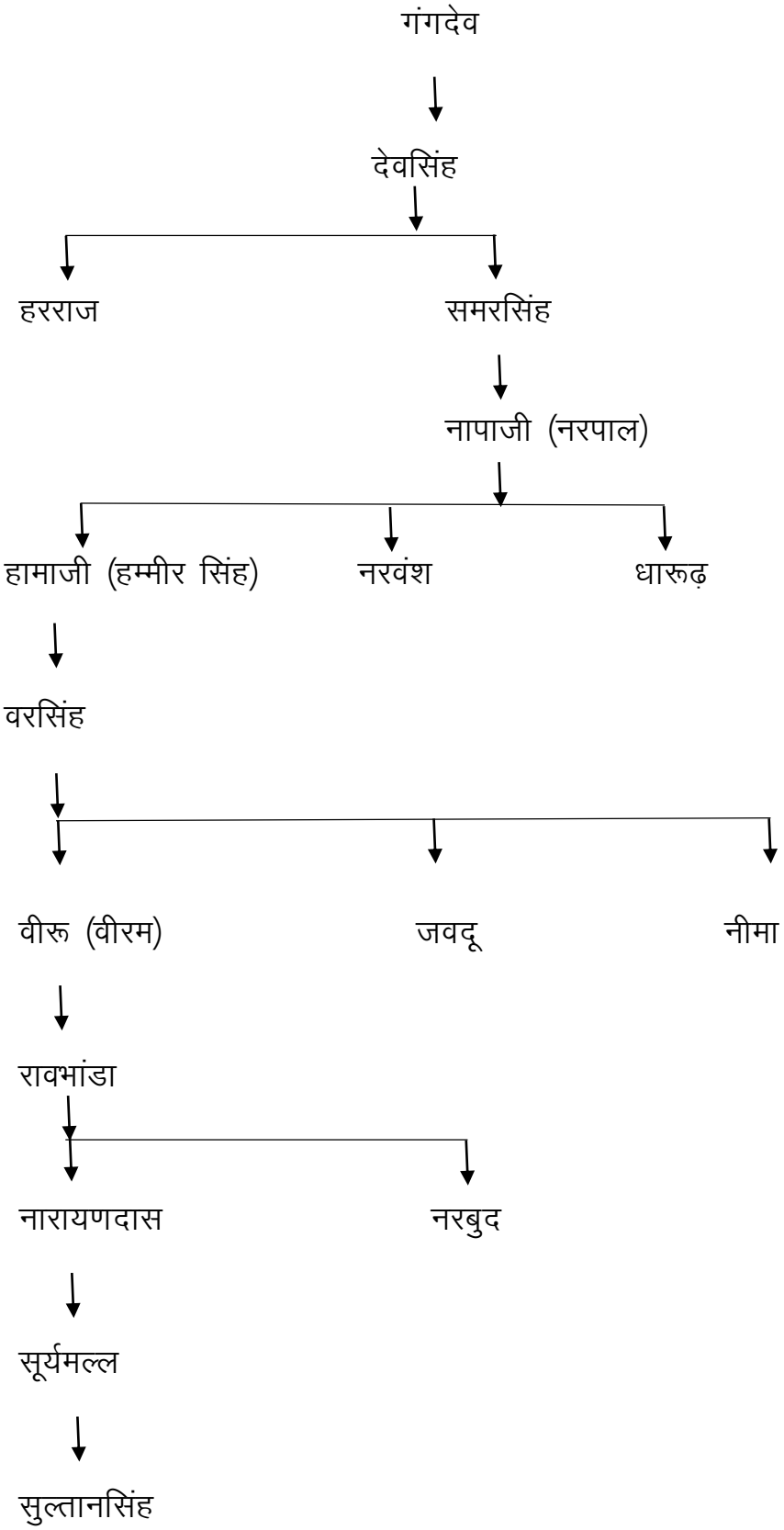
गंगदेव
देवसिंह
हरराज
समरसिंह
नापाजी (नरपाल)
हामाजी (हम्मीर सिंह)
नरवंश
धारूढ़
वरसिंह
वीरू (वीरम)
जवदू
नीमा
रावभांडा
नारायणदास
नरबुद
सूर्यमल्ल
सुल्तानसिंह

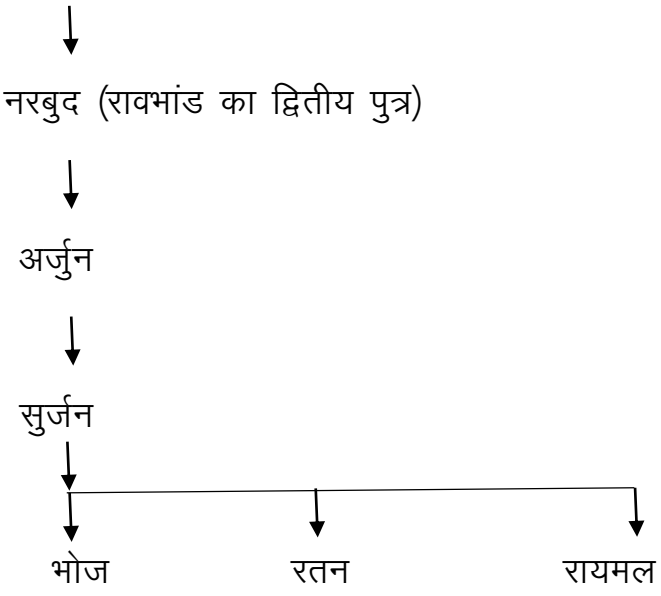

.....*********.....

1. सुर्जनचरित का साहित्यिक एवं ऐतिहासिक अध्ययन – डॉ. प्रीतिबाला गुप्ता / प्रमोद बिहारी सक्सैना, बी.काम., राज्य श्री प्रकाशन – प्र. स. 1988

शोध पत्र – पत्रिकाएँ

1.	स्वरमंगला	–	राज. संस्कृत अकादमी, जयपुर
2.	भारती	–	भारती भवन, जयपुर
3.	सागरिका	–	सागर विश्वविद्यालय, सागर (मध्यप्रदेश)
4.	शोधप्रभा	–	नई दिल्ली
5.	मञ्जुषा	–	कलकत्ता
6.	शारदा	–	पूना
7.	सूर्योदय	–	वाराणसी
8.	अक्षराः	–	जयपुर

शब्दकोश

क्र.सं.	कोषग्रन्थ	लेखक, सम्पादक, प्रकाशक
1.	अमरकोश	प्रकाशन चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी
2.	संस्कृत – हिन्दी शब्दकोश	चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी
3.	वामन शिवराम आप्टे	संस्कृत हिन्दी कोश मोतीलाल बनारसीदास, हिन्दी –1986
4.	शब्द – कल्पद्रुम	राजा राधाकान्त देव (बहादुर)
5.	वृहद्पर्यायवाची कोश	डॉ0 रघुवीर
6.	संस्कृत हिन्दी कोष	वामन शिवराम आप्टे प्रकाशन, जयपुर (2004)
7.	भारतीय साहित्य कोष	डॉ॰ नगेन्द्र, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली

सहायक एवं सन्दर्भ ग्रन्थ सूची (BIBLIOGRAPHY)

क्र.सं.	ग्रन्थ का नाम	लेखक	प्रकाशक	वर्ष
1	अलंकार ध्वनि विमर्शः	डॉ॰ कृष्णचन्द्र चतुर्वेदः	हंसा प्रकाशन	1994
2	अलंकार मीमांसा	डॉ॰ रामचन्द्र द्विवेदी	मोतीलाल बनारसी दास जवाहर नगर, दिल्ली – 7	1965
3	अलंकार–शास्त्र का बृहद् इतिहास	रमेश चन्द्र धुसींगा	रचना प्रकाशन	2006
4	अलंकारानुशीलन	डॉ॰ राजवंश सहाय 'हीरा'	चौखम्बा विद्याभवन–प्रथम वि.स.	2006
5	अलंकार–सर्वस्वम्	डॉ॰ त्रिलोकीनाथ द्विवेदी	चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन वाराणसी	1994
6	अनुसंधान विहियों	डॉ॰ एच. के. कपिल	आगरा हरप्रसाद भार्गव	1981

7	भारतीय साहित्य शास्त्र और काव्यलंकार	डॉ॰ भोलाशंकर व्यास	चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी	1965
8	छन्दोमञ्जरी	डॉ॰ ब्रह्मानन्द त्रिपाठी	चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन वराणसी	2012
9	ध्वन्यालोक	आचार्य आनन्दवर्धन, आः विश्वेश्वर	मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली,	1978
10	हम्मीर महाकाव्य	श्री नयचन्द्रसूरि	राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर	1993
11	हरिप्रसाद कृत्त काव्यालोक	डॉ॰ रमा गुप्ता	पब्लिकेशन स्कीम	1989
12	काव्यप्रकाश	राजानक मम्मट, आचार्य विश्वेश्वर	वाराणसी प्रकाशन	1972
13	काव्यांलकार	भामह	साहित्य भण्डार मेरठ	1989

14	लौकिक संस्कृत साहित्य का इतिहास	डॉ॰ जयकृष्ण प्रसाद खण्डेलवाल	परिमल प्रकाशन	
15	मैथोडोलॉजी ऑफ एलुकेशन रिसर्च	लोकेश कौन	वानी एजुकेशन बुक्स	1987
16	पृथ्वीराज विजय महाकाव्यम्	श्री लोलराजसुत पण्डित भट्ट नोनराजात्यज श्री जोनराज	राजस्थानी ग्रन्थागार, जोधपुर	1997
17	पिंगलकृत छन्दः सूत्रम्	डॉ॰ कपिल देव त्रिवेदी, डॉ0 श्यामलाल सिंह	विश्वविद्यालय प्रकाशन, वराणसी	2008
18	राजस्थान के प्रमुख संस्कृत महाकाव्य	प्रो॰ प्रभाकर शास्त्री	राजस्थान संस्कृत अकादमी, जयपुर	1998
19	राजस्थान का ऐतिहासिक संस्कृत साहित्य	ओउम प्रकाश शर्मा, ब्रजेश कुमार सिंह	राज. प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर	1999

20	रस–सिद्वान्त की शास्त्रीय समीक्षा	प्रो॰ सुरजन दास स्वामी, नीरज शर्मा	सतीश चन्द्र शुक्ल वैदिक यन्त्रालय, अजमेर	1983
21	रीति–शास्त्र के प्रतिनिधि	आचार्य डॉ॰ मानवेन्द्र पाठक	ईस्टन बुक लिंकर्स	1994
22	रिचर्स मेथडॉलॉजी	वीरेन्द्र प्रकाश शर्मा	पंचशील प्रकाशन, जयपुर संस्कार छठा	2010
23	संस्कृत साहित्य का इतिहास	डॉ॰ रामजी उपाध्याय	इलाहाबाद प्रकाशन	1966
24	संस्कृत साहित्य का इतिहास	डॉ॰ सत्यनारायण पाण्डेय	मेरठ प्रकाशन	1980
25	संस्कृत साहित्य का इतिहास	आ॰ बलदेव उपाध्याय	चौखम्बा प्रकाशन चतुर्थ/ अष्ठम् खण्ड, वाराणसी	1967
26	संस्कृत साहित्य का बृहद् इतिहास	डॉ॰ पुष्कर दत्त शर्मा	अजमेरा प्रकाशन, जयपुर	1982

27	शब्दकल्पद्रुम (पाँच खण्ड)	श्री राधाकान्त देव	नाग पब्लिशर्स, जवाहर नगर, दिल्ली	1988
28	शत्रुशल्यचरित महाकाव्य (दो खण्ड)	महाकवि विश्वनाथ	राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर	1996
29	सुर्जनचरित महाकाव्य	डॉ॰ चन्द्रधर शर्मा	चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी	1970
30	सुर्जनचरित परिशीलन	डॉ॰ महेश चन्द्र शर्मा,	सरोज प्रकाशन, मेरठ	1997
31	संस्कृत के पौराणिक महाकाव्य	डॉ॰ राजेश कुमारी मिश्रा,	पंचशील प्रकाशन प्रथम	2007
32	संस्कृत साहित्य का इतिहास	डॉ॰ बलदेव उपाध्याय	चौखम्बा विद्याभवन, वराणसी	1987
33	संस्कृत साहित्य का अभिनव इतिहास	डॉ॰ राधावल्लभ त्रिपाठी	विश्वविद्यालय प्रकाशन वराणसी	2001

34	संस्कृत साहित्य का इतिहास	डॉ॰ वचनदेव कुमार	नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली	1990
35	संस्कृत वाङ्मय का इतिहास	आचार्य देवीशंकर मिश्र एवं डॉ॰ राजकिशोर सिंह	लखनऊ	1989
36	संस्कृत साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास	डॉ॰ बाबूराम त्रिपाठी	विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा	1973
37	संस्कृत साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास	रामजी उपाध्याय	चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन	1993
38	संस्कृत साहित्य का इतिहास	डॉ॰ जगन्नारायण पाण्डेय	जगदीश संस्कृत पुस्तकालय	
39	संस्कृत काव्यशास्त्र में अंलकारों का विकास	दशरथ द्विवेदी	राधा पब्लिकेशन्स, द्वितीय संस्करण	1973

40	साहित्यदर्पण	महाकवि विश्वनाथ	साहित्य भण्डार, सुभाष बाजार, मेरठ	1994
41	संस्कृत काव्यशास्त्र और काव्य परम्परा	राधावल्लभ त्रिपाठी	प्रतिभा प्रकाशन, प्रथम संस्करण प्राच्य विद्या प्रकाशन, द्वितीय संस्करण	1981 2004
42	संस्कृत साहित्य का इतिहास	प्रो0 (डॉ॰) कैलाशनाथ द्विवेदी	राष्ट्रीय संस्कृत साहित्य केन्द्र, (जयपुर)	2010
43	संस्कृत व्याकरण मञ्जु – मञ्जुषा	मंजु गौतम	चन्द्रालय प्रकाशन	
44	सामाजिक अन्वेषण में सर्वेक्षण पद्धतियाँ	विरेन्द्र प्रकाश शर्मा	पंचशील प्रकाशन, जयपुर	2011
45	शिक्षा अनुसंधान	आर. ए. शर्मा	सूर्या पब्लिकेशन्स, मेरठ	2012

46	शैक्षिक एवं मनोवैज्ञानिक अनुसंधानों के मूलाधार	डॉ॰ गोविन्द तिवारी	विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा	1985
47	शिक्षा परिभाषा कोष		केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय, भारत सरकार, नयी दिल्ली	1977
48	सुजर्नचरित का साहित्यिक एवं ऐतिहासिक अध्ययन	डॉ॰ श्रीमती प्रीतिबाला गुप्ता एवं प्रमोद बिहारी सक्सेना	राज्य श्री प्रकाशन	1988
49	वृत्त रत्नाकरः	प्रो॰ ताराशंकर शर्मा	हंसा प्रकाशन, जयपुर प्रथम	2012
50	वृत्तरत्नाकरः	आचार्य बलदेव उपाध्याय	चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन	2012

(International Refereed)

संस्कृत साहित्य

हिन्दू अंतर्राष्ट्रीय त्रैमासिक शोध-पत्रिका

वर्ष:3, अंक:11 (मई-जुलाई, 2016) (ISSN 2348 – 0114)

'शत्रुशल्यचरित' महाकाव्य का ऐतिहासिक परिपेक्ष्य में अध्ययन

कृष्णा गुप्ता
शोधार्थी
राजकीय महाविद्यालय, कोटा

शोध आलेख सार

महाकवि विश्वनाथ विरचित 'शत्रुशल्यचरित' महाकाव्य हाड़ौती के प्रसिद्ध महाकाव्यों की ऐतिहासिक परिपेक्ष्य में 17 वीं शताब्दी का चतुर्थ स्थान प्राप्त महाकाव्य है। इसके अन्तर्गत चाहुवान वंश का राजा अनल से लेकर भावसिंह तक का विस्तृत वर्णन हैं। इस महाकाव्य का ऐतिहासिक वृतान्त मुगल शासक अकबर से लेकर शाहजहाँ तक अत्यधिक प्रमाणिक है। अकबर, जहाँगीर एवं शाहजहाँ के शासन काल में रणथम्भौर, गौड़वाना गुजरात एवं अन्य स्थानों पर वीरतापूर्ण युद्धों का यथार्थ चित्रण किया है। इस महाकाव्य के प्रणेता युद्धों के दौरान राजवैद्य के रूप में उपस्थित रहने के कारण रावरतन एवं शत्रुशल्य ष्रतपुर, बलोचपुर (आगरा) दौलताबाद रियासत और महु के युद्धों का यथार्थ चित्रण किया गया है। इस काव्य में लगभग 2500 श्लोक है, जिनका अन्त अचानक हाड़ा छत्रशाल के द्वारा दौलताबाद युद्ध सन् 1633 के बाद हुआ।[1]

मुख्य-शब्द : चाहुवान वंश, ऐतिहासिक, मुगल शासक, राजवैद्य, रियासत, हाड़ा छत्रशाल।

प्रस्तावना - महाकवि विश्वनाथ विरचित 'शत्रुशल्यचरित' महाकाव्य इतिहास की गाथा पर आधारित राजस्थान की वीर-प्रसविनी कहलाने वाला प्रत्यक्ष दर्पण है। संस्कृत साहित्य में ऐतिहासिक काव्य के प्रणयन की परम्परा बाण के हर्षचरित से मानी जाती है। यह महाकाव्य श्री हर्ष के "नैषधीयचरितम्" की काव्य - कुशलता के पदचिन्हों का अनुसरण करता है। राजस्थान के पूर्व रियासतों के शासकों को तथा मारवाड़, मेवाड़, ढूँढाड़, हाड़ौती के राजाओं पर ऐसे अनेक ऐतिहासिक काव्य लिखे गए जिनमें 'शत्रुशल्यचरित' महाकाव्य उच्च कोटि की कृति है जिसमें ऐतिहासिक तथ्य सत्य एवं निष्पक्ष है। 22 सर्गो से युक्त यह महाकाव्य चाहुवान वंश की वीरता एवं पराक्रम का चरित्रांकन करने वाला अनुपम काव्य है विशेषत: काव्य का अन्तिम सीमांकन नायक शत्रुशल्य के व्यक्तित्व को समणपत है।

उद्देश्य - 'प्रयोजनमनुद्विश्य मन्दो पि न प्रवर्तते।"

अर्थात् प्रयोजन के बिना मूर्ख व्यक्ति भी किसी कार्य में प्रवर्त नहीं होते हैं। प्रत्येक कार्य का प्रयोजन होना आवश्यक है। संस्कृत साहित्य में विभिन्न ऐतिहासिक महाकाव्यों का प्रचुर विवेचन, विश्लेषण, समीक्षण किया गया है।[2] इसी प्रकार 'शत्रुशल्यचरित' महाकाव्य ऐतिहासिक परिपेक्ष्य में उच्च कोटि का काव्य है। महाकवि स्वयं राजवैद्य होने के कारण चाहुवान वंश के पराक्रम का स्पष्ट वर्णन कर इसकी ऐतिहासिकता प्रकट करना मूल उधेश्य है। वीर रस प्रधान इस महाकाव्य में चाहुवाणोद्भव, वासुदेवदीक्षित, अरिथपालोद्भव: मेदान्वयध्वंस, बुन्दया तुरुष्कोदय, नारायणदास, सूर्यमल्ल, सुर्जन, महाराजश्रीदुर्योधन, भोजदेव श्रीरत्नराज, श्री शत्रुशल्यसामुद्रिक लक्षण, शत्रुशल्यायनालिकेरार्पण, शत्रुशल्यविवाहप्रस्थानवर्णन, वर यात्रावर्णन, नायिकावर्णनविवाहवर्णन,

वन्दिस्तुति, वनविहारषड्ऋतु वर्णन, खीचीदेशग्रहणवर्णन, शत्रुशल्य का राज्यभिषेक, शत्रुशल्य द्वारा देवगिरि ग्रहण आदि का महाकवि ने ऐतिहासिक तथ्यों का विशेष रुप से वर्णन करना मूल उधेश्य है।

शोध परिकल्पना

किसी भी कार्य को प्रारम्भ करने से पूर्व उसका लक्ष्य निर्धारित किया जाता है। 'गुडे एवं हॉट' के अनुसार कि अगर सामाजिक अनुसंधान में एक अच्छी परिकल्पना का निर्माण हो जाता है तो इसका अर्थ है - अनुसंधान के लगभग आधे कार्य का पूर्ण हो जाना । "परिकल्पना सिद्वांत तथा अनुसंधान के बीच की एक आवश्यक कड़ी है जो अतिरिक्त ज्ञान की खोज में सहायक होती है।"[3]

'शत्रुशल्यचरित' महाकाव्य में भी ऐतिहासिक तथ्यों का हाड़ौती के अन्य महाकाव्यों से स्पष्ट वर्णन किया है। इसके अन्तर्गत चाहुवान वंश की उत्पत्ति अग्नि से बताई गई है जबकि सम्पूर्ण महाकाव्य में सूर्यवंशी कहकर पुकारा गया है। महाकवि ने राजा अरिथपाल का ऐतिहासिक वृतान्त इस महाकाव्य में स्पष्ट रुप से बताया है। इतिहास सम्बन्धी गाथा का प्रत्यक्षीकरण करना ही शोध का लक्ष्य है।

शोध प्रविधि - इतिहास के किसी भी ज्ञान के क्षेत्र में अतीत की घटनाओं का एकीकृत वर्णन होता है। जो सम्पूर्ण सत्य के लिए विषय के अध्ययन का ऐतिहासिक उपागमन उस विषय के अतीत का वर्णन करने के प्रयास की ओर संकेत करता है। जिसके प्रकाश में वर्तमान समस्याओं के निराकरण के लिए समाधान प्रस्तुत किए जाते हैं। कौल ने इसे शोध की वह विधि बतलाया है, जिसमें भूतकालीन तथ्यों का अन्वेषण एवं वर्णन किया जाता है।[4]

'शत्रुशल्यचरित' महाकाव्य पूर्ण रुप से ऐतिहासिक है चूंकि चौहान वंश में उत्पन्न राजा वासुदेव से शत्रुशल्य तक सभी इतिहास का अंग है। अत: ऐतिहासिक शोध विधि का प्रयोग इस अध्ययन में उपयुक्त है।

विवेचन - महाकवि विश्वनाथ ने अपनी एकमात्र कृति 'शत्रुशल्यचरित' में अपना जीवन परिचय अत्यन्त संक्षिप्त रूप में प्रदान किया है, जो महाकाव्य के 22 सर्गो के अन्तिम श्लोक में है -

योन्तर्वाणिशिरोमणेर्वरभिषग्वंशैकमुक्तमणे:।
साहित्याम्बुरूहाकरैकतरणे: श्री वैद्यनारायणात्।
रूक्मिण्यामुदभूदमुष्यसुकवे: श्री विश्वनाथस्य सत् -
काव्ये श्री नृपशत्रुशल्यचरिते श्री चाहुवानोदभ्व:।। शत्रु. 1/60

अर्थात् भगवती सरस्वती के शिरोमणि, वैद्य वंश के, वेणुवृक्ष के मुक्तामणि से उत्पन्न मुक्ताफल के समान महाकवि विश्वनाथ, साहित्य सरोवर में साहित्य रूपी कमल समूह को विकसित करने वाले एकमात्र सूर्य हैं। इनके पिता का नाम वैद्य नारायण एवं माता का नाम रूक्मिणी था।

महाकवि विश्वनाथ एक प्रसिद्ध राजवैद्य थे, यह व्याकरण, साहित्य के साथ-साथ रसायन शास्त्र के भी अच्छे ज्ञाता थे। महाकवि 1650 ई. के मुगलों के युद्ध क्रम के दौरान औरंगजेब के विरूद्ध दाराशिकोह की ओर से मारे गये थे।

महाकवि विश्वनाथ ने महाकाव्य के प्रारम्भ में आशीर्नमस्क्रियावस्तुनिर्देशो वापि तीनों प्रकार से मगंलाचरण करते हुए अपने ईष्ट देवता भगवान श्रीकृष्ण और राधा के युगल स्वरूप की वन्दना की है -

श्रीराधाकुचकलशद्वयेऽतिगौरे
संसर्पी नवजलदोद्धुरो मुरारे:।
आश्लेषे जयपि वपु: प्रभासमूह:
कस्तुरीललितधनाङ्गरागमाली।। शत्रु. 1/1

साहित्यदर्पणकार विश्वनाथ के महाकाव्य के लक्षणों से 'शत्रुशल्यचरित' महाकाव्य ओत-प्रोत हैं।[5] 'शत्रुशल्यचरित' महाकाव्य एवं सुर्जनचरित महाकाव्य के महाकवियों ने महाकाव्य के प्रारम्भ में चौहान वंश के वर्णन में समान भाव से स्वप्रौढ़ता प्रदणशत की है।

'शत्रुशल्यचरित' महाकाव्य में महाकवि ने 19वें सर्ग में प्रकृति का अनुपम एवं सुरम्य चित्रण किया है।

महाकाव्य में महाकवि ने सूर्यवंशी चौहान को 'चतुर्बाहुमान' इस नाम से प्रसिद्ध किया। यह 'चतुर्बाहुमान' नाम अपभ्रंश के कारण चाहुवाण (चौहान) बन गया। जो ब्रप्रा जी के द्वारा इस पृथ्वी पर संरक्षित, चतुर्बाहुमान् वंश कर्ता हुए।

दोर्दण्डकण्डून्मददुष्टभूप –
भरं भुवोहन्त निराकरिष्णून।
दोष्णः स बिभ्रच्चतुरोवतीर्णः
ख्यातोऋत्र तस्माद्भुवि चाहुवानः ।। शत्रु. 1/26

ऐतिहासिक दृष्टि से महाकवि विश्वनाथ ने चाहुवान वंश का वर्णन भिन्न बताया है। इन्होंने सामन्त सिंह को चाहुवान राजा का पुत्र बताया है।

जगत्त्रयस्याभयलग्न कोऋयं
वीरः प्रजा धर्मपथेषु युञ्जन्।
क्षात्रंपंर तेज इवाशु शूरं
सामन्तसंज्ञं सुषुवे तनूजम।। शत्रु. 1/45

महाकवि विश्वनाथ ने सर्वप्रथम स्वकाव्य में अस्थिपाल का वृतान्त प्रस्तुत किया है। टॉड ने इस उपाख्यान का प्रमाण दिया एवं 'इस्तपाल' को अनुराजा का पुत्र एवं विशालदेव का प्रपौत्र माना गया। जिसने महमूद गजनवी के विरूद्ध युद्ध लड़ा एवं आसीर को 1081 वि. स. में बन्दी बनाया।

महाकवि विश्वनाथ ने शत्रुशल्यचरित में राजा सुर्जन की पत्नी कनकावती को
राजा क्षितिपाल की पुत्री बताया है।

समुल्लसत्सद्वलिभङ्गरम्या
भुपेन्द्रलीलामिव द्विव्यरूपाम्।
सुवंशपालक्षितिपाल पुत्रीं
चकार पाणौकनकावतीं ताम्।। शत्रु. 8/13

कवि विश्वनाथ ने पाँचवें, छठें एवं सातवें सर्गो में ऐतिहासिक वृत्त का अनुसरण किया है। नारायणदास द्वारा समरकन्दी की हत्या से सम्बन्धित महाकवि ने सत्यता कैं परिपुष्ट किया है।

समरोपदं सकन्दकं किल, विव्धमतिं रहः स्थितम्।
अवधीदवधीरयंस्तदा धृतखड्गेन करेण वक्षसि।। शत्रु. 6/49

राजस्थान की ऐतिहासिक गौरव-गाथा को बताने वाला यह एक अनुपम-काव्य है। विशेषतः काव्य का अन्तिम सीमांकन शत्रुशल्य के चरित्र एवं उसके व्यक्तित्व को समर्पित है। उसकी कर्तव्यपरायणता को बताना कवि का परम लक्ष्य है, किन्तु साथ ही सम्पूर्ण चौहान वंश की उत्पत्ति का वर्णन कर तद्वंशीय प्रतापी राजाओं का चित्रण करने में कवि ने अपनी काव्य प्रतिभा के साथ-साथ ऐतिहासिक दक्षता का भी प्रमाण उपस्थापित किया है।

शत्रुशल्यचरित महाकाव्य नारिकेल फल के समान है जिसका बाह्य रूप देखने में कठोर तथा रूक्ष दिखाई देता है, परन्तु इसके गर्भ में स्वादिष्ट मधुर रस विद्यमान है।

निष्कर्ष

'साहित्य सागर' ज्ञान का वह गहन गम्भीर 'आकार' है, जिसका जितना अधिक मंथन किया जाये, उतने ही अनगिनत अमूल्य रत्नों की हमें प्राप्ति होती है। किसी भी राष्ट्र की उन्नत संस्कृति के पोषक तत्वों में उस राष्ट्र का समृद्ध साहित्य भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। संस्कृत भाषा और उसका विशाल साहित्य भारत के स्वर्णिम इतिहास का गौरवमय दर्पण है। इस 'साहित्य सृजन' के विभिन्न रूपों में ऐतिहासिक रूप को महत्वपूर्ण माना गया है।[6] हाड़ौती के ऐतिहासिक महाकाव्यों में महाकवि विश्वनाथ विरचित शत्रुशल्यचरित श्रेष्ठ महाकाव्य है। इस महाकाव्य की ऐतिहासिक प्रामाणिकता सिद्ध करने के लिए महाकवि ने चौहान वंशी राजपूतों का इतिहास वर्णित किया है। यह वंश आधुनिक काल में हाड़ा वंश के नाम से कोटा, बूँदी आदि क्षेत्रों में प्रख्यात है।

----------संदर्भ----------

1. महाकवि विश्वनाथ, "शत्रुशल्यचरित महाकाव्य" (दो खण्ड), राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर, 1996।
2. प्रो॰ (डॉ॰) कैलाशनाथ द्विवेदी, "संस्कृत साहित्य का इतिहास", राष्ट्रीय संस्कृत साहित्य केन्द्र, जयपुर, 2010।
3. वीरेन्द्र प्रकाश शर्मा, "सामाजिक अन्वेषण में सर्वेक्षण पद्धतियाँ", पंचशील प्रकाशन, जयपुर, 2011।
4. आर. ए. शर्मा, "शिक्षा अनुसंधान", सूर्या पब्लिकेशन्स, मेरठ, 2012।
5. महाकवि विश्वनाथ, "साहित्यदर्पण", साहित्य भण्डार, सुभाष बाजार, मेरठ, 1994।
6. डॉ॰ श्रीमती प्रीतिबाला गुप्ता एवं प्रमोद बिहारी सक्सेना, "सुजर्नचरित का साहित्यिक एवं ऐतिहासिक अध्ययन", राज्य श्री प्रकाशन, 1988।

(International Refereed)
Impact Factor : 2.64

संस्कृत साहित्य

'द्रष्टा' रिसर्च जर्नल (ISSN : 2277-2480)

वर्ष:5, अंक:19 (जून-अगस्त 16)

'शत्रुशल्यचरित' महाकाव्य के परिपेक्ष्य में चौहान वंश के विकास का अध्ययन

कृष्णा गुप्ता
शोधार्थी, राजकीय महाविद्यालय
कोटा (राजस्थान)

शोध-आलेख सार

महाकवि विश्वनाथ विरचित 'शत्रुशल्यचरित' महाकाव्य चौहान वंश के उद्भव एवं पराक्रम को प्रदणशत करने वाला प्रमुख ऐतिहासिक महाकाव्य है। 17 वीं शताब्दी का यह महाकाव्य हाड़ौती के ऐतिहासिक महाकाव्य में चतुर्थ स्थान प्राप्त है। महाकवि विश्वनाथ ने चौहानैं का उद्गम अग्नि बताया गया है, किन्तु महाकाव्य में उन्हें 'सूर्यवंशी' कहकर पुकारा गया है। महाकवि ने शत्रुशल्यचरित महाकाव्य में चौहान वंश के 52 राजाओं का वर्णन किया है। इसके अर्न्तगत राजा अनल से लेकर भावसिंह तक चौहान वंश के विकास को दर्शाया गया है। नायक के रूप में राजा शत्रुशल्य के चरित्र को विस्तार से प्रकट किया गया है। राजस्थान के पूर्व रियासतों के शासकों को तथा मारवाड़, मेवाड़, ढूँढाड़, हाड़ौती के राजाओं पर ऐसे अनेक ऐतिहासिक काव्य लिखे गए जिनमें 'शत्रुशल्यचरित' महाकाव्य महाकवि विश्वनाथ की अनुपम कृति है।[1]

मुख्य-शब्द : शत्रुशल्यचरित, चौहान वंश, हाड़ौती, सूर्यवंशी, राजस्थान, रियासतों।

प्रस्तावना - महाकवि विश्वनाथ प्रणीत शत्रुशल्यचरित महाकाव्य के अर्न्तगत इतिहास प्रसिद्ध चौहान वंशी राजाओं का प्रारम्भ से लेकर अन्त तक विस्तृत उल्लेख किया गया है। महाकवि ने स्वकाव्य शत्रुशल्यचरित में अपना परिचय अत्यन्त संक्षिप्त रूप में प्रदान किया है, जो महाकाव्य के 22 सर्गो के अन्तिम श्लोक में है -

योन्तर्वाणिशिरोमणेर्वरभिषग्वंशैकमुक्तमणे:।
साहित्याम्बुरूहाकरैकतरणे: श्री वैद्यनारायणात्।
रूक्मिण्यामुदभूदमुष्यसुकवे: श्री विश्वनाथस्य सत् -
काव्ये श्री नृपशत्रुशल्यचरिते श्री चाहुवानोदभ्वः।। शत्रु. 1/60

अर्थात् भगवती सरस्वती के शिरोमणि, वैद्य वंश के, वेणुवृक्ष के मुक्तामणि से उत्पन्न मुक्ताफल के समान महाकवि विश्वनाथ, साहित्य सरोवर में साहित्य रूपी कमल समूह को विकसित करने वाले एकमात्र सूर्य हैं। इनके पिता का नाम वैद्य नारायण एवं माता का नाम रूक्मिणी था। यह महाकाव्य चौहानैं का उद्भव एवं राजा शत्रुशल्य के चरित्र को प्रकट करता है। महाकवि विश्वनाथ एक प्रसिद्ध राजवैद्य थे, यह व्याकरण, साहित्य के साथ-साथ रसायन शास्त्र के भी अच्छे ज्ञाता थे। महाकवि 1650 ई. के मुगलों के युद्ध क्रम के दौरान औरंगजेब के विरूद्ध दाराशिकोह की ओर से मारे गये थे। महाकवि ने चौहान वंश की वीरता एवं पराक्रम को प्रदणशत किया है।

उधेश्य – **काव्यं यशसेऽर्थकृते व्यवहारविदे शिवेतरक्षतये ।**
सद्यः परिनिर्वृतये कान्तासम्मिततयोपदेशयुजे।। 2।। का.प्र./प्रथम उल्लास

आचार्य मम्मटानुसार काव्य (रचना) यश (प्राप्ति) के लिए, धन-अर्जन के लिए, व्यवहार ज्ञान के लिए, अमंगल के विनाश या निवारण के लिये, तुरन्त ही परमानन्द (की प्राप्ति) के लिए तथा प्रियतमा के समान उपदेश देने के लिये होता है।[2]

महाकवि विश्वनाथ विरचित ऐतिहासिक महाकाव्य शत्रुशल्यचरित का मुख्य उधेश्य चौहान वंशी राजाओं का चारि॥य प्रकट करना है। महाकाव्य सहृदयों के हृदय में आनन्दानुभूति कराने वाला है तथा अनिष्ट परिहार से उत्पन्न होने वाला सुख प्रदान करने वाला हैं। महाकाव्य का मुख्य उद्देश्य सम्पूर्ण ज्ञान का प्रसार करना है, तथा अमंगल का निवारण करना हैं।

शोध प्रविधि – अनुसन्धान एक वैज्ञानिक प्रक्रिया है, और इसका सम्बन्ध व्यापक रूप से सभी प्रकार के उपलब्ध साहित्य से हैं। अनुसन्धान में अर्जित ज्ञान के आधार पर किसी विषय के सम्बन्ध में उसके आगे अभी तक अप्रकाशित अप्राप्त तथ्यों का अन्वेषण किया जाता हैं। इसके साथ ही किसी विषय से सम्बद्ध उपलब्ध साहित्य के आधार विषय के सम्बन्ध में गलत तथ्यों के निवारण के लिए उनका नवीन ढंग से निर्वाचन और स्थापन आवश्यक हैं।[3]

इतिहास के किसी भी ज्ञान के क्षेत्र में अतीत की घटनाओं का एकीकृत वर्णन होता है। जो सम्पूर्ण सत्य के लिए विषय के अध्ययन का ऐतिहासिक उपागमन उस विषय के अतीत का वर्णन करने के प्रयास की ओर संकेत करता है। महाकवि विश्वनाथ विरचित शत्रुशल्यचरित महाकाव्य पूर्ण से ऐतिहासिक प्रविधि का अनुसरण करता है। चौहान वंशी राजाओं का पराक्रम इतिहास प्रसिद्ध है। इसके अर्न्तगत अकबर, जहांगीर एवं शाहजहाँ कालीन रणथम्भौर, गौडवाना गुजरात एवं दक्षिण भारत में लड़े गये युद्धों का यथार्थ निरूपण है।

विवेचन – महाकवि विश्वनाथ ने अपनी एकमात्र कृति शत्रुशल्यचरित महाकाव्य के दो खण्डों में 22 सर्गो का विवेचन किया है, जिसमें लगभग 2500 श्लोक है। काव्य परम्परा के अनुसार महाकवि विश्वनाथ ने महाकाव्य के प्रारम्भ में "आशीर्नमस्क्रियावस्तुनिर्देशो वापि" तीनों प्रकार से मगंलाचरण करते हुए अपने ईष्ट देवता भगवान श्रीकृष्ण और राधा के युगल स्वरूप की वन्दना की है।

महाकवि विश्वनाथ ने चाहुवान वंश का उद्गम अग्नि बताया है-

दोर्दण्डकण्डून्मददुष्टभूप –
भरं भुवोहन्त निराकरिष्णून।
दोष्णः स बिभ्रच्चतुरोवतीर्णः
ख्यातोऽत्र तस्माद्भुवि चाहुवानः ।। शत्रु. 1/26

सर्वप्रथम मुनिप्रवर वशिष्ठ की तपाग्नि से पुरूष रूप में साकार होकर अनल नामक राजा हुए। यह चाहुवान नाम से अभिहित 'अ' लोप इति पक्ष में श्री हर्ष विरचित नैषधीयचरित में राजा नल और दमयन्ती का पुत्र है। अनल अग्नि का भी पर्याय है, अधर्म के निवारण हेतु ''ध्रूमकेत'' नामक दैत्य की बाहुबल से हत्या करके तीनों लोको की रक्षा की, मिथ्या अभिमान से युक्त जम्भकेतु-नामक द्वितीय दनुज की हत्या करते है।

तीनों लोकों के अभयदान के लिए यह वीर चाहुवान ने प्रजा के धर्म के मार्ग के लिए योजनापूर्ण सामन्त नामक पुत्र को उत्पन्न किया, जो क्षात्र सम्बन्धि उत्कृष्ट तेज की तरह शौर्ययुक्त वीर है।

जगत्त्रयस्याभयलग्न कोऽयं
वीरः प्रजा धर्मपथेषु युञ्जन्।

क्षात्रंपंर तेज इवाशु शूरं
सामन्तसंज्ञं सुषुवे तनूजम।। शत्रु. 1/45

इसके बाद लक्ष्मीवान महाराज सामन्त के पृथ्वीपालक महादेव नामक पुत्र हुआ। जो सज्जनों की अभिलाषा को पूर्ण करके आनन्दित नयनों वाला था। महाराजा महादेव के कार्तिकेय के समान पुत्र 'कुमार' ने जन्म लिया। इसके बाद बिन्दुसार नामक राजा हुआ। बिन्दुसार के 'उदारहार' और इनके 'अशोक' नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। महाराजा अशोक से म्लेच्छों का विदारण करने वाले 'शकाविदार' नामक पुत्र उत्पन्न हुआ, उसके पुनः श्री वीरसिंह नामक पुत्र हुआ। हाथियों के समूह में सिंह के समान ही, शत्रुओं में वह वीरसिंह का वरसिंहदेव नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। यह प्रतापी वरसिंह शत्रुओं के लिए दण्ड के समान था, उसके वीरदण्ड नामक पुत्र हुआ। इनके अरिमन्त्र नामक अन्वर्थ पुत्र हुआ। इस प्रकार अरिमन्त्र नामक राजा से युद्ध में धैर्यशाली माणिक्यराज नाम से अभिधान राजा हुआ।

इन्होंने भी अद्भूत चरित्र वाले, पृथ्वी का भार वहन करने वाले दश पुत्रों को जन्म दिया। माणिक्यराज के वंश में कर्णाभूषण की तरह, प्रकृष्ट लौहराज नामक राजा हुए। इस प्रकार इन लौहराज राजा ने पृथ्वी पर निरन्तर पुण्य कर्म करके, कोई चर्मशर्मासुर नामक म्लेच्छ को मारकर, उसकी बलि से भगवती काली को प्रसन्न किया।

औदार्यशौर्यादिगुणैकभाण्डे
तस्यान्ववायेऽम्बुनिधाविवेन्दुः।
प्रसोष्ट सम्पूजित वासुदेव
श्री वासुदेवो वसुधादिदेवः ।। शत्रु. 2/1

उदारता, दानवीरता, शौर्यादि गुणों से युक्त चाहुवान वंश में उत्पन्न, चन्द्रमा के समान पृथ्वी का प्रधान राजा, जाति से ब्राह्मण, विष्णु के समान पूज्य 'श्री वासुदेव' नामक राजा हुआ। इसके बाद सूर्यकुल में, सम्पूर्ण लोकों के कर्णाभूषण के रूप में, श्री गोपाल नाम का राजा हुआ। राजा गोपाल के चन्द्रसेन नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। इसके बाद किसी अस्थिपाल नामक राजा का प्रंसग वर्णित है। अस्थिपाल के बाद चन्द्रराज नामक राजा हुआ। चन्द्रराज चन्द्रमा से भी अत्यधिक सुन्दर एवं पराक्रमी था। इसके आर्तिहरण नाम का अन्वर्थसंज्ञक पुत्र हुआ। वह आर्तिहरण रेणुसिंह नाम से इतिहास में देशीभाषा में 'रेणसी' इति उपमान से प्रसिद्ध एक पुत्र को जन्म दिया। सद्गुणों से युक्त उस रेणुसिंह के कोल्हन नाम का एक पुत्र हुआ। वह अपने पिता के समान ही पराक्रमी और शत्रुओं का अनुशासक था।

मित्रों एवं राजाओं की प्रतिष्ठा एवं शत्रुओं के मान को खण्डित करने के कारण मानद उपाधि ा प्राप्त करने वाला राजा कोल्हन एक पुत्र को जन्म देता हैं, जिसका नाम आशुपाल था। आशुपाल राजा के भी एक पुत्र होता हैं, जिसका नाम विजयपाल था। उसके वंगदेव नामक पुत्र हुआ। सुर्जनचरित में चन्द्रशेखर ने वंगदेव को कोल्हन का पुत्र बताया है, न कि उसका पौत्र और भी उसका नाम वहां गंगदेव मिलता है। वंगदेव पृथ्वी का राज्य भार देवसिंह नामक अपने पुत्र को सौपकर चिन्ता से मुक्त हो गये। इस प्रकार वीरसेन, समरसिंह, नार्पनाम नामक राजा हुए। यही नार्पनाम का राजा नापजी नाम से इतिहास प्रसिद्ध हुआ। इस राजा को एक पुत्र हुआ, जिसका नाम हम्मीरदेव था। इसके बाद वरसिंह, वैरचन्द, भारमल्ल नामक राजा हुए।

इसके बाद माण्डल दुर्ग पर नारायणदास नाम का राजा हुआ।

अथ सूर्यमल्ल इति तस्यसुता
जनतोषकृत् समभवन्नृपतिः।
कर तेजसा पर तमो निवहं

शमयन् परं विमलयन् हरितः ।। शत्रु. 7/1

राजा नारायणदास के सूर्यमल्ल पुत्र राजा हुआ, जो अपने हाथों के तेज से शत्रु रूपी अन्धकार समूह को नाश कर सम्पूर्ण दिशा को प्रकाशित करने वाला था। सूर्यमल्ल के सुरताण नाम का एक पुत्र हुआ था जो दुर्भाग्य से बहुत उन्मादी था और पिता के इस समृद्ध राज्य को ज्यादा दिन तक चलाने में समर्थ नहीं हो सका। आकाशवाणी के अनुसार नारायणदास का छोटा भाई नर्बद का पौत्र सुर्जनदेव बून्दी का शासक हुआ। सुर्जनदेव के बाद दुर्योधन और भोजदेव चौहान वंशी राजा हुए। अकबर की मृत्यु के बाद मानसिंह अकबर के पौत्र खुर्रम को राजा बनाने के लिए उद्यत हुआ, किन्तु त्रिभुवन जयशाली भोज ने अकबर के पुत्र शाह शिलिम नाम के सलीम को (जहाँगीर) बलात् दिल्ली का शासक बना दिया। इसके बाद वह भोज अपने पुत्र रत्नसिंह को अपना राज्य समर्पित कर मृत्यु को प्राप्त हुआ। राजा रत्नसिंह ने आमेर के शासक भगवानदास की पुत्री रामकुंवर से शादी की। उसके एक अत्यन्त पराक्रमी गोपीनाथ नामक पुत्र हुआ। युवावस्था होने पर गोपीनाथ को रत्नसिंह ने युवराज बना दिया। अपने पिता द्वारा प्राप्त राज्यभार ग्रहण करके महामेला दुर्ग के राजा विजयनाथ की पुत्री से विवाह किया, जिससे शत्रुशल्य पुत्र नामक पुत्र हुआ। जो महाकाव्य का नायक है, इनके भावसिंह नामक पुत्र हुआ।

कुरङ्गीदृग्भङ्गीसुभगसदपागेक्षणभरै –
रनङ्ग पूर्णांग जगति विदधत्याद्भुततरम्।
तया रूक्मिण्येव श्रिय इव पतिः साधु विहरन्
स शत्रुणांशल्य तनुजमसविष्टस्मरमिव।। शत्रु. 11/24

इस प्रकार महाकवि ने शत्रुशल्यचरित महाकाव्य में चौहान वंश का ऐतिहासिक परम्परा के अनुसार राजा अनल से लेकर भावसिंह तक सम्यक वर्णन किया है।

निष्कर्ष – ऐतिहासिक महाकाव्य भी राष्ट्र की निधि है, इतिहास प्रसिद्ध कथावस्तु की प्राचीनता से इन महाकाव्यों का विशेष महत्व है। ऐतिहासिक महाकाव्यों में तथ्यों की परिपुष्टि तथा इतिहास प्रसिद्ध राजाओं का चरित्र-चित्रण किया जाता है।[4] शत्रुशल्यचरित महाकाव्य में भी चौहान वंश के उद्भव एवं पराक्रम का वर्णन किया गया है। जो इतिहास प्रसिद्ध अन्य महाकाव्यों से सटीक है। इस महाकाव्य की प्रमुख विशेषता यही है कि महाकवि स्वयं राजवैध होने के कारण सम्यक् रूप से चाहुवान वंशोक्रम का वर्णन ओजमय वीर रस में किया है।

संदर्भ

1. महाकवि विश्वनाथ, "शत्रुशल्यचरित महाकाव्य" (दो खण्ड), राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर, 1996।
2. राजानक मम्मट, आचार्य विश्वेश्वर, "काव्यप्रकाश", वाराणसी प्रकाशन, 1972।
3. वीरेन्द्र प्रकाश शर्मा, "रिचर्स मेथडॉलॉजी", पंचशील प्रकाशन, जयपुर, 2010।
4. डॉ॰ रामजी उपाध्याय, "संस्कृत साहित्य का इतिहास", इलाहाबाद प्रकाशन, 1966।